चीड़ोंपर चाँदनी

*

निर्मल वर्मा

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक–१८७

सम्पादक एवं नियामक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन

CHEERON PAR CHANDNI

{ Reminiscences }

NIRMAL VERMA

Bhartiya Jnanpith
Publication

First Edition 1964

Price Rs. 3.00 N. P.

o

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय
९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५

विक्रय विभाग
३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

प्रथम संस्करण १९६४

मूल्य तीन रुपये

सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी–५

रामकुमार को

भूमिका

अरसे बाद अपने इन स्मृति-खण्डोंको दोबारा पढ़ते समय मुझे एक अजीब-सा सूनापन अनुभव होता रहा है – कुछ वैसा ही रीता अनुभव, जब हम किसी ज़िन्दा फड़फड़ाते पक्षीको क्षण-भर पकड़कर छोड़ देते हैं – उसकी देह हमसे अलग हो जाती है लेकिन देर तक हथेलियोंपर उसकी धड़कन महसूस होती रहती है। एक दूरीका अभाव जो सफ़री-सूटकेसपर विभिन्न देशोंके लेब्लोंपर लटका रहता है – उन्हें न रख पानेका मोह रह जाता है, न फेंक पानेकी निर्ममता ही जुड़ पाती है।

इन फटे-पुराने लेब्लोंके पीछे कितने चेहरे, हाथसे हाथ मिलानेके गरम स्पर्श, होटलोंके खाली कमरे छिपे हैं, क्या इनका लेखा-जोखा कभी सम्भव हो सकेगा ?

शिमलाके वे दिन आज भी नहीं भूला हूँ। सर्दियाँ शुरू होते ही शहर उजाड़ हो जाता था। आस-पासके लोग बोरिया-बिस्तर बाँधकर दिल्लीकी ओर 'उतराई' शुरू कर देते थे। बरामदेकी रेलिंगपर सिर टिकाये हम भाई-बहन उन लोगोंको बेहद ईर्ष्यासे देखते रहते जो दूर अजनबी स्थानोंकी ओर प्रस्थान कर जाते थे। पीछे हमारे लिए रह जाते थे चीड़के साँय-साँय करते पेड़, खाली भुतहे मकान, बर्फ़में सिमटी हुई स्कूल जानेवाली पगडण्डी। उन सूनी, कभी न खत्म होनेवाली शामोंमें हम उन अजाने देशोंके बारेमें सोचा करते थे – जो हमेशा दूसरोंके लिए हैं, जहाँ हमारी पहुँच कभी नहीं होगी। तब कभी कल्पना भी नहीं की थी कि एक दिन अचानक अपने छोटे-से कमरे, ग्रामोफ़ोन, काग़ज़-पत्तोंको छोड़कर बरसों 'सात समुद्र पार' रहना होगा।

बचपनमें मेरा एक प्रिय प्रायवेट खेल था – कुछ-कुछ मॉर्बिड भी। रातको नींदकी प्रतीक्षा करते हुए मैं सहसा अपने-आपसे पूछता था – फ़र्ज़ करो, अगले पाँच मिनिटमें तुम मर जाओगे, इस बीच तुम कौन-सी चीज़ें याद करना चाहोगे ? मैं तब कुछ इतना घबरा-सा जाता था कि जल्दी-जल्दी हड़बड़ाहटमें कुछ भी याद नहीं आता था। आज यदि मैं अपनेसे यह प्रश्न पूछूँ तो मुझे निश्चय है कि स्मृति अनायास उन वर्षों और उनसे जुड़ी घटनाओंके आस-पास घूमती रहेगी जिसके कुछ अंश इस पुस्तकमें संग्रहीत हैं – यह बात दूसरी है कि पाँच मिनिटकी 'मुहलत' इस प्रक्रियामें एक-दो घण्टे तक खिंच जाती है ! उसके बाद भी मृत्युका न आना एक चमत्कार-सा ही लगता है।

वास्तवमें इस भूमिकामें मैं इस 'चमत्कार'की ही चर्चा करना चाहता था। इन यात्राओंमें अनेक ऐसी घड़ियाँ आयी थीं जिन्हें शायद मैं आज याद करना नहीं चाहूँगा····लेकिन घोर निराशा और दैन्यके क्षणोंमें भी यह ख़याल कि मैं इस दुनियामें जीवित हूँ, हवामें साँस ले रहा हूँ, हमेशा एक मायावी चमत्कार-सा जान पड़ता था।

महज़ साँस ले पाना – जीवित रहकर धरतीके चेहरेको पहचान पाना – यह भी अपनेमें एक सुख है – इसे मैंने इन यात्राओंमें सीखा है····

हर चमत्कारके पीछे ज़रूर कोई-न-कोई 'एंजिल' छिपा रहता है – ऐसा मैं विश्वास करने लगा हूँ। यदि इस समय मुझे स्वामीनाथ, बरेन रॉय और आइसलैण्डी कवि थोर्गियेर थोर्गियरसौन याद आते हैं – तो उनके प्रति सिर्फ़ अपना आभार प्रकट करने नहीं – बल्कि इसलिए कि उनके बिना शायद कोई भी चमत्कार सम्भव न हो पाता। •

७ जनवरी, १९६४
नयी दिल्ली–५

– निर्मल वर्मा

क्रम

उत्तरी रोशनियोंकी ओर

१. ब्रेख़्त और एक उदास नगर ३
२. रोती हुई मर्मेडका शहर २२
३. उत्तरी रोशनियोंकी ओर ४८
४. सफ़ेद रातें और हवा ६७

चीड़ोंपर चाँदनी

५. लिदीत्से : एक संस्मरण ९७
६. बर्त राम्का : एक शाम १०६
७. पेरिस : एक स्टिल लाइफ़ ११६
८. वियना १३३
९. चीड़ोंपर चाँदनी १४३

देहरीके बाहर

१०. लैक्सनेस : एक इण्टरव्यू १५५
११. काफ़्का और चापेक :
समकालीन चेक साहित्य १६५
१२. देहरीके भीतर : चेखॅवके पत्र १८५

ब्रेख़्त और एक उदास नगर

एक पुरानी चीनी कहावत है : हज़ार मीलकी यात्रा एक छोटे क़दम-से आरम्भ होती है। किन्तु कौन-से अनजाने क्षण हम वह क़दम, आँखें मूँद ले लेते हैं, यह आज भी मेरे लिए रहस्य बना है। मुझे आज भी उस रातकी धुँधली-सी याद है। 'धुँधली-सी' इसलिए कि हम उस रात इतनी बीयर पी चुके थे कि आज उसके बारेमें कुछ भी याद रह सका यही आश्चर्य है। सिर्फ़ इतना याद है कि वह शुरू वसन्तकी एक शाम थी, शहर प्राग था, और मैं अपने आइसलैण्डी मित्रोंके संग नीचे 'वेस-मेण्ट'की एक 'बार'में बैठा था। न जाने उस शाम हम कितनी दफ़ा एक 'बार' छोड़कर दूसरी, और दूसरी छोड़कर तीसरीमें भटकते रहे थे। कभी हम ख़ुद बाहर चले जाते थे, कभी ऐसा भी होता था कि हमें ज़बरदस्ती बाहर कर दिया जाता था।

वह शायद मालास्त्रानाका एक छोटा पुराना-सा 'होस्पोदा' था। चेक-में 'होस्पोदा' एक अत्यन्त दिलचस्प शब्द है, और उसका अनुवाद करना बहुत ही उलझनकी चीज़ है, जबतक आप स्वयं वहाँ न गये हों। वह प्रागकी एक अपनी चीज़ है – न उसमें वह उच्चवर्गीय भद्रता है, जो 'बार' शब्दसे आती है, और न ही आधुनिक युगका वह सस्ता छिछलापन, जो 'रेस्तराँ' शब्दसे जुड़ा है। 'होस्पोदा'की अपनी गरम, स्निग्ध-सी आत्मीयता है, जहाँ शराबी आपके गलेमें हाथ डालकर गाते रहते हैं, जहाँ 'वेटर'को अपनी प्रेमिका – या प्रेमिकाओंसे ही अवकाश नहीं मिलता। शायद लन्दन-का 'टेवर्न', 'होस्पोदा'के सबसे नज़दीक आता है – किन्तु अँगरेज़ोंमें पीनेकी संस्कृति कहाँ ?

हमारी बहस और बातोंका छोर शायद छुट्टियोंपर आ टिका था। वे लोग, मेरे मित्र, वापस अपने देश लौट रहे थे – आइसलैण्ड। पिछले अनेक महीनोंसे उनके संग मेरा बहुत घना सम्पर्क रहा है। उनके छोटे-से देशके प्रति मेरा आकर्षण अनजाने ही एक पहेली-सा बन गया है – स्वयं मेरे लिए।

उनमें एक मेरे मित्र हैं थोर्गियेर – 'सिनेमाटोग्राफ़ी'के छात्र। उनकी एक कविता मैंने अरसा पहले 'कृति'को भेजी थी। शायद हममें-से सबसे अधिक घुमक्कड़ व्यक्ति भी वही हैं। प्राग आनेसे पहले वह पेरिसमें थे, और उससे भी पहले स्पेनमें। अन्य मित्र छुट्टियाँ ख़त्म हो जानेके बाद वापस प्राग लौट आयेंगे – सिवाय उनके। वह 'हमेशाके लिए' आइसलैण्ड जा रहे हैं – अपने 'कोर्स'को अधूरा छोड़कर। कहीं भी ज़्यादा दिनों तक टिका रहना उनके लिए असम्भव है।

बीयरके गिलाससे आँखें ऊपर उठीं····एक हलकी-सी मुसकराहट उनके होंठोंपर आ सिमटी। मैंने सोचा, उन्हें शायद कोई नयी हँसी-मज़ाक़की बात सूझी है किन्तु वे चुप रहे; सिर्फ़ गिलासपर मुसकराहटकी छाया झूलती रही।

अन्य मित्र भी मेरी ओर वैसी ही गोपनीय दृष्टिसे देख रहे थे, जैसे उनके बीच कोई गुप्त समझौता हो, जिसे वह मुझसे छिपा रहे हों।

"तुम्हें कोई आपत्ति होगी", इस बार थोर्गियेरने कुछ झिझकते हुए कहा, एक ऐसी झिझक जो गहरी विनम्रतासे जुड़ी होती है।

"छुट्टियोंमें क्या करोगे ?" थोर्गियेरने पूछा।

मैंने अपनी 'बीयर'को बहुत प्यारसे देखा – उत्तरमें। वे हँसने लगे।

"तुम्हें कोई आपत्ति होगी, हमारे संग आइसलैण्ड चलनेमें – सिर्फ़ कुछ दिनोंके लिए।"

यह मज़ाक़ नहीं था। उन सबके चेहरे बहुत गम्भीर थे। मैं हँसने लगा।

उस रात यह बात ज़्यादा आगे नहीं बढ़ी····उनकी गम्भीरताके बावजूद, मैं उसे ज़्यादा गम्भीरतासे नहीं ले सका। भारतसे युरॅप आना भी मुझे इतना असम्भव नहीं लगा था, जितना आइसलैण्ड जानेकी कल्पना करना। मेरे लिए आइसलैण्डकी यात्रा 'आउटर स्पेस'को छूनेसे कम चमत्कारपूर्ण नहीं थी। इसके बाद कौन कह सकेगा कि हमारे युगमें चमत्कार नहीं होते। कमसे कम मैं उनपर विश्वास करने लगा हूँ।

हम प्राग-बर्लिनकी इण्टरनेशनल ट्रेनमें हैं – प्रागके स्टेशनपर हमें बहुत-से मित्र बिदा देने आये थे। टिकिट मेरे पास है, वीसा बन चुका है, विदेशी मुद्राकी झंझटें भी लगभग सुलझ गयी हैं – किन्तु विश्वास अब भी नहीं होता।

थोर्गियेर मेरे संग है। कभी-कभी वह मेरे परेशान चेहरेको देखकर मुसकराने लगता है। बाहर 'प्लेटफ़ॉर्म'पर बहुत-से जाने-पहचाने चेहरे हैं। किसीने सुझाव दिया कि मुझे अपनी यात्राकी विस्तृत डायरी लिखनी होगी – वह शायद मारियाका सुझाव है। कल रात हम सब संग थे – रातकी अन्तिम घड़ियों तक प्रागकी सड़कोंपर घूमते रहे थे। थोर्गियेर प्राग छोड़नेसे पहले प्रागके सब बीयर-घरों और 'होस्पोदाओं'को विदा देना चाहता था – वह हमेशाके लिए प्रागसे जा रहा है। मैं फिर वापस आऊँगा किन्तु यह विचार ज़्यादा आश्वस्त नहीं करता। लगता है, मैं दुनियाके दूसरे छोरपर जा रहा हूँ।

डायरी लिखनी होगी····

हाथ हिलते हैं – वे सब हाथ, जो दिनमें कितनी बार प्रागके चौराहोंपर मेरे हाथोंसे मिलते थे। हवामें हिलते हुए रूमाल और उनके पीछे धुँधले होते वल्तावाके पुल और पुरानी चर्चोंकी मीनारें····

मैं आइसलैण्ड जा रहा हूँ, किन्तु सोच रहा हूँ बराबर प्रागके बारेमें। तॉल्स्तॉयका कथन याद आता है – 'वार ऐण्ड पीस'की कुछ पंक्तियाँ····जब

हम किसी सुदूर यात्रापर जाते हैं – आधी यात्रापर पीछे छूटे हुए शहरकी स्मृतियाँ मँडराती हैं, केवल आधा फ़ासला पार करनेके बाद ही हम उस स्थानके बारेमें सोच पाते हैं, जहाँ हम जा रहे हैं।

किन्तु ऐसे लमहे भी होते हैं, जब हम बहुत थक जाते हैं – स्मृतियोंसे भी – और तब ख़ाली आँखोंसे बीचका गुज़रता हुआ रास्ता ही देखना भला लगता है····शायद, क्योंकि बीचका रास्ता हमेशा बीचमें बना रहता है····स्मृतिहीन और दायित्वकी पीड़ासे अलग।

मैं रेलकी खिड़कीसे बाहर देखने लगता हूँ।

हमारी यात्राका पहला पड़ाव बर्लिनमें है, जहाँ हम दुर्भाग्यवश एक रातसे अधिक नहीं टिक सकते। पूर्वी जर्मनीका 'ट्रान्सिट-वीसा', समयके लिहाज़से, चौबीस घण्टोंसे आगे नहीं जाता। बर्लिनमें अधिक दिनों तक रहनेकी लालसा मनमें दब जाती है। सोचता हूँ, वापस आते हुए कुछ दिन अवश्य यहाँ रुक जाऊँगा, और कुछ नहीं तो बर्गोमान म्यूज़ियम देखनेके लिए ही।

किन्तु थोर्गियेरने बहुत पहलेसे ही एक योजना तैयार कर ली है। उसकी 'चिन्तन-धारा' कब कहाँ कैसा मोड़ लेगी, इसका अनुमान लगाना मेरे लिए हमेशा असम्भव-सा रहा है। बर्लिनमें उसके चन्द आइसलैण्डी मित्र रहते हैं। उन्हें पहलेसे ही हमारे आगमनकी सूचना मिल चुकी है। (कैसे उन्हें यह सूचना मिली, मेरे लिए यह अबतक रहस्य बना है। थोर्गियेरके आलस्यपर मेरा इतना गहरा विश्वास है कि वह उन्हें चिट्ठी या तारसे कोई सूचना दे सकेगा, यह असम्भव-सा लगता है। वैसे, जैसा मैंने पहले कहा, चमत्कारोंपर मेरा विश्वास होने लगा है।) "वे लोग वहाँ टिकिट लेकर मौजूद रहेंगे" थोर्गियेरने कहा।

"कैसे टिकिट ?" मैं कुछ भी नहीं समझ सका।

"मैं ख़ुद ही नहीं जानता", उसने अधमुँदी आँखोंसे मुझे देखा,

"शायद किसी थिएटरके।"

"किन्तु हमारी गाड़ी बर्लिन सात बजेसे पहले नहीं पहुँचेगी····थिएटर या कोई भी चीज़ असम्भव है।"

"स्टेशनसे 'बर्लिन-एन्सेम्बल' ज़्यादा दूर नहीं, आध घण्टेमें पहुँच जायेंगे।"

बर्लिन-एन्सेम्बल! मैं खुली आँखोंसे थोर्गियेरको देखता रहा—नहीं, वह मज़ाक़ नहीं कर रहा। काश, मैं उसे अच्छी तरह पीट सकता। अरसेसे यह इच्छा रही है।

गाड़ी बर्लिनकी ओर भाग रही है—मध्य-युरॅपका प्रकृति-दृश्य आज तक निरपेक्ष दृष्टिसे नहीं देख सका। वैसे, रेलकी खिड़कीके बाहर सब कुछ शान्त और समतल है—सब एक ही जगह रुकी-सी और फिर भी तेज़ीसे बदलती हुई 'स्टिल-लाइफ़'! मैं मध्य-युरॅपमें हूँ—जर्मनीमें—और यह १९६१की गरमियाँ हैं—दूर-दूर फैले हुए खेतोंपर जूनकी उजली, उनींदी-सी धूप और भूरी मिट्टीकी गन्ध। एक बोझिल-सी गन्ध, जिसमें पूरी एक मृत पीढ़ीका अतीत भरा है। मैं दो बार—लन्दन और पेरिस जाते हुए जर्मनीके बीचसे गुज़रा हूँ—किन्तु कभी यहाँ उतरनेको मन नहीं हुआ। कोई अदृश्य-सा भय, एक अजीब-सी झिझक सामने खड़ी हो जाती है। युद्धको खत्म हुए एक लम्बा अरसा बीत गया। कोई भी आज उसे याद नहीं करता। घिसी-पिटी कहावत है—गड़े मुरदोंको उखाड़ना ठीक नहीं, यह एक बुरी आदत है। किन्तु मैं, जो एक सुदूर देशसे युरॅप आया हूँ—मुझे कई बार ऐसा लगता है कि जो समय सबके लिए, यहाँके निवासियोंके लिए, बीत गया है, वह मेरे लिए अभीतक जीवित है, प्रतीक्षारत है, और जबतक मैं उसे अन्य प्राणियोंकी तरह भोग नहीं लूँगा, वह मुझसे छूटेगा नहीं। गड़े मुरदे? वे हर आदमीके भीतर हैं—जब कभी मध्य-युरॅपसे गुज़रता हूँ, मुझे उनका ठण्डा स्पर्श महसूस होने लगता है। मैं पूर्वग्रह-ग्रस्त नहीं हूँ, किन्तु आज भी मैं किसी जर्मनको देखता हूँ, मेरे

भीतर एक फ़िज़ूल, बेमानी-सी बेचैनी होने लगती है।

यह बेचैनी एक हद तक उस बेचैनीसे मिलती है, जो मुझे बहुत पहले भान और काफ़्काकी कथाओंको पढ़नेसे होती थी। आज सोचता हूँ, तो आश्चर्य होता है कि मैंने इस 'बेचैनी' को – युरॅप आनेसे पूर्व कभी ठीकसे समझनेका प्रयत्न नहीं किया। यह आकस्मिक नहीं है कि दोनों लेखक मध्य-युरॅपके दो अलग-अलग भागोंसे सम्बन्धित थे – जर्मनी और चेको-स्लोवेकिया। यहाँसे गुज़रते हुए पहली बार महसूस होता है कि युरॅपका यह खण्ड – ज़िन्दगीके उन अज्ञात, गोपनीय रहस्योंसे गुम्फित है – जिन्हें आज तक फ्रान्स, इंग्लैण्ड या स्पेनने स्पर्श नहीं किया है।

धूलका अन्धड़ आनेसे पूर्व जैसे समूचे शहरमें एक पीला, दम घोटने-वाला, आशंकित धुँधलका – धुँधलका भी नहीं – उजालेका गिलगिला-सा फैल जाता है, जब हम सूनी सड़कपर किसी अज्ञात घरकी दीवारसे सटे खड़े रहते हैं – और हर वह चीज़, जो बहुत साधारण और परिचित है – एक भयावह, विकृत छाया लिये सामनेसे गुज़र जाती है – मेरे लिए मध्य-युरॅप-का यह बहुत पुराना, परिचित स्मृत-चित्र है, जो आज भी रेलकी खिड़की-के बाहर देखते हुए उभर आता है।

सामनेकी बेंचपर थोर्गियेर आँखें मूँदे लेटा है····मैंने अपनी सिगरेट जला ली। शाम घिरने लगी है। बाहर आबादीके चिह्न नज़र आने लगे हैं – मिलोंकी चिमनियोंके परे टिमटिमाती रोशनियाँ और घरोंकी छतें – कहीं सिर्फ़ मलबे और ईंटोंके ढूह, आधे टूटे हुए मकान और सूनी, कंकाल-की आँखों-सी खिड़कियाँ। बमों और गोलियोंके निशान अब भी वैसे हैं····मैं थोर्गियेरका कन्धा हिलाने लगा हूँ। वह अब भी सो रहा है।

बर्लिनका प्लेटफ़ॉर्म – रात!

भीड़में थोर्गियेरका मित्र दूरसे ही हमें देख लेता है। थोर्गियेरका सामान कम नहीं है – तीन बड़े-बड़े सन्दूक़, फ़िल्म और फ़ोटोग्राफ़ीके कैमरे, इफल-बैग और थैले। मेरा सूटकेस अलग है। काफ़ी चीख-पुकारके

बाद ठेलेपर सामान चढ़ाया जाता है और हम क्लॉक-रूमकी तरफ़ चलने लगते हैं।

हमें बहुत जल्दी चलना चाहिए। समय बहुत कम है, पन्द्रह मिनिट – शायद उससे भी कम। थोर्गियेरके मित्रके पास हमारे टिकिट हैं – बर्लिन-एन्सेम्बलके। सीधे स्टेशनसे थिएटर दौड़ना होगा, दूसरा कोई चारा नहीं। कुछ घण्टोंके बाद हमारे 'वीसा' की अवधि खत्म हो जायेगी। हमें अभीतक मालूम नहीं कि हमारा रातका ठिकाना कहाँ रहेगा।

किन्तु इस क्षण मैं आनेवाली रातके बारेमें नहीं सोच रहा। सोच रहा हूँ, बर्टोल्ड ब्रेख्तके बारेमें, जिनका नाटक हम देखने जा रहे हैं। मेरी एक पुरानी दबी साध थी बर्लिन-एन्सेम्बलमें ब्रेख्तका नाटक देखनेकी।

शायद, मेरे लिए बर्लिन आनेका सबसे बड़ा आकर्षण भी यही रहा है। बीसवीं सदीके यह सबसे महान् नाट्यकार – जिनकी तुलना शेक्सपियरसे की जाती है – नात्सी सत्ता स्थापित हो जानेके बाद जर्मनीसे बाहर चले गये। उन्होंने अपने सबसे महत्त्वपूर्ण और लोकप्रिय नाटकों, 'गेलिलियो', 'मदर-करेज' इत्यादिकी रचना अपने देशके बाहर, निर्वासित-कालमें की – एक स्थानसे दूसरे स्थान भटकते हुए। साहित्यिक बहसों और आलोचनाओंमें जब-जब कॅम्युनिस्ट लेखकोंपर 'कट्टरता' या 'संकीर्णता'-का आरोप लगाया जाता है, तब अकसर मेरा ध्यान ब्रेख्तपर चला जाता है। नाटककी समस्त परम्परागत मान-मर्यादाओंको तोड़कर उसे – बीसवीं सदीके विशिष्ट प्रतीकके रूपमें – सर्वथा नया मोड़ देनेवाला यह जर्मन लेखक एक फ़ासिस्ट-विरोधी, कॅम्युनिस्ट भी हो सकता है, पश्चिमके आलोचकोंके लिए यह हमेशा एक विवादास्पद विषय बना रहा है। आश्चर्य नहीं कि अभीतक समाजवादी देशोंमें भी उनके क्रान्तिकारी प्रयोगों-का ठीकसे मूल्यांकन नहीं हो पाया। पश्चिमके साहित्यकार ब्रेख्तके महान् कृतित्वको स्वीकार करते हैं – उनके कॅम्युनिस्ट व्यक्तित्वको नहीं। पूर्वी देशोंके आलोचक उनके कॅम्युनिस्ट व्यक्तित्वकी सराहना करते हैं, किन्तु

उनके कृतित्वके सम्बन्धमें, शायद, पूरी तरहसे आश्वस्त नहीं।

शीत-युद्धका रुग्ण वातावरण एक महान् लेखकके इर्द-गिर्द कितना उपहासास्पद विरोधाभास निर्मित कर सकता है, ब्रेख्त इसके सजीव उदाहरण हैं।

युद्धके उपरान्त उन्होंने पूर्वी जर्मनीमें रहना स्वीकार किया, – यह एक ऐसा तथ्य है, जो आज हमें 'बर्लिन-प्रश्न'की पृष्ठभूमि समझनेमें बहुत कुछ सहायक हो सकता है। १९४९में अपनी पत्नी हैलेन वेगेल (जो खुद एक प्रसिद्ध अभिनेत्री है) के संग ब्रेख्तने पूर्वी-बर्लिनमें 'बर्लिन-एन्सेम्बल' की स्थापना की। आज ब्रेख्त जीवित नहीं हैं, किन्तु हैलेन वेगेलके निर्देशनमें उनका 'जादुई-स्पर्श' आज भी पूर्ववत् स्पन्दित होता है।

आज यह अनहोनी-सी बात लगती है, किन्तु उस रात जिस अजीब परिस्थितिमें हैलेन वेगेलसे 'मुलाक़ात' हुई, वह एक विचित्र, अप्रत्याशित घटना थी।

हम थिएटर – अपनी भागदौड़के बावजूद – पन्द्रह-बीस मिनिट देरसे पहुँचे। इसका हमें खेद अवश्य था, किन्तु ज्यादा दुःख नहीं, क्योंकि उस रात ब्रेख्तका नाटक 'फ़ियर ऐण्ड मिज़री ऑव थर्ड रायख' दिखाया जा रहा था। यह नाटक अनेक छोटे-छोटे नाट्य-खण्डोंसे संयोजित है जिसमें हिटलर-जर्मनीका भयंकर वातावरण चित्रित हुआ है। हर नाट्य-खण्ड अपनेमें स्वतन्त्र है, और उनका रसास्वादन हम पिछले खण्डोंको देखे बिना भी कर सकते हैं।

याद नहीं आता, हम कौन-से टेढ़े-मेढ़े रास्तों और गलियोंसे होते हुए 'बर्लिन-एन्सेम्बल' पहुँचे। पूर्वी बर्लिनका यह भाग, जहाँ थिएटर है, बहुत उजड़ा-सा और वीरान दिखता है। युरॅपके सबसे क्रान्तिकारी थिएटरकी इमारत इतनी सादी और साधारण होगी, यह अपनेमें एक शिक्षाप्रद चीज़ थी। ब्रेख्तने अपने थिएटरके लिए स्वयं यह स्थान चुना था।

नाटक शुरू हो चुका था, अतः हम अपनी सीटोंपर नहीं जा सके। फिर भी, विदेशी होनेके कारण हमें बाहर खड़े होकर प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। एक महानुभाव हमें ऊपर 'बॉक्स' की तरफ़ ले गये। दरवाज़ा धीरे-से खोला गया। हम दबे पाँव भीतर आये, दो कुरसियाँ ख़ाली पड़ी थीं, हम उन्हींपर बैठ गये। कुछ देर तक हमें पता नहीं चला कि 'बॉक्स' में हमारे अलावा कोई अन्य व्यक्ति भी है। वह चुपचाप एक कोनेमें सिमटी-सी बैठी थीं····इतनी तल्लीन और खोयी-सी कि कदाचित् उन्हें हमारे भीतर आनेका आभास तक नहीं हुआ। अधेड़ उम्र, चेहरेपर हलकी-हलकी-सी झुर्रियाँ, किन्तु आँखोंमें एक तीखी, तपती-सी आभा, एक अजीब, आकुल-सी गरमाहट····ये हैलेन-वेगेल थीं।

मुझे उस 'बॉक्स' में अपनी उपस्थिति बहुत अखरने-सी लगी। लगा जैसे हमने उनके एकान्त कोनेमें आकर कोई अपराध किया है। कुछ देर बाद वह उठकर बाहर चली गयीं, और फिर नाटकके समाप्त होने तक दिखाई न दीं।

'बर्लिन-एन्सेम्बल' की प्रधान निर्देशिका हैलेन वेगेलसे हमारी 'ऐतिहासिक' मुलाक़ातका ब्योरा भी यहीं खत्म होता है।

नाटक ही तो है····

ब्रेख़्तके लिए महज़ यह काफ़ी नहीं है – वे इससे कहीं आगे जाते हैं। नाटक मंचपर खेलनेकी चीज़ नहीं, वह जीनेकी सक्रिय कला है, हर परिचित, पुरानी चीज़को नये सिरेसे छूनेकी अपेक्षा है, ताकि हम उसे आज-का, इस क्षणका धड़कता सत्य दे सकें। हक़ीक़त ही तो नाटक है···· सिर्फ़ उसे समकालीन दृष्टिसे पहचाननेकी आवश्यकता है।

समकालीन····यह शब्द आज काफ़ी विकृत हो चुका है। प्रायः उन सब लेखकोंके लिए यह प्रयुक्त होता है जो आज जीवित हैं और लिख रहे हैं – अकसर उनके लिए भी जो 'जीवित' नहीं हैं और लिख रहे हैं।

उस रात 'टेरर ऐण्ड मिज़री' देखते हुए मैं पहली बार 'समकालीन' शब्दसे परिचित हो पाया। यदि उसका कोई अर्थ है तो सिर्फ़ एक प्रयोग, जब आदमीके अस्तित्वकी हर तह एक नये स्तरपर अप्रत्याशित अर्थ ग्रहण कर लेती है····जब बाह्य परिस्थिति एक बेडौल, विकृत छाया है (एक गूँगे दैत्यकी मानिन्द), जो न कुछ कहती है, न हमारे सामनेसे हटती है, एक असह्य-सा दबाव, जिसे हर मनुष्य सोते-जागते अपनेपर महसूस करता है। कुछ लेखक हैं, जो इस 'दैत्य' से मुक्ति पानेके लिए उसे अपने एक आत्मपरक प्रतीकमें ढाल लेते हैं – तब 'बाह्य' इतना पराया, इतना डरावना नहीं रहता। काफ़्का, और एक दूसरे अर्थमें सार्त्र ऐसे ही लेखक हैं। यह एक रास्ता है, इस भयावह सुरंगसे बाहर आनेका – एक अमानवीय 'दैत्य' को निजी प्रतीक-द्वारा साधारण, औसत वास्तविकतामें ढालनेकी प्रक्रिया।

ब्रेख्त भी यही करते हैं – किन्तु बिलकुल दूसरे ढंगसे। 'बाह्य-परिस्थिति' उनके लिए ऐतिहासिक है – सूक्ष्म अर्थमें नहीं – समयके हाड़-मांस ठोस पिंजरमें आबद्ध, जिस सदीमें हम जीते हैं, उसके सन्दर्भमें बेहद, इण्टेन्स राजनीतिक! फासिज़्म, बन्दी शिविर, नर-संहार····ये महज़ दीवारकी छायाएँ नहीं, जिन्हें एक आत्मपरक प्रतीक दिया जा सके, क्योंकि वे स्वयं प्रतीक हैं, एक विघटन-प्रक्रियाके, जिसमें हम सब, अलग-अलग व्यक्तिकी हैसियतसे, शामिल हैं। यह आकस्मिक नहीं कि ब्रेख्तका नाटक देखते हुए अचानक एक ऐसा क्षण आता है, जब लगता है, जैसे थिएटरकी दीवारोंके परे बरबस कुछ आवाज़ें भटक रही हैं, दरवाज़ा खटखटा रहा है – और हम – दर्शक और अभिनेता – समूचा मंच और 'एडिटोरियम' एक अजीब दबाव तले धँसने लगते हैं – सिर्फ़ एक उपाय है मुक्ति पानेका – हम बाहर निकल आयें और इन 'आवाज़ों' के साक्षी हो सकें।

ब्रेख्त कॅम्युनिस्ट थे, क्योंकि उनके लिए कॅम्युनिस्ट होनेके मानी बहुत सहज थे – समकालीन होना, दूसरे शब्दोंमें, अपने निजी घेरेके बाहर

उन सब आवाज़ोंका साक्षी होना, जो बीसवीं सदीके अँधेरेसे टकराती हुई हमारे पास आती हैं।

यह सब सोचा था, उस रात, जब हम बर्लिनकी सड़कोंपर भटक रहे थे। हमारा पूर्व-जर्मनीका ट्रान्सिट-वीसा आख़िरी साँसें लेकर दम तोड़ चुका था। थिएटरसे बाहर आनेपर थोर्गियेरके मित्रने सुझाव दिया कि हमें पश्चिमी-बर्लिनमें रात काटनेके लिए होटल तलाश करना चाहिए। वहाँ वे अन्तर्राष्ट्रीय समझौतेके कारण 'वीसा' पर ध्यान नहीं देते। इस बीच दो अन्य आइसलैण्डी छात्र, जो उसी शाम हमसे मिलने लेपज़िगसे बर्लिन आये थे, थिएटरके बाहर मिल गये। हमने उनके सामने अपनी समस्या पेश की। किन्तु इससे पेश्तर कि हम अपनी बात पूरी कह पाते, उनमें-से एकने लापरवाहीसे कहा, अरे सुनो, रात अभी काफ़ी जवान है····क्यों न हम थोड़ी बीयर ही पी लें?

थोर्गियेर जैसे इतनी देरसे इसी प्रश्नकी प्रतीक्षा कर रहा हो····हाँ···· उसने गम्भीर दार्शनिककी मुद्रामें सब समस्याओंको अलग ठेलते हुए कहा, हाँ ब्रेख़्तके बाद बीयर, बुरा ख़याल नहीं है।

होटलकी समस्या कुछ देरके लिए टल गयी। रात अभी जवान थी।

किन्तु उस रात जैसे बर्लिनकी समूची आबादी बीयर-पबों और रेस्त-राओंपर टूट पड़ी थी। हम जैसे भीतर जाते थे, वैसे बाहर आ जाते — सूखे और थके-माँदे। कहीं भी बैठनेकी थाह नहीं थी। हम अँधेरी सड़कों-को पार करते रहे···· बर्लिनकी पुरानी इमारतोंपर जब कभी निगाह पड़ जाती थी, मुझे वियना और प्रागके पुराने मकान स्मरण हो जाते थे — वैसा ही भयावह भारीपन, और वैसी ही सूनी, वीरान आँखों-सी खिड़कियाँ, सोचता हूँ — यह आकस्मिक नहीं 'एक्सप्रेशनिस्ट पेण्टिंगका' इतना घना, गहरा सम्बन्ध है, मध्य-युरॅपके शहरी प्रकृति-दृश्यसे। गलियाँ, जहाँ एक कभी ख़त्म न होनेवाले दुःस्वप्नकी मानिन्द आगे चलती जाती हैं····कुछ मकान हैं, जहाँ लड़ाईसे पहले यहूदी परिवार रहते थे। अब वे ख़ाली और

सूने पड़े हैं। कुछ फ़ासलेपर जली हुई ईंटें और टूटी दीवारोंका मलबा दिखाई दे जाता है····लड़ाईको खत्म हुए मुद्दत बीती, किन्तु उसके मिटे-बुझे घाव जहाँ-तहाँ उभर आते हैं। कहीं-कहीं सड़कके किनारे ऐसी अजीब इमारतें भी मिलती हैं जिनकी चार-दीवारी साबुत और सम्पूर्ण है, किन्तु बीचमें महज़ खोखलके अलावा कुछ भी नहीं – लगता है, जैसे हम किसी पूर्व-ऐतिहासिक नगरके खण्डहरोंके बीच रास्ता टटोल रहे हों।

आखिर एक रेस्तराँमें खाली जगह मिली। जर्मन बीयरके गिलास हमारी मेज़पर धीरे-धीरे इकट्ठा होने लगे। नये आइसलैण्डी छात्रोंसे मेरा परिचय हो गया था, किन्तु फिर भी वे कभी-कभी मेरी ओर तनिक हैरत-भरी दृष्टिसे देखने लगते थे, मानो उन्हें यह काफ़ी अजीब लग रहा हो कि मैं सचमुच उनके देश जा रहा हूँ। मैं खुद कभी-कभी पीते हुए, या बात-चीतकी रौमें भूल जाता था कि बर्लिन सिर्फ़ बीचका स्टेशन है – सिर्फ़ एक रात यहाँ ठहरना है, और दूसरे दिन ही अपना बोरिया-बिस्तर बाँध-कर यहाँसे चल देना है।

आइसलैण्डीका दो चीज़ोंके प्रति गहरा लगाव अद्भुत है – बीयर और अपनी भाषा। अपनी भाषाके प्रति ललक और प्यार मैंने अपने देशमें बंगालियोंमें, और युरॅपमें आइसलैण्ड-निवासियोंसे अधिक और कहीं नहीं देखा, कुछ ऐसा संयोग है कि भारतमें मेरे सबसे स्नेही और आत्मीय मित्र बंगाली और युरॅपमें आइसलैण्डी रहे हैं – दोनोंकी मण्डलियोंमें घण्टों गुज़ारनेका अवसर मिला है और गो वे हमेशा आपसमें अपनी भाषामें बात-चीत करते हैं, मैंने कभी उनके बीच अपनेको अकेला महसूस नहीं किया।

अभीतक आइसलैण्डी भाषाके दो शब्द सीख पाया हूँ – जिनमें-से एकसे पहले ही परिचित था, अर्थात् उसका अर्थ आइसलैण्डी भाषामें वही है, जो हिन्दीमें। शब्द है सम्बन्ध! उनकी बातचीतके दौरानमें अचानक मुझे यह शब्द सुनाई दिया। पहले मैंने कोई ध्यान नहीं दिया किन्तु दोबारा यही शब्द और उच्चारण सुनकर मैं कुछ चौकन्ना हो गया –

कौतूहलवश थोर्गियेरसे इस शब्दके अर्थ पूछे और हम दोनों हैरतसे एक दूसरेकी ओर देखने लगे जब हमें मालूम हुआ कि दोनों भाषाओंमें सम्बन्ध चाहे बिलकुल न हो, 'सम्बन्ध' शब्दके अर्थ एक ही हैं ! [आशा करता हूँ, हिन्दी भाषा-विज्ञानके शास्त्री मेरी इस खोजपर मुझे बधाई देना नहीं भूलेंगे ।]

एक दूसरा शब्द भी सीखा है – 'स्काऊल' । अँगरेज़ीमें बहुत हद तक 'चीयर्ज़'का पर्याय, शराब या बीयर पीनेसे पहले 'स्काऊल' कहा जाता है (चेकमें 'नज़दार', जो मेरा प्रिय शब्द है) । अन्य आइसलैण्डी मित्रोंको जब हमारी अद्भुत 'खोज'का पता चला, तो सबने अपने बीयरके गिलास ऊपर उठा लिये । सबने कोरसमें एक संग कहा, "स्काऊल फ़ॉर सम्बन्ध !"

बादमें, आइसलैण्ड जानेपर हमारा यह सबसे अधिक प्रिय 'टोस्ट' बन गया, आइसलैण्ड-भारत-मैत्री-सम्बन्धका प्रतीक ।

मालूम नहीं, उस रात हम कितनी देर तक वहाँ बैठे रहे । मैंने अपना सिर मेज़पर टिका लिया था । बीच-बीचमें नींदके नरम झटोंके आस-पासकी आवाज़ोंको छिपा लेते थे । दिन-भरकी थकानके बाद थोड़ी-सी बीयरने भी जादूका असर किया था । एक थके तैराककी भाँति मैंने अपनेको बिलकुल ढीला छोड़ दिया, पानीपर बिना किसी सचेष्ट क्रियाके तिरते रहना, यह भी एक सुख है । जब कभी मैं बहुत नीचे डूबने लगता, तो अचानक मुझे 'स्काऊल'की आवाज़ झटकेसे ऊपर उठा देती और मैं फिर चेतनाके तटपर आ लगता ।

इस बीच उन्होंने टेलेफ़ोन-द्वारा पश्चिमी बर्लिनके किसी होटलमें हमारे ठहरनेकी व्यवस्था कर दी थी । थोर्गियेरका मित्र, जो बर्लिनमें ही रहता था, हमें होटल पहुँचा आयेगा, अतः हम उस ओरसे प्रायः निश्चिन्त हो गये थे ।

आखिर जब हम वहाँसे उठे तो आधी रात बीत चुकी थी । एक-

दूसरेसे विदा लेनेकी घड़ी आ पहुँची थी। स्वभावसे आइसलैण्डी अत्यन्त शर्मीले और संकोची होते हैं, किन्तु उस रात वे सब बहुत कम समयमें आत्मीय हो गये, तनिक भावुक भी, कदाचित् इसलिए कि मैं – एक भारतीय – इतनी दूर, उनके देश आइसलैण्ड जा रहा था। शायद, इसलिए भी कि हम ज़रूरतसे ज़्यादा बीयर पी चुके थे।

जानेसे पहले उन्होंने मुझे आइसलैण्डमें अपने मित्रों, रिश्तेदारोंके पते दिये – मुझे उन सबसे मिलना होगा। "और उत्तरमें जाइएगा – असली आइसलैण्ड वहाँ है, रिक्याविक तो सिर्फ़ राजधानी है, महज़ टूरिस्टोंके आकर्षणके अलावा वहाँ कुछ भी नहीं" – उनमें-से एकने कहा, "और ब्लैकडैथ····उसे पीना मत भूलिए, वह हमारी राष्ट्रीय शराब है।" इसपर ज़ोरका ठहाका लगा।

"आशा है, आप किलियनसे भी मिलेंगे?"

"किलियन?" मैं कुछ समझ नहीं सका।

"लैक्सनेस" थोर्गियेरने स्पष्टीकरण किया।

"ओह लैक्सनेस! दिल्लीमें उनसे मुलाक़ात हुई थी····'इण्डिपेण्डेण्ट पीपुल' पर मैंने उनके हस्ताक्षर लिये थे।" आज भी वह किताब दिल्लीमें मेरे कमरेकी 'बुक शेल्फ़'में पड़ी होगी। उसे पढ़ते हुए कभी कल्पना भी न की थी कि मैं कभी, किसी दिन, अपनी आँखोंसे उस सुदूर द्वीपको देखने जाऊँगा, जो नक़्शेपर इतना अकेला और अलग-सा दिखता है। पहली बार मुझे पता चला कि आइसलैण्डमें सब उन्हें किलियनके नामसे पुकारते हैं – लैक्सनेस उन्हें बहुत औपचारिक-सा जान पड़ता है। थोर्गियेर नक़ल उतारनेमें एक ही है। किलियनका नाम सुनते ही उसके माथेपर बल पड़ गये, होंठ अजीब ढंगसे मुड़ गये, जैसे वह सीटी बजाने जा रहा हो; और शब्दोंको चबाते हुए उसने आइसलैण्डीमें कुछ कहा। इस बार देर तक वे हँसते रहे। बादमें उन्होंने मुझे बताया कि लैक्सनेस हूबहू इसी ढंगसे बोलते हैं। [बहुत दिनों बाद जब रिक्याविकमें लैक्सनेससे

भेंट हुई, तो मुझे बराबर थोर्गियेरकी नक़ल याद आती रही।]

आइसलैण्डके अलावा कोई दूसरा देश नहीं देखा, जहाँ लोग इतने खुले, मुक्त और आत्मीय ढंगसे अपने सबसे महान् लेखकके सम्बन्धमें बात-चीत करते हों – आदर और स्नेहका प्रदर्शन भी एक मुक्त व्यंग्य-भाव-द्वारा किया जा सकता है – बिना बार-बार 'श्री' और 'जी'का इस्तेमाल किये – यह कोई उनसे सीखे।

जब रेल चली, तो उनके हाथ हवामें उठ गये। प्रागके बाद यह दूसरी विदा है। हम पूर्वी बर्लिनसे पश्चिमी बर्लिनकी ओर जा रहे हैं। दो दुनियाओंके बीच सिर्फ़ पन्द्रह-बीस मिनिटका फ़ासला है। हम बर्लिनकी 'लोकल-ट्रेन'में बैठे हैं। ट्रेन चलनेसे पहले वे प्लेटफ़ॉर्मपर खड़े-खड़े गाने लगे थे, एक आइसलैण्डी लोकगीत, जिसकी धुन इस क्षण भी हमारे आस-पास भटक रही है।

हर स्टेशनपर गाड़ी रुकती है, कुछ लोग भीतर आते हैं – पूर्वी बर्लिन-के निवासी, जो दूसरे क्षेत्रमें जा रहे हैं। पूर्वसे पश्चिम और पश्चिमसे पूर्व – बिना किसी औपचारिकता या रुकावटके जाया जा सकता है। आज ये पंक्तियाँ लिखते समय बर्लिनमें अनेक परिवर्तन हो चुके हैं। पहले-जैसा मुक्त यातायात, आवागमन सम्भव नहीं। आइसलैण्डसे वापस आते समय मैं बर्लिनमें चार दिन ठहरा था। और उस थोड़े समयमें जो कुछ देख-समझ पाया, वह इस अभिशप्त नगरकी एक असाधारण झाँकी देनेके लिए काफ़ी था। शीत-युद्धकी इतनी नंगी, बेलौस तसवीर शायद युरॅपके किसी शहरमें दिखाई नहीं देती। हज़ारों ऐसे लोग हैं, जिनके घर पूर्वी बर्लिन-में हैं, और जो हर रोज़ काम करने पश्चिमी बर्लिन जाते हैं। अनेक ऐसे परिवार हैं जो इस विभाजित शहरका आईना हैं – आधा परिवार पूर्वी भागमें, आधा पश्चिमी भागमें। मैं एक पत्रकारकी हैसियतसे बर्लिन नहीं गया था, अतः किसी प्रकारकी निश्चित सूचना देना न मेरा

लक्ष्य है, न बसकी बात है। 'आर्ट गेलरीज़' और म्यूज़ियम देखनेके लिए अकसर मुझे शहरके दोनों ओर जाना पड़ता था, और इस दौरान जो कुछ आँखोंके सामने पड़ जाता था, उससे बहुत कुछ खुले-छिपे संकेत मिल जाते थे – अपनेमें बहुत साधारण और छोटे किन्तु एक असाधारण स्थितिके द्योतक। कौन प्रभावित नहीं होगा, पश्चिमी बर्लिनकी ऊँची भव्य दुकानों, होटलों और रेस्तराँओंकी तड़क-भड़कसे। कुरफुरस्तैन्दाम अथवा हाँसाके इर्द-गिर्द घूमते हुए अनायास आधुनिक वास्तुकलाकी इमारतें हमें आकर्षित करती हैं। इन ऊँची, गगनचुम्बी इमारतोंने (जिनमें लकर्बूसियेकी इमारत भी शामिल है) युद्धके भद्दे अवशेषोंको अपनेमें छिपा लिया है। यह आकस्मिक नहीं कि पूर्वी बर्लिनसे हर रोज़ सैकड़ों आदमी पश्चिमी भागमें सैर-सपाटेके लिए अथवा चीज़ें ख़रीदनेके लिए आते हैं। अकसर मैंने ज़ू स्टेशनपर एक्सचेंज बैंकके आगे उन लोगोंकी लम्बी क़तारें देखीं, जो पूर्वी जर्मनीके मार्कको पश्चिमी जर्मनीके मार्कमें बदलनेके लिए खड़े थे। आश्चर्य नहीं, आज पश्चिमी बर्लिन पश्चिमी युरॅपकी जगमगाती 'शो-विण्डो'-के रूपमें पूर्वी युरॅपके सामने उपस्थित है – स्वतन्त्र युरॅपके आदर्शोंका एक अजीब-सा प्रतीक।

किन्तु यह विरोधाभास अपनेमें अकेला नहीं – बर्लिनके दोनों भाग इस विचित्र विरोधाभासको अपनेमें प्रतिबिम्बित करते हैं – अकसर कहा जाता है कि पश्चिमी देशोंकी संस्कृति स्वतन्त्रता और न्याय-जैसे आध्यात्मिक सिद्धान्तोंपर आधारित है, जब कि दूसरी ओर कॅम्युनिस्ट देश उनकी नितान्त अवहेलना करते हुए मनुष्यकी निम्नतम भौतिक इच्छाओंपर ज़ोर डालते हैं। शायद यह सच हो। किन्तु बर्लिनमें लगता है – जैसे ये 'रोल' आपसमें बदल लिये गये हों। पश्चिमी बर्लिनकी सबसे बड़ी आध्यात्मिक अपील अमरीकी सिगरेटें, स्कॉच व्हिस्की, फ्रेंच कोन्याक, नॉयलॅन क़मीज़ें तथा हैनरी मिलर और वात्स्यायनकी पुस्तकें (मेरा अभिप्राय 'कामशास्त्र' के वात्स्यायनसे है) हैं, जिन्हें देखने और खरीदने हज़ारों लोग पूर्वी जर्मनी-

से आते हैं। जहाँतक इन चीज़ोंके प्रति आकर्षणका प्रश्न है, मैंने पूर्वी और पश्चिमी बर्लिनके लोगोंमें कोई भेद नहीं देखा, उनके राजनीतिक सिद्धान्त अथवा आध्यात्मिक मान्यताएँ एक-दूसरेसे कितनी ही भिन्न क्यों न हों।

इसीलिए एक प्रश्न बार-बार मँडराता है : क्या पश्चिमी युरॅप बर्लिनमें 'स्ट्रिप-टीज़' और 'नाइट-क्लबों' के अलावा, अपनी सांस्कृतिक स्वतन्त्रता प्रदर्शित करनेका कोई दूसरा बेहतर माध्यम प्रस्तुत नहीं कर सकेगा? और दूसरा प्रश्न, क्या इन सब चीज़ोंका आकर्षण पूर्वी बर्लिनके निवासियोंके लिए इतना अधिक गहरा है कि वे कॅम्युनिस्ट व्यवस्थाके सम्मुख एक विकट आर्थिक संकट उपस्थित कर देंगे? एक दृष्टिसे, पश्चिमकी तुलनामें, पूर्वी जर्मनीकी कॅम्युनिस्ट सरकार अपने 'भौतिक दर्शन' के बावजूद अत्यन्त आदर्शवादी जान पड़ती है। जहाँ पश्चिमी बर्लिनमें 'नाइट-क्लबों' के भड़कीले इश्तहार दिखाई देते हैं, वहाँ पूर्वी बर्लिनके चौराहोंपर, स्टेशनकी दीवारोंपर अकसर बड़ी-बड़ी सुर्ख़ियोंमें चेतावनीके ये शब्द आँखोंको रोक लेते हैं – फ़ासिज़्म, नेवर अगेन! यह आकस्मिक नहीं है कि पश्चिम बर्लिनमें मैंने आइख़मैनके विरुद्ध एक भी इश्तहार नहीं देखा, जब कि पूर्वी भागमें, न केवल अख़बार आइख़मैनकी ख़बरोंसे भरे रहते थे, बल्कि वहाँ अलगसे मुक़दमेका विस्तृत ब्यौरा देनेके लिए पेम्फ़लेट और पुस्तिकाएँ प्रकाशित की गयी थीं।

बर्लिनका भविष्य क्या होगा, मैं नहीं जानता, किन्तु ये तीन शब्द 'फ़ासिज़्म, नेवर अगेन' बर्लिनकी दीवारोंपर देख सका, मेरे लिए यही बहुत कुछ है।

एक अन्य स्मृति भी है। पश्चिमी बर्लिनकी 'टूरिस्ट-बस' में बैठा हूँ। यह बस विदेशी टूरिस्टोंको नगरके दर्शनीय स्थानोंकी परिक्रमा करवा लाती है। बसमें अमरीकी, अँगरेज़, जापानी तथा अन्य देशोंके लोग भी हैं। सिर्फ़ आठ यार्क देकर तीन घण्टोंमें बर्लिनके पूर्वी और पश्चिमी भागोंका

दौरा किया जा सकता है। हमारे संग एक चतुर और दक्ष जर्मन 'गाइड' है – अत्यन्त वाक्पटु और विनोद-प्रिय, पश्चिमी जर्मनीके मुक्त वातावरण-में साँस लेनेवाला एक अत्यन्त जागरूक युवा नागरिक। उसकी हर बातपर टूरिस्ट हँसते हैं। जब कभी मैं उसकी विनोद-प्रियतामें पूरी तरहसे साझीदार नहीं हो पाता, तो, शायद, इसलिए कि मुझमें अभीतक विनोद-प्रियताका थोड़ा-बहुत अभाव है।

पूर्वी जर्मनीकी खिल्ली उड़ानेका जब कभी अवसर मिलता है, वह हाथसे नहीं जाने देता, बल्कि यूँ कहें, उसी समय उसकी विनोद-प्रियता पूरी तरहसे प्रस्फुटित होती है। कभी-कभी उसकी आवाज़ बहुत उदास-सी हो जाती है। उस समय, जब हमारे सामने कुछ टूटी हुई इमारतोंके खण्डहर दिखाई देते हैं, ऐसी ही एक जगह उसने कहा, "यह गोयबल्सकी मिनिस्टरीका दफ़्तर था। देखिए, सोवियत बममारोंने इसकी क्या दशा कर डाली!" कुछ आगे चलकर····"यह वह ऐतिहासिक इमारत है" – उसका स्वर बहुत गम्भीर हो गया – "जहाँ हिटलरने अपनी ज़िन्दगीके अन्तिम क्षण गुज़ारे थे। आप चाहें, तो यहाँ उतरकर फ़ोटो ले सकते हैं।"

मेरे पास कैमरा नहीं था, वरना उसकी दुःखी आत्माको शान्ति देनेके लिए मैं अवश्य फ़ोटो लेता।

रायखस्टैककी इमारतके सामने पहुँचनेपर उसका स्वर फिर जीवन्त हो उठा – "आपको मालूम होगा," – उसने कहा, "बल्गेरियन कॅम्यु-निस्ट दित्रिट्रोवने रायखस्ताकको जलानेका षड़यन्त्र किया था, किन्तु हिटलरने उसका भण्डाफोड़ कर दिया।" उसके सुन्दर, सलोने चेहरेपर विजय-मुस्कान खिल गयी।

"लेकिन यह सच नहीं है" – मैंने कहा। बसमें बैठे सब लोग मेरी ओर आश्चर्यसे देखने लगे। मुझे लगा, जैसे उसका विरोध करके मैंने कोई अत्यन्त जघन्य अपराध कर डाला है।

"क्या कहा आपने?" उसने मेरी ओर घूरते हुए कहा।

"दिमित्रोवके ख़िलाफ़ कोई सबूत नहीं मिला, और उसे बादमें छोड़ दिया गया" – मैंने कहा।

"शायद, मुझे यह सब कुछ नहीं मालूम !" उसने लापरवाहीसे कहा, "बट वाज़न्ट ही ए ब्लडी कॅम्युनिस्ट ?"

ज़ाहिर है, मैं इससे इनकार नहीं कर सका। वह फिर जीत गया था। सब लोगोंने चैनकी साँस ली।

कौन-सी सीमापर जाकर कॅम्युनिज़्मका विरोध फ़ासिज़्मका चेहरा अपना लेता है, मुझे नहीं मालूम, किन्तु यह वह सीमा है, जो आज पश्चिमी बर्लिनको पूर्वी बर्लिनसे अलग करती है····यह एक चुनौती भी है, जिसका सामना हर ईमानदार व्यक्तिको कभी-न-कभी करना होगा।

दूसरे दिन सुबह हम बर्लिन छोड़कर आगे बढ़ गये। वह बदलीका दिन था। बर्लिनका मेघाच्छन्न आकाश रेलकी खिड़कीसे देर तक दिखाई देता रहा। अरसा पहले क्रिस्टोफ़र ईशरहुडका उपन्यास पढ़ा था – 'गुड-बाइ टु बर्लिन।' वह युद्धसे पहलेका ज़माना था। पूरी एक पीढ़ी तबसे आज तक गुज़र गयी है, बर्लिन बहुत कुछ बदल गया है। किन्तु एक दृष्टिसे वह अब भी वही है जो पहले था – एक संजीदा, उदास शहर !

■

रोती हुई मर्मेडका शहर

हमने तिवोलीके इर्द-गिर्द तीन-चार चक्कर लगा लिये हैं, किन्तु कोई भी होटल ख़ाली नहीं है। ये गरमियोंके दिन हैं – युरॅपमें छुट्टियोंके दिन। स्कैण्डेनेवियामें कोपनहेगन शायद यात्रियोंका सबसे बड़ा आकर्षण-केन्द्र है। बाज़ारों, सड़कों, गलियोंमें हर जगह लड़के-लड़कियाँ दिखाई दे जाते हैं। पीठपर भारी 'डफल बैग' (जिसमें कम्बलसे लेकर टुथ-ब्रश तक, हर आवश्यक चीज़ भरी रहती है), कन्धेपर कैमरा, हाथमें शहरका नक़शा और घुटनों तक उठी हुई 'जीन्स', कमोबेश इसी हुलियेमें हज़ारों लड़के-लड़कियाँ हर वर्ष युरॅपमें बनजारोंकी तरह घूमते हैं। नार्वेमें एक आस्ट्रियन लड़कीने मुझे बताया कि उसने फ्रान्स, इटली और स्पेनका भ्रमण, टिकिट-पर बिना एक पैसा ख़र्च किये, 'हिच-हाईकिंग'-द्वारा ही किया था। 'हिच-हाईकिंग' यहाँ एक अत्यन्त लोकप्रिय और दिलचस्प तरीक़ा है यात्रा करने-का, ख़ासकर छात्रोंके लिए, जो बहुत कम पैसा साथमें लेकर बाहर निकलते हैं। सड़कके किनारे खड़े होकर सामने गुज़रती हुई मोटरों, लारियों या ट्रकोंको रोकनेके लिए हाथ हिलाते हैं, और घण्टों इसी तरह खड़े रहते हैं, जबतक कोई ड्राइवर दया करके उन्हें भीतर नहीं बुला लेता। इसी तरह 'लिफ़्ट' लेते हुए वे रास्ता तय करते रहते हैं। अकसर लड़कियोंके लिए 'लिफ़्ट' लेना अधिक आसान होता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि लड़कियाँ अपने पुरुष-साथियोंको पीछे छिपा लेती हैं और जब उन्हें 'लिफ़्ट' देनेके लिए कोई कार रुक जाती है, तो वे इशारेसे इन्हें बुला लेती हैं। ड्राइवर बेचारेको तब न केवल उन्हें बल्कि उनके प्रेमियोंको भी अपनी कारमें ढोना पड़ता है ?

उस शाम कोपनहेगनकी कोई भी मुकम्मिल तसवीर मेरे दिमाग़पर नहीं उतर सकी। ऐसा नहीं कि आज मैं कोई मुकम्मिल तसवीर जोड़ पाया हूँ। कोपनहेगन मेरे लिए उन शहरोंमें-से एक रहा है, जिसके संग आख़िर तक मैं कोई गहरा आन्तरिक लगाव नहीं जोड़ पाया। शायद इसलिए कि मैं कुछ ज़रूरतसे ज़्यादा जल्दीमें था, कुछ इसलिए भी कि आइसलैण्डके रास्तेमें कोपनहेगन मेरे लिए सिर्फ़ नीचेका पड़ाव रहा – एक 'वेटिंग-रूम' की मानिन्द – जिसमें कुछ दिन रहकर मुझे आगे चले जाना था। यह मेरी ही ग़लती थी। हर शहरका अपना आत्मसम्मान होता है। जब हम उसे पूरी तरह प्रतिष्ठा नहीं दे पाते, तो वह भी हमारे प्रति उदासीन हो जाता है।

फिर भी कोपनहेगनका तिवोली एक जगमगाते, जादुई परी-देशकी तरह मेरी स्मृतिपर टँगा है। वह अपनेमें सब कुछ है – सरकस, नुमायश, छोटी-छोटी 'रोमैण्टिक' झीलोंके इर्द-गिर्द बिखरे रेस्तराँ और 'नाइट-क्लब', 'रूलेट' (जहाँ मैं डॉस्टॉयवस्कीके 'हीरो' की तरह बराबर हारता गया था), 'बीयर-पब' लम्बे-लम्बे झूले और 'मेरी-गो-एराउण्ड', रोशनियोंकी झालरोंमें घिरी 'ओरियण्टल' देशोंकी मसजिदें और गुफ़ाएँ। आश्चर्य नहीं, 'टूरिस्ट-पुस्तिकाओं'में कोपनहेगनको 'उत्तरी-युरॅपका पेरिस'की उपाधि दी गयी है, यह बात दूसरी है कि न उनमें पेरिसकी सहज सुन्दरता है, न उत्तरी देशोंका पहाड़ी भोलापन ! यह आश्चर्यकी बात है, किन्तु बहुत हद तक सही है – कि कोपनहेगनमें रहकर बार-बार, ज़बरदस्ती अपनेको ध्यान दिलाना पड़ता है कि हम स्कैण्डेनेवियामें हैं। ज़्यादा सही होगा यह कहना कि वह एक अमरीकी शहर है, उत्तरी युरॅपमें, 'नाटो' सेनाओंका मनोरंजन-स्थल। एक नाली, जिसमें सैनिक अनुशासनके दबावसे कुछ घण्टों तक मुक्त होनेके लिए, अमरीकी और जर्मन सिपाही 'प्रिज़र्वेटिव'में अपनी उत्तेजना बहा देते हैं····"दट इज़ ए रिलीज़ दिस कोपनहेगन", किसी नाइट-क्लबमें एक अमरीकी अफ़सरने मुझसे कहा था।

इस बीच होटलकी तलाश बराबर जारी रही। यह विचार ज़्यादा सुखद नहीं था कि बर्लिनकी पिछली रातके बाद – जिसे हमने सड़कोंपर भटकते गुज़ार दिया था – एक और रात कोपनहेगनके आकाश-तले गुज़ारनी होगी। थकान अपनी चरम सीमापर थी। "इनसान सिर्फ़ रोटीपर ही ज़िन्दा नहीं रह सकता"···"उसे बिस्तर भी चाहिए! थोर्गियेर कोपनहेगनके गली-कूचोंसे भली भाँति परिचित था – अपने हाथकी हथेलीकी तरह उन्हें पहचान सकता था, किन्तु होटलका एक कमरा मिलना इतना दुश्वार हो जायेगा, इसका अनुभव उसे यहाँ पहली बार हुआ।

क्यों न बन्दरगाह जाकर अपने जहाज़के 'केबिन'में रात काटी जाये – थोर्गियेरने सुझाव दिया। किन्तु हम पूरी तरहसे निश्चित नहीं थे कि आइसलैण्ड जानेवाला जहाज़ इस समय बन्दरगाहपर आ गया होगा – और इतनी दूर जाकर ख़ाली हाथ वापस लौट जाना, इतनी हिम्मत हम दोनोंमें-से कोई भी नहीं बटोर पाया। अभी हम इसपर बहस कर रहे थे कि थोर्गियेर अचानक चुप हो गया, उसकी आँखें भीड़में गुज़रते एक लम्बे व्यक्तिपर सहसा टिक गयीं। उसने भी शायद हमें देखा होगा"·थोर्गियेरको देखकर वह एकदम चकित-सा हो आया। हँसते हुए मुलाक़ात हुई, थोर्गियेर-द्वारा हम दोनों एक-दूसरेसे परिचित हुए।

नाम था एंगुई – जितना छोटा नाम, उतना ही ज़्यादा लम्बा क़द! अकसर आइसलैण्ड-निवासी लम्बे क़दके होते हैं, किन्तु वह असाधारण रूपसे लम्बे थे। एक महीन-सी मुसकराहट और ज़रूरतसे ज़्यादा गम्भीर आँखें – कुछ ग़मगीन और उदास। वह थोर्गियेरके बहुत पुराने मित्रोंमें-से थे – अरसा पहले दोनों एक संग, एक-ही कमरेमें, वियनामें रहे थे। आजकल कोपनहेगनमें 'आइसलैण्डिक शिप कम्पनी'में काम करते हैं – बादमें मालूम हुआ कि उन्होंने ही जहाज़में अनेक दिक़्क़तोंके बावजूद मेरी 'सीट' 'रिज़र्व' करवायी थी।

मुद्दत बात शायद मैं बहुत कुछ भूल जाऊँगा, कोपनहेगनके बारेमें,

किन्तु एंगुईकी स्मृति आसानीसे नहीं छूटेगी। कभी-कभी घर बदलते समय जब हम अपना सामान सन्दूक़में रखते हैं, तो कुछ चीज़ें कभी पीछे नहीं छूट पातीं, कोई बहुत पुराना 'पिक्चर-पोस्टकार्ड', शराबकी बोतलका कोई 'लेब्ल', किसी 'कन्सर्ट'का प्रोग्राम – इन चीज़ोंको हम अवश्य रख लेते हैं, चाहे सन्दूक़में जगह न हो, चाहे जगह बनानेके लिए हमें एक-दो क़मीज़ें या 'स्वेटर' ही क्यों न बाहर फेंकना पड़े।

ज़िन्दगीका रास्ता तय करते समय बहुत-सा सामान पीछे छोड़ना होगा, यह जानता हूँ, किन्तु सोचता हूँ, किसी-न-किसी तरह एंगुईकी स्मृतिको बचाकर आख़िर तक खींच लाना ही होगा।

वह कई दिनोंसे हमारे आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे, किन्तु उन्हें यह नहीं मालूम था कि हम आज ही उन्हें इतने अचानक तरीक़ेसे पकड़ लेंगे। उन्हें जब हमारी परेशानीका पता चला, तो चुपचाप सिर हिला दिया। अपने संग हमें बीच शहरके एक छोटे-से होटलमें ले गये। थोर्गियेरने उनसे कहा कि यहाँ पूछ-ताछ करना बेकार है, हमें पहले ही जवाब मिल चुका है कि कोई कमरा ख़ाली नहीं है। एंगुईने कुछ नहीं कहा, सीधा होटलके दफ़्तर-में घुस गये। पाँच मिनिट बाद आकर कहा कि हम अपने 'पासपोर्ट' भीतर जमा करा दें, कमरा हमें मिल गया है।

इस यात्रामें चमत्कारोंसे पीछा नहीं छूटेगा – मैं आश्चर्यसे एंगुईको देखता रहा। पाँच मिनिट पहले हम सब आशा छोड़ बैठे थे – अब हमारे पास अपना कमरा था, दो गुदगुदे बिस्तर, ऊपर छत और ढेर-सी नींद, जो प्रागसे कोपनहेगन आने तक, रफ़्ता-रफ़्ता इकट्ठी होती रही थी।

'क्लॉक-रूम'से अपना सामान लानेके लिए हम स्टेशनकी ओर रवाना हो गये। "देखा आपने, कमरा कितनी जल्दी मिल गया", एंगुईने मुस-कराते हुए हमारी ओर देखा। "लेकिन माजरा क्या है? हम अभी कुछ देर पहले गये थे और मैनेजरने विवशता प्रदर्शित करते हुए कहा था कि सब कमरे पहलेसे 'बुक' हो गये हैं", मैंने कहा। "ठीक तो है", एंगुईने

कहा, "कमरा आपको नहीं, मुझे मिला है। कोपनहेगनमें रहता हूँ, इस लिए वे मुझपर सन्देह नहीं करते।" "कैसा सन्देह ?", थोर्गियेरने पूछा, "हमपर सन्देह करते हैं ?" "आपने अपना पासपोर्ट दिखाया होगा", एंगुईने कहा, "आप दो वर्षोंसे प्रागमें रह रहे हैं, 'आँयरन कर्टेन'के पीछे····क्या यह कम सबूत है कि आप खतरनाक लोग हैं।" एंगुई हँसने लगा था।

पहले क्षण मैं इस कड़वे सत्यको गलेके नीचे आसानीसे नहीं उतार सका। मैं भारतीय हूँ, यह इतना महत्त्वपूर्ण नहीं, जितना यह कि मैं एक कॅम्युनिस्ट देशसे आ रहा था! शीत-युद्धकी यह नयी बीमारी, छुआछूत – युरॅपकी दैनिक चर्चाका एक अभिन्नतम अंग बन गयी है, इसका भयानक अनुभव मुझे लन्दनमें भी हुआ था। टॉमस कुक कम्पनीसे प्रागका टिकिट लेने गया था। टिकिट माँगनेपर एक बहुत ही शालीन और भद्र अँगरेज़ बाबूने मिचमिचाती आँखोंसे मेरी ओर देखा – "प्राग ?" गलेमें साँस अटक गयी। "वट डोन्ट यू नो, इट इज़ बिहाईण्ड आँयरन कर्टेन ?" ("लेकिन क्या आप नहीं जानते कि वह लौह-दीवारके पीछे है।")

"ओह, रियली ?" ("ओह, सचमुच"), मैंने कहा। मुझे लगा जैसे मैं उसकी निरीह आत्माको बहुत कष्ट पहुँचा रहा हूँ। मेरे हाथमें टिकिट देते हुए उसके चेहरेका भाव कुछ ऐसा ही था, मानो कोई विवश होकर किसी बकरेको कसाईके हाथों सौंप रहा हो।

एक दफ़्तर कर्मचारीके लिए अपने ग्राहकोंसे बातचीत करते समय 'आँयरन-कर्टेन'-जैसे राजनीतिक शब्दोंको प्रयुक्त करना कहाँतक उचित है (और वह भी इंग्लैण्ड-जैसे प्रजातान्त्रिक देशमें !) इसपर यहाँ बहस करना व्यर्थ है। भयानक बात यह थी कि टॉमस कुकका वह नेक, भद्र बाबू उस शब्दको बहुत ही सहज, स्वाभाविक ढंगसे इस्तेमाल कर रहा था, उतने ही यन्त्रचालित ढंगसे, जैसे सुबह उठकर दाढ़ी बनाना और शामको चाय पीना। यदि कोई उससे यह कहता कि इस तरहके शब्द शीत-युद्ध विचारधाराके द्योतक हैं तो वह बेचारा हतबुद्धि-सा आपकी ओर देखने

लगता, मानो आपने कोई बहुत अनहोनी-सी बात कह दी हो। आश्चर्य नहीं, आईख़मैनके लिए लाखों यहूदियोंको गैस-भट्ठोंमें भेजना भी उतना ही सहज, मानवीय तथ्य रहा होगा। मानवीय-चिन्तनको, उसके सोचने-समझनेके ढंगको कितनी आसानीसे अत्यन्त विकृत साँचेमें ढालकर, सहज, स्वयंसिद्ध, स्वयंचालित 'सत्यों' का निर्माण किया जा सकता है, इसकी कल्पना शायद जॉर्ज आरवेलने अपने भयंकरतम दुःस्वप्नोंमें भी न की होगी!

किन्तु मैं रास्तेसे भटक गया हूँ। एंगुईके संग हम अपना थोड़ा-बहुत आवश्यक सामान 'क्लॉकरूम' से निकालकर अपने होटलके कमरेमें ले आये। हाथ-मुँह धोनेके बाद एकदम सोनेकी इच्छा हुई, किन्तु एंगुई और थोर्गियेरकी योजना कुछ दूसरी ही थी। ज़माने बाद वे एक-दूसरेसे मिले थे, बीयरके बिना कुछ भी बात करना असम्भव था – वह भी कोपनहेगन-जैसे शहरमें जहाँ आइसलैण्डी अपने देशकी ओर रवाना होनेसे पहले, हफ़्तों डेनिश बीयरके सहारे किसी कोनेमें पड़े रहते हैं।

"माना तुम प्रागसे आ रहे हो–पिल्ज़न बीयरके देशसे", एंगुईने मेरा हाथ घसीटते हुए कहा, "किन्तु यदि डेनिश बीयर पिये बिना चले जाओगे, तो आइसलैण्डमें कोई भी व्यक्ति तुम्हारा स्वागत करनेको तैयार नहीं होगा।"

अपनी नींदको पोटलीमें दबाये मैं कोपनहेगनकी सड़कोंपर घिसटता गया।

उस रात मुझे सहसा आभास हुआ कि मैं कोपनहेगन छोड़कर किसी बिलकुल अज्ञात, रहस्यमय शहरमें चला आया हूँ। हर चीज़ जैसे काया-कल्पकी अदृश्य प्रक्रियासे गुज़रकर एक विचित्र, मायावी मुखौटेमें बदल गयी थी – 'बार' की खिड़कियोंके पीछे झाँकते भावहीन चेहरे, अन्तहीन आवाज़ें, नहरके पास सिकुड़ी मरी मछलियोंकी गन्ध, १८ वीं-१९ वीं शतीके रंगबिरंगे बक्सानुमा मकान, जो एक ज़मानेमें नाविकोंके 'बैरक' थे –

और गिरजोंकी बुर्जियाँ। बुर्जियाँ जो रातके नरम, नीले अँधेरेमें सूखी हड्डियोंके ढाँचों-सी हवामें काँपती हैं। प्रागके गिरजोंमें एक अजीब-सा स्वप्निल अशरीरीपन है, पेरिसके गोथिक चर्चोंको देखकर लगता है कि उनकी ईंटोंके बीच सीमेण्टके स्थानपर केवल मोमबत्तियोंका आलोक है, सेनके हरे पानीपर काँपता हुआ। किन्तु कोपनहेगनके गिरजे दोनोंसे अलग हैं – लगता है, वे भयावह, वेडौल मक़बरे हों, जिनके भीतर मध्ययुगका बासी, भूरा, धर्मके कीचड़में लिथड़ा अँधेरा जमा होता गया हो।

हम टाउन-हॉलके सामने खड़े हैं – बीचमें एक बहुत चौड़ा 'स्क्वायर' है, 'स्क्वायर' के चारों ओर नियोन लाइटोंमें धुक-धुक करती, आँखोंको चौंधियानेवाली दुकानें हैं; दुकानोंके बीच छोटे-छोटे अँधेरे रास्ते हैं, समूचे नगरको अपने गिर्द लपेटते हुए। 'स्क्वायर' से कुछ दूर हटकर 'स्कैण्डेनेवियन एयर-लाइन्स' की विशाल, गगनचुम्बी इमारत है – आधुनिक वास्तुकलाका अद्भुत चमत्कार! यह कोपनहेगनकी अनूठी विशेषता है कि यहाँ नया और पुराना शहर अलग-अलग नहीं हैं, किन्तु एक संग होनेके बावजूद दोनों एक-दूसरेसे निरे अछूते जान पड़ते हैं। उनमें किसी प्रकारका सामंजस्य दिखाई नहीं देता। समयके संग-संग शहर फैलता गया है, बिना किसी योजना या समन्वयके – एक लम्बे, विशाल दैत्यकी मानिन्द – पैर यदि गोथिक हैं तो धड़ उन्नीसवीं सदीकी वास्तुकलासे मढ़ा हुआ, और सिर गगन-चुम्बी। इसकी तुलनामें कितना भिन्न हो सकता है, मुझे बरबस याद हो आता है, एक दूसरा शहर, अमस्टरडम। न जाने क्यों, जाने-अनजाने, मैं हमेशा इन दो नगरोंकी तुलना करता रहा हूँ, शायद इसलिए कि दोनों ही एक ज़मानेमें व्यापारी शहर थे, युरॅपके प्रसिद्ध बन्दरगाह – जहाँ युरॅप-के दूर-सुदूर कोनोंसे व्यापारी और नाविक अपनी यात्रा जारी करनेसे पहले कुछ दिनों तक ठहरते थे। अमस्टरडमकी अपनी एक आत्मा है। नहरोंसे सटे हुए मकान इतने सन्तुलित और आत्मीय और कालजित् कि लगता है कि आदमीके हाथोंने उन्हें नहीं बनाया, खुद-ब-खुद फूलों-से नहरोंके किनारे-

किनारे उग आये हैं। वे आईना हैं – जिनमें चहारदीवारीके भीतर रहने-वाले डच-निवासियोंकी ज़िन्दगी झलकती है – किन्तु वे महज़ आईना नहीं हैं, हर डच-निवासीका चेहरा-मोहरा, आचार-व्यवहार, वेश-भूषा उसके घरकी चहारदीवारीका जुज़ है – दोनों अपनेमें एक-दूसरेका अक्स प्रति-बिम्बित करते हैं। क्या यही कारण नहीं है कि वर्मीरके द्वारा चित्रित किये गये किसी घरके आँगनको देखकर लगता है कि हम अभी-अभी इसी घरके सामनेसे गुज़रे थे, किसी डच स्त्रीका चेहरा देखते हुए लगता है जैसे इसे पहले कभी देखा है और याद नहीं आता कि कब उसे देखा था – किन्तु एक क्षणमें बिजलीकी तरह स्मृति लौट आती है, रेम्ब्राँके किसी चित्रको देखते हुए····

यहाँतक कि कोपनहेगनकी तुलनामें अमस्टरडमके 'रेड-लाइट एरिया'-का भी अपना निजी व्यक्तित्व है – गन्दगी, सड़ाँध, हृदयहीन क्रूरताके बावजूद। कहावत है "ब्रॉथल्स ग्रो व्हेयर द सेलर्ज़ गो।" ('जहाँ नाविक वहाँ वेश्यालय') इस लिहाज़से पश्चिमी युरॅपमें हैम्बर्ग, अमस्टरडम और कोपनहेगन लाल बत्तियोंके सबसे आकर्षक केन्द्र हैं। हैम्बर्ग कभी नहीं गया। हालाँ कि थोर्गियेरने उसके सम्बन्धमें मुझे अनेक सनसनीखेज़ घटनाएँ सुनायी हैं (मेरे मित्र थोर्गियेर अपने जीवनमें सातसे अधिक घाटोंका पानी पी चुके हैं)। इस दृष्टिसे भी कोपनहेगन अन्य स्कैण्डेनेवियन देशोंसे अलग है। नॉर्वे, स्वीडन, फिनलैण्डमें परम्परागत नैतिक रूढ़ियाँ युरॅपके अन्य देशोंकी तुलनामें (जिनमें कॅम्युनिस्ट और ग़ैरकॅम्युनिस्ट देश – दोनों ही शामिल हैं) बहुत हद तक नष्ट हो चुकी हैं। स्त्री-पुरुषके यौन सम्बन्ध अधिक स्वच्छन्द और कुण्ठा-मुक्त हैं, रहन-सहनका स्तर न केवल भौतिक दृष्टिसे ऊँचा है, बल्कि संस्कृति-सम्पन्न है, अतः वेश्या-वृत्तिकी सामाजिक आवश्यकता, पुरुषों और स्त्रियोंके लिए लगभग नहींके बराबर रह गयी है। बिना किसी क़ानून अथवा राज्य-शक्तिका प्रयोग किये कैसे अप्राकृतिक, असामाजिक वृत्तियोंका उन्मूलन किया जा सकता है, स्कैण्डेनेवियन देश

इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। इस लिहाज़से भी कोपनहेगन अपवाद है। शायद यह अकेला स्कैण्डेनेवियन नगर है, जहाँ आज भी ख़ास गलियोंके नुक्कड़पर 'स्ट्रीट-वॉकर' अचानक आपपर हमला कर सकती हैं। किन्तु कोपनहेगन ही एक ऐसा नगर है, जहाँ इन गलियोंको देखकर एक अकुलाहट-भरी दुविधा उत्पन्न होती है। लगता है, जैसे अमस्टरडमकी तरह वेश्यावृत्ति यहाँ परम्पराका अंग नहीं है, जैसे यह कोई बाहरकी चीज़ हो, जिसे ज़ोर-ज़बरदस्ती शहरके माथेपर मढ़ दिया हो – एक थोपी हुई चीज़ जिसकी जड़ें शहरकी भूमिमें नहीं हैं। बादमें थोगियेरसे मालूम हुआ कि आइसलैण्डमें युद्धके पहले तक वेश्यावृत्ति अजानी चीज़ थी – इच्छा होनेपर इसके लिए आइसलैण्डके लोग कोपनहेगन जाते थे (यह दूसरी बात है कि कोपनहेगन तक पहुँचते-पहुँचते वे बीयरमें इतने मस्त हो जाते थे कि दिमाग़से वह ध्यान अक्सर उड़ जाता था कि वे किसलिए आये हैं!) किन्तु युद्धके उपरान्त अमरीकी अड्डोंकी स्थापनाके संग-संग एक नये क़िस्मकी 'नारी' का प्रादुर्भाव हुआ है, जिसे आइसलैण्डी 'स्ट्रीट-वॉकर' न कहकर बड़े शालीन-भावसे 'स्टैटू ऑव लिबर्टी' के नामसे पुकारते हैं।

'म्यूनिसिपल स्क्वायर' से बाहर निकलकर हम दोबारा तिवोलीके सामनेसे गुज़र रहे थे। कैफ़े और रेस्तराँओंकी खुली खिड़कियोंसे लोग बाहर सड़कपर बहती भीड़को देख रहे थे और भीड़के लोग देख रहे थे, रेस्तराँओंमें बैठे चिड़ियाघरके प्राणियोंको। कोपनहेगनमें पेरिसकी तरह 'ओपन-एयर' कैफ़े नहीं हैं – उनकी अभाव-पूर्ति करनेके लिए ही शायद हर रेस्तराँके बाहर शीशेके सन्दूक़नुमा केबिन बना दिये गये हैं, जो रेस्तराँओं-का भाग होते हुए भी सड़कसे जुड़े हैं और सड़कपर होते हुए भी उसके जन-प्रवाह, भीड़की धूलि और गर्दसे अलग हैं। इस दृष्टिसे कोपनहेगनके रेस्तराँओंकी बनावट बहुत हद तक डेनिश चरित्रका ही प्रतीक है – स्वच्छन्दता, जो दर्शककी उत्सुकतासे आगे नहीं जाती, क्योंकि आगे शीशेकी खिड़कियाँ हैं, जिनके भीतर बैठकर आइसक्रीम खाते हुए केवल

बाहर देखा जा सकता है।

सोचता हूँ, शायद इसी चिपचिपाते आत्मसन्तोष और सतहीपनकी दलदलसे बाहर निकलनेकी कोशिश की थी एक अन्य डेनिशने, जिसे कोपनहेगनके निवासी आख़िर तक सिरफिरा समझते रहे। नाम था उनका किर्केगार्द। कल्पना नहीं की जा सकती कि कोपनहेगनके अलावा किर्केगार्द किसी और शहरमें हो सकते थे, उसी तरह जैसे प्रागके बिना काफ़्काकी कल्पना करना कुछ अजीब-सा लगता है।

अचानक एक विचित्र नज़ारा सामने आया और हमारे पाँव ठिठक गये। सड़कपर लोगोंके जमघटके बीच लड़के-लड़कियोंकी हनुमान-टोली चली जा रही थी – विचित्र मौला-मस्त पोशाक पहने वे किसी सुदूर परीदेशके यात्रिक जान पड़ते थे। सिरपर ऊपर उठी हुई फुन्देदार लाल टोपी, गलेमें लटकता हुआ नीला स्कार्फ़, फूलदार क़मीज़ और बैण्ड बजानेवालोंकी-सी चौड़ी, सफ़ेद पतलून। लड़कियोंकी भी कमोबेश यही पोशाक थी। पतलून और क़मीज़के स्थानपर उन्होंने स्कर्ट और फ्रॉक पहन रखी थीं, बाक़ी हुलिया लड़कोंका-सा ही था।

पूछनेपर एंगुईसे मालूम हुआ कि वे सब नार्वेके छात्र-छात्राएँ हैं, जो कुछ दिन कोपनहेगनमें रहकर वापस अपने-अपने घर लौट जायेंगे। "शायद छुट्टियाँ बिताने यहाँ आये हैं?" मैंने पूछा। इसपर एंगुईने धीरे-से मुसकरा दिया, "नहीं····इनकी यही विशेषता है। छुट्टियाँ तो दूर, अभी परीक्षाएँ भी शुरू नहीं हुई। यह नार्वेजियन छात्रोंकी पुरानी परम्परा है। वे हर वर्ष इन्हीं दिनों (और इसी पोशाक में) कोपनहेगन आते हैं, डटकर पीते हैं, देर रात तक नाइट-क्लबोंमें नाचते-गाते रहते हैं, और परीक्षाओंके ऐन एक दिन शुरू होनेसे पहले अपने-अपने घर रवाना हो जाते हैं। हर साल वे एक नारा लेकर कोपनहेगनपर हमला करते हैं, हर साल यह नारा पिछले सालके नारेसे अलग होता है।"

"इस साल कौन-सा नारा लेकर आये हैं?"

"इफ़ द रशियन्स डोन्ट हैव द सेक्स बॉम्ब, ह्वाई शुड वी हैव ?" ("रूसियोंके पास यौन-बम नहीं हैं, तो हम क्यों रखें" ।)

यह पहला अवसर था, जब नार्वेवासियोंकी रसिकताका परिचय मिला। बादमें पता चला कि नार्वेई जातिकी यह रसिकता एक निश्छल भोलेपन, सादगी और बहुत ही कोमल संवेदनशीलताका प्रतीक है····ऐसे गुण, जो दुनिया-भरके पहाड़ी लोगोंमें मिल सकते हैं। उनमें न तो डेन लोगोंकी आडम्बर-प्रियता और न स्वीडेनवालोंकी अभिजात-संकुलता दिखाई देती है। इस दृष्टिसे वे आइसलैण्ड-निवासियोंके अधिक नज़दीक पड़ते हैं। आश्चर्य नहीं, एक हज़ार वर्ष पूर्व अपने देशसे निष्कासित नार्वेई विद्रोहियों-ने आइसलैण्डमें ही आश्रय खोजा था····

जुलूस आगे बढ़ गया, सिर्फ़ ज़िन्दादिलीकी खुशबू पीछे रह गयी।

'स्कारलेट पिम्परनल····'

अरसा पहले इसी नामका उपन्यास पढ़ा था; तब स्वप्नमें भी न सोचा था कि ऐसा विचित्र नाम किसी बीयर-घरका भी हो सकता है। किन्तु नामसे भी ज़्यादा विचित्र है यह बीयर-घर अपने-आपमें !

कौन-सी अँधेरी-सँकरी गलियोंको पार करते हुए हम वहाँ पहुँचे, आज याद करना असम्भव है। आश्चर्य तो तब हुआ जब भीतर घुसनेसे पहले थोर्गियेरने अपनी क़मीज़का ऊपरी बटन, जो हमेशा खुला रहता था, सत-र्कतासे बन्द कर लिया। "ऐसा क्यों ?" मैंने पूछा। "यह यहाँका नियम है।" थोर्गियेरने तनिक व्यंग्यात्मक भावसे मुसकराते हुए कहा, "बिना टाई पहने कोई व्यक्ति भीतर प्रवेश नहीं कर सकता, लेकिन चूँकि आइसलैण्डी अकसर किसी नियमकी खास चिन्ता नहीं करते, उनके लिए यह विशेष रियायत की गयी है कि यदि वे सिर्फ़ अपनी क़मीज़के बटन बन्द कर लें, तो भीतर आ सकते हैं।" मैंने और एंगुईने पहलेसे टाई पहन रखी थी, हमें इस रियायतका सदुपयोग करनेका अवसर न मिल सका।

भीतरका दृश्य उस फ़िल्मके टुकड़ेकी मानिन्द धुँधला पड़ गया है, जो

अपनेमें अत्यन्त तीव्र और सजीव होनेके बावजूद इतनी तेज़ीसे आँखोंके आगे भड़भड़ाता हुआ गायब हो जाता है कि बादमें जब हम याद करनेकी कोशिश करते हैं तो दृश्यके बाहरी पहलू उजागर होनेके बजाय महज़ मनके वे कोने, कोने भी नहीं, कुछ अनगल छिटपुटी प्रतिक्रियाएँ घूम जाती हैं, जो उस क्षणके दबावसे ऊपर उठ आयी थीं – एक-दूसरेसे अलग, शृंखला-हीन और झूठ-सचके ऊपर !

स्मृतियोंमें वे जिप्सी-स्मृतियाँ हैं, जिनका कोई घर-ठिकाना नहीं। भीतर हमें बच-बचकर रास्ता बनाना पड़ा। नाचते हुए जोड़ोंकी अन्तहीन, हिलती, क्षण-क्षण बदलती सुरंगके बीच गुज़रते हुए, मेज़ों-कुरसियोंको बीच-से धकेलते, हवामें उठे बीयरके गिलासोंकी पीली छायातले रेंगते हुए आख़िर हम निर्दिष्ट स्थानके आस-पास लुढ़क आये।

"यह हमारी जगह है।" थोर्गियेरने कहा और बहुत शान्त भावसे पाइप मुँहमें लगा ली। इस दौरानमें एंगुई अपने जाने-पहचाने पियक्कड़ोंके बीच घिर गये थे।

जिस कोनेमें हम बैठे थे, वह यहाँ आइसलैण्डी कोनेके नामसे सर्वविदित है; लगता है, समूचे बीयर-घरका शोर और कोलाहल, अलमस्ती और मतवालापन चारों ओरकी आवाज़ों और चीखों और सीटियोंको समेटता हुआ इसी कोनेमें बह आता है। थोर्गियेरने बताया कि एक लम्बी मुद्दत-से 'स्कारलेट-पिम्परनल' का यह कोना सिर्फ़ आइसलैण्डियोंके लिए सुरक्षित रहा है – जहाज़से उतरते ही आइसलैण्डी यात्री सीधे यहाँ पड़ाव डालते हैं। कोपनहेगनमें यदि किसी पुराने आइसलैण्डी मित्रसे मिलना हो, तो उसके घर जानेके बजाय, शामकी किसी घड़ीमें इन कोनेमें प्रतीक्षा करना ही बेहतर होगा। यहाँ आप उसे हमेशा पकड़ सकते हैं !

"स्काऊल !" अचानक मेरे सामने बीयरका गिलास उठ गया। मेरे गिलासको अपने गिलाससे टकराते हुए उसकी अजनबी आँखें मुझपर उठ आयीं। छोटी-सी 'गोरी' दाढ़ी बीयरके सफ़ेद झागमें भीग रही थी।

"कहाँके रहनेवाले हो ?"

"हिन्दुस्तानी ।"

"यहाँ कैसे आना हुआ ?"

"जहाज़की प्रतीक्षा कर रहा हूँ····आइसलैण्डके लिए ।"

"आइसलैण्ड !" एक अजीब विस्मयका भाव चेहरेपर सिमट आया, जैसे उन्हें मेरी बातपर विश्वास न हुआ हो ।

"क्या करोगे आइसलैण्ड जाकर ?"

"ख़ास कुछ नहीं ।"

"मेरा मतलब है····आइसलैण्ड ही क्यों !" और पहली बार मैंने उसकी ओर ध्यानसे देखा···भूरी दाढ़ीके ऊपर दो आँखें एक अर्थहीन मुस-कराहटमें चमक रही थीं । वह कुरसी खींचकर मेरे निकट खिसक आया और दबे स्वरमें लगभग फुसफुसाते हुए उसने पूछा,

"तुम कॅम्युनिस्ट हो ?"

इस बार मेरी रूखी उत्सुकता एक गहरे कौतूहलमें बदल गयी । बीयरका घूँट लेकर मैंने जान-बूझकर रहस्य-भरे लहजेमें उससे पूछा,

"यदि हूँ तो····?"

"यदि न भी हो तो आइसलैण्ड जाकर ज़रूर बहाना करना होगा कि तुम कॅम्युनिस्ट हो····यह मेरी नेक सलाह है और कुछ नहीं ।"

"लेकिन क्यों ?"

"यह ज़्यादा इज़्ज़तकी बात मानी जाती है ! आइसलैण्डी कॅम्युनिस्टोंसे जितनी नफ़रत करते हैं, उससे ज़्यादा उनकी इज़्ज़त करते हैं, विरोधा-भास है न ?"

"और आप····?" मैं झिझक कर चुप हो गया ।

"मैं ? मैं उनका कट्टर विरोधी हूँ । हर चुनावमें मैंने उनके ख़िलाफ़ मत दिया है, यानी जबसे मैं बालिग़ हुआ और विधानने मुझे मत देनेका अधिकार दिया । इसके बावजूद अगर कोई मुझसे पूछे कि आइसलैण्डमें

सबसे ईमानदार राजनीतिज्ञ कौन है, तो मैं कहूँगा – ओल्ग्येर ओल्ग्येर सॉन[1] ! वह एक देवदूत है, लेकिन शैतानोंमें पड़ गया है।"

यह पहला अवसर था जब मुझे आइसलैण्डकी राजनीतिके भीतर झाँकनेका मौक़ा मिला। ओल्ग्येर सॉनके नामसे पहले भी परिचित था, किन्तु एक कॅम्युनिस्टविरोधी व्यक्ति भी उनके प्रति इतने सम्मानकी भावना रख सकता है, इसका परिचय पहली बार मिला। बादमें यह अनुभव अनेक बार हुआ। पूर्व-पूर्वकी राजनीतिमें, जहाँ हर चीज़ काले और सफ़ेद रंगोंमें देखी जाती है, यह अपनेमें एक विलक्षण और असाधारण घटना थी। कॅम्युनिस्ट देशोंके बाहर शायद आइसलैण्ड ही एक ऐसा देश है जहाँ लोग कॅम्युनिस्ट विचारधारासे तीव्र मतभेद रखते हुए भी कॅम्युनिस्ट नेताके प्रति इतनी गहरी निष्ठा और आस्था प्रकट कर सकते हैं।

इस बीच नाचकी नयी संगीत-धुन आरम्भ हो गयी थी। मेरे अजनबी साथी मुझसे क्षमा माँगकर उठ खड़े हुए और नाचते हुए जोड़ोंकी भीड़में ग़ायब हो गये। उस रात मुझे उनके दर्शन दोबारा नहीं हो सके।

आस-पासकी अनेक कुरसियाँ भरे-अधभरे बीयरके गिलासोंके सामने ख़ाली हो गयी थीं। केवल एक कोनेमें अब भी कुछ लोगोंका जमघट लगा था। उन्हींके बीच मुझे एंगुई और थोर्गियेरके चेहरे दिखाई दिये। बहसका ज़ोर था, आवाज़ें बार-बार ऊपर उठ जाती थीं, आइसलैण्डी और डेनिश भाषाओंके शब्द कई बार आपसमें टकरा जाते थे (और मेरे लिए यह पहचानना असम्भव था, कौन-सा शब्द किस भाषाका है!), 'वेटर' ख़ाली गिलासोंको उठाकर उनकी जगह फेनिल झागमें लबालब भरे गिलास रख जाता था, जो देखते-देखते फिर ख़ाली हो जाते थे। बीयर और बहसका कितना अन्तरंग सम्बन्ध है, यह उस मण्डलीको देखकर काफ़ी स्पष्ट

---

१ ओल्ग्येर ओल्ग्येर सॉन—आइसलैण्डी कॅम्युनिस्ट पार्टीके अध्यक्ष।

हो जाता था। एंगुईने मुझे अकेला देखकर अपने पास बुला लिया। "जानते हो आज शामकी खबर?" "कैसी खबर?" मैंने पूछा। "डेनमार्क पार्लामेण्टने पाण्डुलिपियोंको वापस करनेका निर्णय फिर स्थगित कर दिया। इसीपर बहस हो रही है।"

उन दिनों यह एक 'जलता प्रश्न' था आइसलैण्ड और डेनमार्कके बीच। हर जगह इसकी चर्चा थी, और कहीं-न-कहीं इसकी भनक कानोंमें अवश्य पड़ जाती थी। घटना-सूत्रको पकड़नेके लिए इतिहासमें जाना होगा। बात उन दिनोंकी है जब आइसलैण्ड डेनमार्कका उपनिवेश था (आइसलैण्ड पूर्ण रूपसे स्वतन्त्र हुआ १९४४ में) १३-१४वीं शताब्दियोंमें आइसलैण्डमें अनेक श्रेष्ठ और महत्त्वपूर्ण साहित्यिक और ऐतिहासिक ग्रन्थोंकी सर्जना हुई, जिसमें 'सागा-ग्रन्थों' को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि मध्यकालीन युरॅपमें आइसलैण्ड ही ऐसा देश था, जहाँ कमोबेश हर व्यक्ति लिख-पढ़ सकता था; अन्य देशोंमें ज्ञान और शिक्षाके साधनोंपर चर्चका आधिपत्य था, किन्तु आइसलैण्डमें चर्च और ईसाई संघोंके नियन्त्रणके बाहर, एक शुद्ध धर्म-निरपेक्ष संस्कृतिका विकास हुआ। आश्चर्य नहीं कि 'सागा-ग्रन्थ' निरे 'अ-धार्मिक', ईसाई-दर्शन और चिन्तनसे बिलकुल अछूते हैं – इस दृष्टिसे एक हद तक उनकी तुलना यूनानी नाटकोंसे की जा सकती है। डेनमार्कके आधिपत्यमें आनेके बाद धीरे-धीरे आइसलैण्डी संस्कृतिका केन्द्र कोपनहेगन बन गया। न केवल ऊँची शिक्षा प्राप्त करनेके लिए अनेक विद्यार्थी आइसलैण्डसे कोपनहेगन आते थे, बल्कि अनेक आइसलैण्डी विद्वानों और कलाकारोंने अपने श्रेष्ठ ग्रन्थोंकी रचना कोपनहेगनमें रहकर ही की। इन ग्रन्थोंकी पाण्डुलिपियाँ आज डेनमार्कके संग्रहालयों तथा पुस्तकालयोंमें सुरक्षित हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद आइसलैण्ड-सरकारने डेनमार्कसे इन पाण्डुलिपियोंको वापस लौटानेकी माँग की है, जिसे आज तक स्वीकार नहीं किया गया। आज पाण्डुलिपियोंका यह विवाद आइस-

लैण्डमें एक 'राष्ट्रीय प्रश्न' बन गया है – उतना ही गम्भीर और उत्तेजना-पूर्ण – जितना आइसलैण्डसे अमरीकी अड्डोंको हटानेका प्रश्न।

'स्कारलेट पिम्परनल' में उस रात, और उस रातके बाद अनेक अवसरोंपर मुझे इस प्रश्नपर आइसलैण्डियोंसे बातचीत करनेका मौक़ा मिला : डेनमार्कका यह अन्यायपूर्ण व्यवहार उन्हें न केवल हास्यास्पद और बचकाना जान पड़ता है, बल्कि कुछ-कुछ व्यंग्यात्मक भी। "हमें नहीं मालूम था कि डेन लोग हमारी संस्कृतिसे इतनी मुहब्बत करते हैं। एक आइसलैण्डी व्यापारीने हँसते हुए मुझसे कहा। स्कैण्डेनेवियाई लोगों (विशेषकर आइसलैण्डी और स्वीडेनियों) की यह असाधारण आदत है, कि जिस चीज़के बारेमें वे बहुत संजीदा ढंगसे सोचते हैं और महसूस करते हैं, उसके बारेमें उतनी ही विरल और व्यंग्यात्मक ढंगसे बात करते हैं (आश्चर्य नहीं कि अज्ञेयजीकी 'गम्भीर' प्रश्नावलीको स्वीडेनके एक संवेदनशील कविने पियक्कड़की मानिन्द हँसीमें टाल दिया था)।

उनकी तुलनामें हम भारतीय बहुत 'गम्भीर' हैं (कमसे कम कोशिश यही रहती है कि गम्भीर दिखें), आधारभूत समस्याओंकी प्रश्नावली हमेशा जेबमें रहती है···हालाँ कि एक प्रश्न बार-बार तंग करता है कि अपनी गम्भीरताके बावजूद हममें-से कितने भारतीय 'बुद्धिजीवी' लन्दनकी 'इण्डियन-लायब्रेरी' को भारत वापस लौटानेके लिए उतने ही चिन्तित हैं जितना वह उजड्ड आइसलैण्डी व्यापारी मुखर परिहासके बावजूद अपने देशकी पाण्डुलिपियोंके बारेमें था।

बहसका दौर अधिक देर तक नहीं चल सका। 'ऑरकेस्ट्रा'पर एक अत्यन्त लोकप्रिय संगीत-धुन बजायी जा रही थी। बिजलीकी तरह समूचा वातावरण जगमगा उठा। हर व्यक्ति बीयरका गिलास हवामें उठाकर गाने लगा था। लगता था, पल-भरके लिए आइसलैण्डी और डेन अपने झगड़ेको भूलकर उस आइसलैण्डी कविकी अलमस्त ज़िन्दादिलीमें डूब गये हैं, जो एक ज़मानेमें कोपनहेगनमें रहता था और अपनी भाषामें गीत और

कविताएँ लिखता था। वही डेन जो अभीतक आइसलैण्डी मित्रोंसे उत्तेजित स्वरमें बहस कर रहे थे, अब उन्हींकी भाषामें बहुत ही भावुक होकर गा रहे थे। एंगुईसे मैं गीतका अर्थ पूछनेका लोभ संवरण न कर सका। किन्तु आवाज़ोंका 'कोरस' इतना घना था कि एक भी शब्द उसे बींध कर मेरे कानों तक न पहुँच सका। मुझपर दया करके एंगुईने काग़ज़के टुकड़ेपर गीतका अनुवाद अँगरेज़ीमें लिख दिया। गीत, ज़ाहिर है, पीनेकी प्रशंसामें लिखा गया है। शायद ही आपको कोई आइसलैण्डी मिले जिसे सारा गीत कण्ठस्थ न हो।

ऑरकेस्ट्राकी धुन सहसा बदल गयी। 'वेटरों'के चेहरे भीड़में छिप-से गये थे, केवल बीयर-मग्ज़से घिरे उनके हाथ लोगोंके सिरोंपर-से तेज़ीसे निकल जाते थे। कभी-कभी तो यह भ्रम होने लगता था कि हम किसी मायावी-स्थानपर आ गये हों जहाँ बीयरके गिलास ख़ुद-बख़ुद एक मेज़से दूसरी मेज़ तक लोगोंके सिरोंके बीच रास्ता टटोलते हुए तिरते हुए चले जाते हैं।....लड़के और लड़कियोंके नाचते जोड़े कुरसियोंपर बैठे अपने साथियों-को ज़बरदस्ती अपनी तरफ़ खींचने लगे।....."यह गीत स्कारलेट पिम्पर-नलका ख़ास गीत है....कहते हैं, तीन सदियोंसे बराबर इस गीतकी धुन कोपनहेगनके बीयर-घरोंमें बजायी जाती है।"—एंगुईने मेरे कानमें चीख़ते हुए कहा। गीत डेनिश भाषामें है और काफ़ी लम्बा है, यहाँ संक्षेपमें इसका मुख्य आशय दे रहा हूँ :

—बहुत पुरानी बात है। किसी गाँवमें एक धनी-समृद्ध किसान रहा करता था। एक दिन वह बीयर पीने घरसे बाहर निकला। उसके जाते ही एक युवा छात्र चुपके-से उसके घरमें घुस आया। किसानकी पत्नीका सौन्दर्य देखते ही बनता था। छात्रने उसके गुलाबी होंठोंपर अपने होंठ रख दिये। फ़्रनीने कुछ नहीं कहा क्योंकि वह जानती थी कि किसान बाहर बीयर पीने गया है। किन्तु वास्तवमें उसका पति दरवाज़ेके बाहर खड़ा सब कुछ देख रहा था। बस, फिर क्या था। उसने अपनी बन्दूक़ उठायी

और दोनोंको वहीं ढेर कर दिया। फिर उसने गहरा उच्छ्वास लिया और बीयर पीने बीयर-घरकी ओर चल पड़ा।

—निष्कर्ष : जब कभी बीयर पीने बाहर जाओ, अपनी पत्नीको अपने संग ले जाना मत भूलो।

इस अत्यन्त उपयोगी निष्कर्षको गाँठमें बाँधकर आखिर हम बाहर आये। यह कोपनहेगनमें हमारी पहली रात थी किन्तु लग रहा था जैसे लम्बी मुद्दतसे हम यहीं रहते आये हों। सर्दी बढ़ गयी थी, हवामें एक अजीब-सा तीखापन था जिससे समुद्रकी निकटताका आभास होता था। नीले अँधेरेमें तिवोलीकी बत्तियाँ अब भी जगमगा रही थीं हालाँ कि मेला उजड़ चुका था और लोग तेज़ क़दमोंसे अपने-अपने घरोंकी ओर बढ़े जा रहे थे। सिर्फ़ किसी बीयर-घर या 'बार'के दरवाज़ेपर इक्के-दुक्के शराबी अब भी दिखाई दे जाते थे — अँधेरेमें खोयी आत्माओं-से। होटलके सामने पहुँचकर एंगुईने हमसे बिदा ली।

कुछ देर तक हम होटलके सामने खड़े रहे। थोर्गिग्रेरने अपनी पाइप सुलगा कर मेरी ओर देखा····

"मैं कई होटलोंमें रह चुका हूँ।" उसने धीरेसे कहा, "किन्तु जब कभी किसी अजनबी होटलमें पहली रात बितानेकी घड़ी पास आती है, तो मुझे अजीब-सा डर जकड़ लेता है।"

पता नहीं कब हम कमरेमें पहुँचे। — लगा था, जैसे बिस्तरपर लेटने-से पहले ही बर्लिनकी थकान और कोपनहेगनकी बीयरने हमें ग्रस लिया हो।

फिर रफ़्ता-रफ़्ता शहरका चेहरा पहचानके घेरेमें सिमट आया — हालाँ कि 'वेटिंग-रूम' जैसा परायापन, जो शुरू-शुरूमें महसूस किया था, आखिर तक पूरी तरहसे दूर न हो सका। जब कभी दिन साफ़ और उजला होता, हम समुद्रकी ओर चल देते। हमारा जहाज़ बन्दरगाहपर आ टिका था। नाम था गुलफॉस (स्वर्णप्रपात), जो आइसलैण्डके

एक सुरम्य झरनेका नाम है। होटलके खर्चकी बचत करनेके लिए तीसरे ही दिन हम अपना बोरिया-बिस्तर जहाज़में ले आये। वास्तवमें हमारा यह चलन जहाज़के नियमों-क़ायदोंके विरुद्ध था। यात्रा आरम्भ होनेके एक रात पहले ही यात्री जहाज़में आ सकते हैं। जहाज़के कप्तानने शुरूमें आनाकानी की, किन्तु जब थोर्गियेरने बातों-ही-बातोंमें उसे बताया कि मैं हिन्दुस्तानी हूँ और आइसलैण्ड जानेके लिए प्रागसे आया हूँ, तो उसके व्यवहारमें एकदम क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। उसने न केवल हमें केबिनमें सोनेकी अनुमति ही दे दी, बल्कि रातके समय सर्दीसे बचनेके लिए गरम कम्बलोंकी व्यवस्था भी कर दी।

दिन-भर आर्ट-गैलरियों और म्यूज़ियमोंका चक्कर लगाकर जब हम अँधेरा होते थके-माँदे जहाज़पर पहुँचते, तो दूरसे ही समुद्रकी लहरोंकी मुलायम-सी थपथपाहट सुनाई देती। तब अजीब-सा सुकून मिलता, थकान ढीली पड़ जाती और सब कुछ हलका-सा महसूस होने लगता। लहरोंकी आवाज़ जैसे अपनेमें एक गीत हो और यद्यपि जहाज़ एक जगह ही टिका रहता, हमें लगता जैसे हम आइसलैण्डसे बहुत दूर नहीं हैं। रातको सोने लगता, तो बिस्तर बच्चेके पालने-सा मन्द-मन्द डोलता रहता। आँख खुलती, तो केबिनकी खिड़कीके बाहर अन्तहीन, अबाध नीलापन दिखाई देता; जहाज़के मस्तूलोंपर 'समुद्री-पक्षी' उड़ते रहते। ध्यान आता, हम किसी दिन वहाँ होंगे 'समुन्दर'के बीचो-बीच; बचपनके पुराने स्वप्नोंकी गाँठें एक-एक करके खुलने लगतीं। सात समुन्दर पार आइसलैण्ड स्टीवेन्सनके 'ट्रेज़र-आइसलैण्ड' या परियोंके अज्ञात स्वप्न द्वीप-सा झिलमिलाने लगता। इन्हीं रातोंके बीच एक रात मुझे सहसा हैन्स क्रिश्चियन ऐण्डर्सनका स्मरण हो आया था, जिन्होंने अपनी विश्वविख्यात परीकथाएँ कोपनहेगनमें ही लिखी थीं। इस यात्रामें जाने-अजाने अनेक अद्भुत चमत्कारोंसे वास्ता पड़ चुका था। अतः यह बिलकुल असम्भव न लगा था कि किसी रात केबिनसे बाहर देखते हुए समुद्रकी लहरोंपर अचा-

नक ऐण्डर्सनकी रोती हुई मर्मेडकी झलक पा लूँगा !

वैसे कोपनहेगनके संग ऐण्डर्सनका नाम जोड़नेमें मुझे हमेशा दिक़्क़त महसूस होती रही है। शायद इसलिए कि इस नगरमें वह विशेष तत्त्व बहुत मुश्किलसे दीख पाता है, जो एक स्थानको पेरिस या अमस्टरडम-की भाँति – खास कलात्मक व्यक्तित्व प्रदान कर सके। यह नहीं कि यहाँ कला-गैलरियों या चित्र-प्रदर्शनियोंकी न्यूनता नज़र आती है। यदि महज़ संख्याको ध्यानमें रखें तो शायद कोपनहेगन स्कैण्डेनेवियाई देशोंमें अत्यन्त कलासम्पन्न नगर माना जायेगा। जिन दिनों हम कोपनहेगनमें थे, उन दिनों वहाँ स्कैण्डेनेवियाई चित्रकारोंकी वार्षिक-प्रदर्शनी चल रही थी। थोर्गियेर और उनके एक कलाकार-मित्रके संग मुझे भी वहाँ जानेका अवसर प्राप्त हुआ। काफ़ी बड़े पैमानेपर प्रदर्शनीका आयोजन किया गया था (वैसे भी कोपनहेगनमें हर चीज़ काफ़ी बड़े पैमानेपर की जाती है !) प्रदर्शनीमें अधिकतर चित्र डेनमार्कके कलाकारोंके ही थे। अन्य देशोंका प्रतिनिधित्व नाम-मात्रको ही हुआ था। समूची प्रदर्शनीको देखनेके बाद निराशा हुई। फ़र्नीचरके 'डिज़ाइन', दस्तकारीका सूक्ष्म काम तथा नयी वास्तुकलामें दिलचस्प प्रयोग करनेवाले डेन लोग चित्र-कलाके क्षेत्रमें 'पास्तेश' और उथलेपनमें सार्थकता खोजेंगे, यह देखकर स्वभावतः प्रश्न उठता है : क्या यह सच नहीं है कि हर जाति अपने जीवन-सौन्दर्यको अभिव्यक्त करनेका जो विशिष्ट साधन चुन लेती है, उसके बाहर कोई अन्य साधन (या माध्यम) उसकी प्रेरणाको न केवल कृत्रिम और निर्बल बना देते हैं, बल्कि एक खास ढंगसे विकृत भी कर देते हैं ? चित्रकलाके क्षेत्रमें यह तथ्य न केवल डेनमार्कपर, बल्कि न्यूनाधिक मात्रामें अन्य स्कैण्डेनेवियाई देशोंपर भी लागू किया जा सकता है (मूर्तिकलाको छोड़कर आधुनिक युरेपीय कलामें स्कैण्डेनेवियाई मूर्तिकला और वास्तुकलाकी एक विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण देन रही है)। एडवर्ड मुंक ही एक कलाकार थे, जिन्होंने इस दीवारको पहली बार तोड़ा था। यह कम आश्चर्य और

महत्त्वकी बात नहीं कि किसी अन्य स्कैण्डेनेवियाई कलाकारने उनका साथ नहीं दिया। मुंक (जो नार्वेके थे) आज भी अपनी परम्परामें बिलकुल अकेले हैं।

कोपनहेगनकी कला-गैलरियोंमें घूमते हुए अकसर एक बहुत पुरानी अरसेसे दबी-बुझी इच्छा जाग जाती थी। कहीं पढ़ा था, या शायद किसी-से सुना था कि एक बार दिलाक्रॉयने जॉर्ज साँद और शोपाँका चित्र बनाया था। एक दिन जब जॉर्ज साँद दिलाक्रॉयसे मिलने गयीं, तो उनके स्टूडियोमें अचानक उनकी नज़र इस चित्रपर पड़ गयी। न जाने क्यों शोपाँके संग अपने चित्रको देखकर उन्हें बुरी तरह झुँझलाहट हुई और गुस्सेमें उन्होंने चित्रको दो हिस्सोंमें फाड़ दिया। एकमें उनका अपना चित्र था, दूसरेमें शोपाँका। कहते हैं, इस चित्रका एक भाग ड्रेस्डनकी आर्ट-गैलेरीमें है और दूसरा कोपनहेगनमें। ड्रेस्डन जानेका अभीतक अवसर नहीं मिला, कोपनहेगनमें दिलाक्रॉयके कुछ चित्र अवश्य देखनेको मिले किन्तु जिसकी तलाश थी, वह कहीं दिखाई नहीं दिया।

लेकिन जब किसी चीज़की खास तलाश न की जाये और उम्मीद बिलकुल न हो, वह ज़रूर अप्रत्याशित रूपसे रास्तेपर पड़ी मिल जाती है। यही मेरे संग हुआ जब शहरकी एक छोटी-सी गैलरीमें मुझे अचानक जापानी कलाकार कितोके चित्र दिखाई दे गये। कितो एक लम्बे अरसे-से पेरिसमें रहते हैं। पेरिसके 'म्यूज़ियम ऑव मॉडर्न आर्ट' में उनके एक-दो चित्र देखकर मैं बहुत प्रभावित हुआ था। कभी आशा न की थी कि कोपनहेगनमें उनके चित्रोंकी प्रदर्शनी देखनेका संयोग हाथ लगेगा। किन्तु इससे अधिक आश्चर्य तब हुआ, जब गैलरीसे सटे एक छोटे-से गोदाममें कुछ चित्रोंका खुला गट्ठर दिखाई दिया। सबसे पहला चित्र, जिसपर निगाह पड़ी – ज़रा अनुमान कीजिए, हमारे रज़ा साहबका था। गोदाममें खड़ी एक महिला शायद मेरी उत्सुकता भाँप गयीं, "क्या आप रज़ाको जानते हैं?" उन्होंने फ्रेंच उच्चारणमें अँगरेज़ीके शब्दोंका उच्चारण करते

हुए पूछा। मैंने मुसकरा कर सिर हिलाया। देर तक उनसे बातचीत होती रही। पता चला कि वह, पेरिसमें जिस गैलरीसे रज़ा और कितोका सम्बन्ध है, उसके मालिककी पुत्री हैं। उन दिनों कितोके चित्रोंकी प्रदर्शनी कोपनहेगनमें आयोजित करने आयी थीं। कुछ दिनों बाद इसी गैलरीमें पेरिसके चन्द युवा चित्रकारोंकी प्रदर्शनीका उद्घाटन होनेवाला था। इसी सिलसिलेमें रज़ाके चित्र भी अपने संग लायी थीं। बादमें उन्होंने बताया कि वह हुसेन, राम, पदमसी इत्यादिको व्यक्तिगत रूपसे जानती है।

गैलरीसे बाहर निकला, तो लगा जैसे दुनिया सचमुच बहुत छोटी हो गयी है!

हमारा अन्तिम दिन····

गुलफाँसका डेक यात्रियोंसे भरा है। रूमाल हिलाये जा रहे हैं और बन्दरगाहका तट धुँधला पड़ता जा रहा है। डेकसे एंगुईकी आख़िरी झलक दिखाई देती है। वही महीन, खोयी-सी मुसकराहट और उदास आँखें···· रातकी बची-खुची मैली धुन्धसे कोपनहेगनका उनींदा शहर धीरे-धीरे जाग रहा है। सुबहका रंग, बहुत ही फीका और म्लान। बन्दरगाहपर चारों ओर जहाज़ोंके मस्तूल और हवामें सिर उठाये विशालकाय क्रेन दिखाई देते हैं।

केवल एक लालसा है, केबिनमें जाकर सो जानेकी, जबतक हम बीच समुद्रमें न पहुँच जायें। कल रात हम बहुत देर तक जागते रहे थे। यहाँ 'रात' नहीं होती, शाम और सुबहके दो धुँधले बिन्दुओं बीच रातका महज़ हलका-सा भ्रम होता है – जैसे एक झीना-सा सफ़ेद परदा हो, जो रात होते ही गिर जाता है और सुबह होनेपर फिर उठ जाता है। मुश्किलसे दो-तीन घण्टे सोना हो सका। केबिन डोलता रहा था और नींदके टूटे हिचकोलोंके बीच पिछली रातकी स्मृतियाँ एक अन्तहीन दायरेमें घूमती रही थीं।

कौन-सी 'बार' थी या 'नाइट-क्लब', अब कुछ भी ठीकसे स्पष्ट नहीं।

याद करनेपर हवामें घूमते हुए लट्टू, 'रॉक-एन-रोल' की ज्वरग्रस्त बाढ़-में डगमगाते, हाँफते, पसीनेमें लथपथ चेहरे, पगली चीख़ें और बेहोश, बेमानी हँसीके ठहाके याद आते हैं। वह कोपनहेगनमें हमारी आख़िरी रात थी। "मैं अकसर अपने यात्री मित्रोंको आख़िरी रातके लिए यहाँ लाता हूँ।"– एंगुईने कहा था। वह हमें घसीट लाया था और देर रात तक हम 'एकुआ-विते' (वाटर ऑव लाइफ़) पीते रहे थे। मैंने उसे पहली बार चखा था और लगा था जैसे आगकी एक जलती लकीर गले और पेटके बीच खिंच गयी हो। थोर्गियेरने मुझे गिलास देते हुए कहा कि जिसने एकुआ-वितेको नहीं पिया, वह शायद कभी स्कैण्डेनेवियाई चरित्रके उलझावको नहीं समझ सकता। "उत्तरी देशोंका गुह्यतम रहस्य इसमें छिपा है....." हम 'बार' में बैठे थे, उससे सटा 'डान्सिग हॉल' था, जहाँ डेन लड़कियाँ, यात्री अमरीकी सैनिक, वेश्याओंके दलाल, 'स्ट्रीट-वॉकर्ज़' वे सब थे – जिनके लिए हर रात 'आख़िरी रात'के अधीर, हताश, जादुई सम्मोहनसे भरी होती है। 'बार'का दरवाज़ा बार-बार खुलता था, लड़के-लड़कियोंके गुच्छे आते थे – कुछ देर पीनेके बाद वे ठिठके-से खड़े रहते थे, और फिर भीड़का नया रेला उन्हें पीछे अज्ञात कोनोंमें धकेल देता था। बारमें बैठे लोग उनकी ओरसे तटस्थ थे, एक बहुत ही बूढ़ा आदमी हवामें भावहीन आँखोंसे देखता हुआ मुसकरा रहा था। हमारी मेज़के पास दूसरी मेज़पर एक लड़की सो रही थी और उसका साथी बार-बार उसके बिखरे अस्त-व्यस्त बालोंको चूम लेता था।

यह एक तसवीर है....और इसके कई रंग हैं, नुक़्ते, अलग और अकेले – उन्हें कोशिश करनेपर भी समेट नहीं पाता। फिर भी आश्चर्य होता है कि हम बराबर बैकेटके बारेमें देर तक बहस करते रहे थे। बात शायद 'वेटिंग फ़ॉर गोदो' से शुरू हुई थी – आजके युगका सबसे महत्त्वपूर्ण नाटक....शायद एंगुईने कहा था। "मुझे ही देखो – दिन-भर स्टीमशिप कम्पनीमें काम करता हूँ। शामको बैकेट पढ़ता हूँ....जब पीता नहीं। बड़ी

सान्त्वना मिलती है। मैं छह महीने कोपनहेगन रहता हूँ, छह महीने रिक्याविकमें, किन्तु स्थिरता कहीं भी नहीं मिलती। सिर्फ़ जब अकेले कमरेमें बैकेटके संग अपनेको पाता हूँ····या यहाँ····तब लगता है कि मैं एक 'पर्गेटरी' (आध्यात्मिक अपराधियोंके दण्ड-भोगकी जगह) के भीतर-से गुज़र रहा हूँ और यह विचार कि यह 'पर्गेटरी' है और मैं अपनी इच्छा-से इसके बीचसे गुज़र रहा हूँ – मुझे अजीब-सी तसल्ली देता है।

और मैं 'एकुआ-विते' पीता हुआ एंगुईके चेहरेकी ओर देख रहा हूँ। हलका-सा विस्मय होता है। एक असाधारण-सी समानता दिखाई देती है, उसमें और बैकेटके चरित्रोंमें····एक रूखा-सा परिहास, व्यंग्यमें लिपटी करुणा, अन्तहीन थकान····और कोपनहेगन।

सोचता हूँ क्या बर्लिनसे कोपनहेगनकी यात्रा एक-दूसरे स्तरपर ब्रेख्तसे बैकेट तककी यात्रा ही तो नहीं है ?

थोर्गियेर कहींसे फूलोंका गुच्छा ले आया है····'बैकेटके लिए यह गुलदस्ता····'उसने मुसकराते हुए फूलोंका गुच्छा एंगुईके सामने सरका दिया। एंगुईने उसमें-से एक सबसे ख़ूबसूरत फूल तोड़कर मुझे दे दिया। यह आश्चर्यकी बात थी – इतनी रात थोर्गियेर कहाँसे ये फूल चुरा लाया। किन्तु प्रागमें मैंने ऐसा कई बार देखा था। जब थोर्गियेर बहुत पी लेता है, तो कुछ क्षणोंके लिए अचानक ग़ायब हो जाता है। वापस लौटनेपर उसके हाथोंमें हमेशा फूलोंका गुच्छा होता है – चाहे दिन हो या आधी रात।

थोर्गियेरके हाथमें एक आइसलैण्डी अखबार भी है; शायद कोई बहुत दिलचस्प लेख छपा है। एंगुईके लिए वह अख़बारसे लेखवाला हिस्सा बहुत सतर्कतासे फाड़ने लगा। वह काँपते हाथोंसे बहुत धीरे-धीरे लेखको अख़बारसे अलग कर रहा है, मैं और एंगुई बहुत ध्यानसे उसके छोटे, सुडौल हाथोंको देख रहे हैं। और तब उस क्षण अचानक एक लड़की लड़खड़ाते क़दमोंसे हमारे मेज़के सामने आ खड़ी हुई। आँखोंके नीचे स्याह गढ़े,

बहुत ही छोटा माथा, होंठोंपर हलकी-सी लिपस्टिक, और शराबकी तेज़ गन्ध ! वह कुछ देर तक चुपचाप थोर्गियेरको देखती रही, फिर नीचे झुककर कहा, "क्यों, क्या टॉयलेट जानेका इरादा है ?" थोर्गियेरके हाथ सहसा अख़बारपर ठिठक गये। दूसरी मेज़से हँसीका ठहाका सुनाई दिया। किन्तु लड़कीने उस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उसकी आँखें अचानक मेज़पर रखे फूलपर जा टिकी थीं।"

लड़खड़ाते पैरोंपर वह ज़्यादा देर तक खड़ी न रह सकी – पास पड़ी ख़ाली कुरसीपर बैठते हुए उसने मेरी ओर देखा :

"हिन्दुस्तानी हो ?"

मैंने सिर हिला दिया।

"क्या यह फूल मुझे दे सकते हो ?"

मैंने फूल उसके आगे बढ़ा दिया।

इस तरह नहीं····उसने सिर हिलाया।

फिर ? मैंने प्रश्न-भरी दृष्टिसे उसकी ओर देखा।

"मेरे बालोंमें लगा सकते हो ?····जैसे हिन्दुस्तानी लड़कियाँ लगाती हैं।" इस बार मेरी आँखें उसके पूरे चेहरेपर उठ आयीं – बहुत ही पीले गाल, तिकोना चेहरा, माथेपर पसीनेकी बूँदें – क्षण-भरके लिए भ्रम हुआ मानो वह सीधे सार्त्रके किसी उपन्याससे बाहर निकलकर वहाँ आ गयी हो।

····जैसे हिन्दुस्तानी लड़कियाँ लगाती हैं।

जबतक मैं उन छोटे बालोंमें फूलको फँसानेकी कोशिश करता रहा, वह मेरे गिलाससे 'एकुआ-विते' पीती रही। उसका अमरीकी साथी बहुत ही ऊबे भावसे मेज़के सामने खड़ा प्रतीक्षा करता रहा।

उसके बाद वहाँ ज़्यादा देर बैठना नहीं हो सका। सुबह जहाज़ सात बजे रवाना होनेवाला था। रात बीत चली थी और नींद आँखोंमें भर चली थी। हम बाहर चले आये।

बाहर, हम ठिठके-से खड़े रहे। ऊपर आकाश था, चमकीला हरा, जैसा पहले कभी न देखा, और जून महीनेकी हवा उतनी ही हलकी और पगली, जैसे शुरू मार्चमें दिल्लीकी हवा। सुबहकी धुँधली, आधी रोशनीमें कोपनहेगनकी सड़कोंपर आखिरी बार चलते हुए एक बहुत ही ज़बरदस्त इच्छा हुई···वापस लौट जानेकी – वापस, प्राग या दिल्ली – कहीं भी !

कभी-कभी सोचता हूँ, यात्रिकका सुख सब कोई जानते हैं, दुःख अपनेमें अकेला छिपा रहता है।

और अब जहाज़का डेक है···सूना और उजाड़। समुद्रकी अधीर लहरें पल-छिन ऊँची होती जा रही हैं। तटके पीछे कोपनहेगन फीकी-मैली धुन्धमें डूब गया है।

सब कुछ पीछे रह गया है, सिर्फ़ समुद्री पक्षियोंका झुण्ड अब भी जहाज़के संग-संग उड़ता चला आ रहा है।

उत्तरी रोशनियोंकी ओर

दिन और रात····

कित्ता पानी ? कित्ता ? हाथ फैल जाते हैं, और नन्हें-से आलिंगनमें समूचा, अन्तहीन समुद्र सिमट आता है। मुद्दत पहले घरकी छतपर मछलियोंका खेल खेलते हुए क्या कभी सोचा था कि एक दिन सचमुच लहरें हमारे सिरपर-से गुज़र जायेंगी और हम, जो अब बड़े हो गये हैं, बच्चों-से डरते, ठिठुरते हुए डेकपर बैठे रहेंगे ?

या लेटे रहेंगे, कम्बलोंमें सिकुड़े हुए बण्डलों-से — लंचकी घण्टी बजेगी तो भी, 'डिनर' की पुकार होगी तो भी ! बिना हिले-डुले, भूखे-प्यासे तपस्वियों-से, अधसोये, अधजागे····

रात और दिन····

दो दिनों तक समुद्र-पक्षी बराबर हमारे जहाज़के पीछे उड़ते रहे, धूप और आँधीमें, दिन-रात। जब जहाज़के 'किचन'से बावर्ची पुरानी बासी रोटीके टुकड़े, फलोंके छिलके या बची-खुची गोश्तकी तरकारी बाहर फेंकता, तो वे उनपर उतावले-से होकर टूट पड़ते, समुद्रमें गोते लगाते हुए उन्हें निगल लेते और फिर उड़ने लगते, उस घड़ीकी आशामें जब बारह या तेरह घण्टे बाद बावर्ची फिर अपना सिर 'किचन' की खिड़कीसे बाहर निकालेगा।

किसने कहा था कभी समुद्र-पक्षीके 'रोमैण्टिक' सौन्दर्यके बारेमें ? छह दिनका सागर-पथ है, कोपनहेगनसे आइसलैण्ड तक। हर दिनको गिनना पड़ता है, समयका हिसाब रखनेके लिए। और समय है जिसने अपनेको दिन और रातके पहियोंसे मुक्त करके फैला दिया है, समुद्रकी अबाध

नीलिमापर। लम्बे होते हुए दिन, सफ़ेद रातों तले चीख़ती लहरें, पानीके बीच धरती पानेकी बिलखती प्यास····

उदासी, चक्कर, थकान, इन सबसे मुठभेड़ बादमें हुई। पहले दिन सबके चेहरेपर ताज़गी, उल्लास और लपक, भोजनके प्रति उत्साह, आधे पढ़े हुए उपन्यासोंको ख़त्म करनेकी उमंग, नये मित्र बनानेका जोश – सब कुछ था। डेककी कुरसियाँ भरी रहतीं, लड़कियोंके बालोंपर बँधे लाल, नीले, हरे स्कार्फ़ हवामें उड़ते रहते, जहाज़के कोनोंमें प्रेमियोंके जोड़े समुद्रपर तिरते हुए सपनोंमें खोये रहते। जब कभी मौसम अच्छा होता, सब अपने-अपने कम्बलोंमें लिपटे हुए धूप सेंकते बैठ जाते। विभिन्न देशोंके यात्री वहाँ जमा थे – स्विस, जर्मन, स्वीड, डेन और अकेला एक भारतीय! डेकके ऊपर 'बार' थी, फ़र्स्ट-क्लासके सामने। अकसर रात्रिके भोजनके बाद जब डेकपर हवा तेज़ हो जाती और कम्बलोंके बावजूद दाँत कटकटाने लगते, यात्रियोंके छोटे-छोटे गुच्छे 'बार' में जा बैठते। बन्द खिड़कियोंके परे समुद्रकी अधीर, बेचैन चीख़ें गूँजती रहतीं, मानो किसी वनैले जन्तुको पिंजड़ेमें बन्द कर दिया हो और वह हाँफता, बदहवास-सा होकर बाहर निकल आनेके लिए छटपटा रहा हो····चिड़ियाघरमें बन्द क्या कभी सिंहको देखा है, उसकी क्षुब्ध, असहाय विक्षिप्त घुटनको।

किन्तु उस ओर कोई ध्यान नहीं देता। कुछ लमहोंके लिए डेनिश बीयर या फ्रेंच कोन्याक पीते हुए हम भूल जाते कि हम असीम अँधेरेके एक छोटे-से टुकड़ेपर तिर रहे हैं, कि हमारे नीचे एक नीली, रहस्यमय जादुई दुनिया बसी है, हमारे संग-संग रेंग रही है – क्षुब्ध, अशान्त और निस्तब्ध। इस दुनियाका आभास उसी समय होता जब कोई अल्हड़-सी लहर पूरी निर्ममतासे हमारे जहाज़को धकेल देती और अचानक हमारे सामने मेज़पर रखा बीयरका गिलास लुढ़कता हुआ नीचे गिर पड़ता, और तब 'बार' में हर मेज़ पर अपने-अपने गिलासोंको बचानेकी बचकानी-सी भगदड़ मच जाती।

किन्तु समुद्रका यह नशा और उल्लास ज़्यादा दिनों तक नहीं टिका रह सका। उत्तरी-सागरके खुले, नग्न विस्तारमें पहुँचते ही हमारे जहाज़को अचानक प्रागैतिहासिक कालकी बनैली, आदिम लहरोंने लपेट लिया। जान पड़ता था जैसे कोई अदृश्य दानव हमारे 'गुलफाँस' को एक नन्हें-से खिलौनेकी मानिन्द ऊपर-नीचे उछाल रहा हो। डेकपर दो क़दम चलते हुए लगता था जैसे हम एक छोटे-से भूकम्पके भीतरसे गुज़र रहे हैं। जहाज़ अब ऊपर-नीचे न डोलता हुआ दायें-बायें हिचकोले खा रहा था। डेकपर पानीके चहबच्चे लग जाते थे और अब वहाँ बैठना खतरेसे खाली नहीं था। जहाज़के बीचो-बीच एक चौड़ा-सा चबूतरा था जो अपेक्षाकृत अधिक सूखा और सुरक्षित रहता था। डेकसे खदेड़े जानेके बाद हमने बचावका दूसरा मोर्चा यहींपर गाड़ लिया था।

इस बीच कई परिचित मित्रोंसे धीरे-धीरे साथ छूटता गया। पहले दिनके जाने-पहचाने साथी अब बहुत कम डेक या भोजन-कक्षमें दिखाई देते थे और हम मन-ही-मन अनुमान लगा लेते थे कि वे 'मृत्यु-शय्या' (मज़ाक़में हमने 'सी-सिकनेस' को मृत्यु-शय्याकी संज्ञा दे रखी थी) के शिकार हो गये हैं। ऐसा भी होता था कि किसी शाम 'बार' में हम किसी हृष्ट-पुष्ट व्यक्तिसे हँस-बोलकर गपशप कर रहे होते और दूसरे दिन वह सज्जन ऐसे ग़ायब हो जाते कि अगले चौबीस घण्टों तक उनके दर्शन ही न होते। दोबारा मिलनेपर उनका पीला, ज़र्द चेहरा देखते ही हम भाँप जाते कि वह बेचारे 'तहख़ाने' से वापस लौटे हैं।

तहख़ाना''''यह नाम हमने अपने सेकेण्ड-क्लासके सामूहिक केबिनको दे रखा था। हमारे लिए अलग-अलग केबिन नहीं थे, सब मिल-जुलकर एक संग बैरक-नुमा कमरेमें सोते थे। एक बिस्तरके ऊपर दूसरा बिस्तर लगा था, बीचमें सब लोगोंका सामान और इर्द-गिर्द बहुत ही मद्धिम बत्तियाँ, जैसे 'फ़ाईटिंग-लाइन' के पीछे कोई छोटा-सा अस्पताल हो! इस अँधेरे, लम्बे, सीलन-भरे 'तहख़ाने' में घुसते ही सिर चकराने लगता था – इससे

छुटकारा पानेके लिए ही हम रात-दिन डेकपर डटे रहते थे, जिसे हमने 'फ़ाइटिंग-लाइन' का नाम दे रखा था।

लीथकी बन्दरगाह पहुँचनेसे पहले जहाज़के यात्री खुद-ब-खुद तीन वर्गोंमें बँट चुके थे :

१. वे यात्री जिनके लिए समुद्रका होना न होना बराबर था। वे अकसर आरामसे अपने-अपने बिस्तरोंपर सोते रहते और जब ऊब जाते तो 'बार' में बैठकर बीयर पीते, आइसलैण्डका नक़्शा देखते या 'राइटिंग-टेब्ल'-पर चिट्ठियाँ लिखते। वे सुबह-शाम यथासमय (या समयसे पहले ही) 'लंच' और 'डिनर' लेने 'डाइनिंग-रूम' जाते थे और मुसकराते हुए तुष्ट भावसे वापस लौटते थे। हम सब उन्हें ईर्ष्याकी दृष्टिसे देखते थे – इसके अलावा शायद हम कुछ कर भी नहीं सकते थे।

२. डेक-वासी, जो चारों ओर शत्रुओंसे घिरे थे। केबिनमें जाते ही जिनका सिर चकराने लगता था, भोजन-कक्षमें भोजनको देखते ही मितली आने लगती थी और 'बार' में बैठकर मद्य-पदार्थोंके सेवनके प्रति जिनके मनमें गहरी सात्त्विक-निरासक्ति उत्पन्न हो चुकी थी। मृत्यु-शय्यासे अपनेको मुक्त रखनेके लिए जिन्होंने डेकका सहारा पकड़ रखा था। रात-दिन कड़कड़ाती सर्दीमें ठिठुरते अपने-अपने स्लीपिंग-बैग या कम्बलोंमें साँस लेती गठरियों-से वे डेकके चबूतरेपर पड़े रहते थे – 'डिफ़ेन्स लाइन' के सिपाही। मैं इसी मण्डलीके संग आख़िर तक घिसटता रहा।

३. और अन्तमें मृत्यु-शय्यावासी, जो डेकके कष्टोंसे घबराकर अपने गरम बिस्तरोंपर लेटनेका मोह संवरण न कर सके और फिर वहींके हो रहे। तहख़ानेके बिस्तरोंपर उन्हें लेटे देखकर अकसर युद्धमें घायल सैनिकोंका स्मरण हो आता, जो डेककी 'डिफ़ेन्स-लाइन' पर क्षत-विक्षत होनेके कारण जहाज़के डॉक्टर-द्वारा यहाँ भेज दिये गये हों।

तीसरे दिन सुबह बदली और कुहरेके परदेपर ज़मीनकी धुँधली-सी रूपरेखा दृष्टिगोचर हुई और गो हम बहुत पस्त और थके थे, लीथ बन्दर-

गाहका नाम सुनते ही डूबे और टूटे हौसलोंको वापस लौटनेमें ज़्यादा देर नहीं लगी। हमारे जहाज़को यहाँ पाँच-सात घण्टे विश्राम लेना था और इस दौरान कोई भी जहाज़पर रहनेके लिए उत्सुक नहीं था। कुछ घड़ियों-के लिए हम अँधेरे तहख़ाने, डेककी सर्दी और जहाज़-सम्बन्धी हर चीज़से छुटकारा पानेके लिए उतावले-से हो उठे थे।

•

ज़मीन, दुकानें, लोगोंकी परिचित आवाज़ें और पुराने गिरजे – लगा जैसे हम एक लम्बी मुद्दतके बाद सभ्यताकी दुनियामें वापस लौट आये हैं। यद्यपि हम जहाज़से उतरकर ठोस धरतीपर चलने लगे थे, हमें देर तक यही महसूस होता रहा जैसे हम शराबियोंकी मानिन्द किसी डोलती, डग-मगाती चीज़पर चल रहे हों। समुद्र अब भी हमारे संग था।

मनमें पहलेसे यह भ्रम था – हालाँ कि इस भ्रमका कोई विशेष आधार रहा हो, याद नहीं आता – कि बन्दरगाहसे एडिनबोरो जानेमें काफ़ी देर लगेगी, किन्तु जब बसने सिर्फ़ आध घण्टेमें हमें शहरके बीचोबीच लाकर छोड़ दिया तो हमें काफ़ी आश्चर्य हुआ और कुछ-कुछ निराशा भी। सबसे पहले चाय पी, चाय और टोस्ट – और तब पहली बार पूरी वास्तविकता-से एहसास हुआ कि हम इंग्लैण्डमें हैं····इंग्लैण्ड न सही, स्कॉटलैण्डमें, किन्तु हर चीज़ बार-बार लन्दनके बीते दिनोंका स्मरण करा जाती थी। डबल-डेकर लाल बसें, एल और ड्राफ़्टके बीयर-घर, घरोंके दरवाज़ेके सामने रखी दूधकी बोतलें, 'गार्डियन' और 'टाइम्स' 'प्लेयर्स प्लीज़'के विज्ञापन, हैम्बर्गर और हॉट डॉग और पेलीकन-सीरीज़की पुस्तकें, जिन्हें देखे अरसा गुज़र चुका था····

•

और कुहरा!

किन्तु रफ़्ता-रफ़्ता कुहरा उठने लगा था और हम खुलती, फीकी धूप-की हलकी ख़ुमारीमें भीड़के संग-संग घिसटते जा रहे थे। पहली बार पूरी शिद्दतसे महसूस हुआ कि धरती, महज़ ठोस धरतीपर चलनेका भी अपना

अलग सुख है। वह पैरोंके नीचे काँपेगी नहीं, हिले-डुलेगी नहीं, यह ख़याल मनको अजीब सान्त्वना-सी देता है। यदि हमें उस समय कोई यह कहता कि हम ज़िन्दगी-भर धरतीपर ही चलते रहे थे तो हमें कुछ वैसा ही विस्मय होता जैसा मोलियरके 'जण्टिल मैन'को यह जानकर हुआ था कि वह जीवन-भर 'गद्य' में बातचीत करता रहा है।

ऊँचा-नीचा शहर एडिनबोरो, प्रिन्सेज़ स्ट्रीटपर चलते हुए आम स्कॉटिश लोग, पहाडी लोगों-से सहज और ख़ुशमिज़ाज। लगता है अंगरेज़ोंकी अभिजात औपचारिकता इन्हें नहीं छू गयी है। लड़केके बीचोबीच उठाकर हँसते हैं और अचानक याद हो आती है रॉबर्ट बर्न्सकी। प्रिन्सेज़ स्ट्रीटके सामने ही एक छोटे-से बाग़में बर्न्सका स्मारक है और उनकी मूर्तिके सामने स्मरण हो आते हैं मुद्दत पहले पढ़े उनके गीत, उनकी कविताएँ। कितना-कुछ जो हम स्कॉट जातिके बारेमें जानते-बूझते हैं जीने और मरनेकी भूखी हठीली चाह, हर अन्यायके विरुद्ध सुलगता विद्रोह, एक ख़ुरदरी उच्छृंखल-सी अराजकता, ग़रीबी और गर्व, दूर पहाड़ियोंकी पुकार और शहरी पबों-की पियक्कड़ चीख़ें – यह सब, और इसके अलावा बहुत कुछ भी बर्न्सके गीतोंसे निकलकर हमारे संग-संग चलता है, एडिनबोरोकी गलियोंमें।

शायद यह है – और ऐसा मैं सोचता हूँ, कि हम यात्री किसी भी जगह पहली बार नहीं जाते; हम सिर्फ़ लौट-लौट आते हैं उन्हीं स्थानों-को फिरसे देखनेके लिए, जिसे कभी, किसी अजाने क्षणमें हमने अपने घर-के कमरेमें खोज लिया था। क्या यह कभी सम्भव है कि हम ओसलोमें घूमते रहें और अचानक गलीके नुक्कड़पर इब्सनके किसी पात्रसे भेंट न हो जाये। या पहली बार आइफ़ल-टॉवरके सामने फैली पेरिसकी छतोंको देखकर हमें 'अपने' पेरिसकी याद न हो आये जिसे हमने बाल्ज़कके उपन्यासों और रजिस्ताँकी कविताओंसे चुराकर ख़ास अपनी निजी अल्बममें चिपका लिया था।

ये ख़याल बादलोंकी तरह वह आते हैं, स्कॉटमेमोरियलकी पहाड़ीपर,

जिसकी ढलानपर हम लेटे हैं। थोर्गियेरने कुछ फ़ोटो लिये हैं। हलकी-हलकी रूईमें भरी आवाज़ें। सामने फैला है एडिनबोरो और उसके परे मेघाच्छन्न आकाश। फ़ोर्टकी ऊँची बुर्जियोंपर परिन्दोंका झुण्ड उड़ा जाता है। नीचे खड़े हैं बुझी-बुझी मैली धूपमें शहरके मकान, कोयले और गर्दमें सनी नंगी दीवारें, ऊँची-नीची छतें, चिमनियाँ, बरामदोंमें सूखते, हवामें फड़फड़ाते कपड़े। शहर वही है किन्तु पहाड़ीकी चोटीसे देखनेपर बिलकुल बदल गया है, जैसे हम उसकी फ़ोटोका 'नेगेटिव' देख रहे हों।

किन्तु आँखें शहरकी चिमनियोंके परे फिसल जाती हैं – उस ओर जहाँ धरतीका आँचल भीग रहा है नीली स्याहीमें। एक गीला बैंगनी रंग, फीकी धूपमें घुलता, फैलता। उत्तरकी ओर जहाँ एक अदृश्य बिन्दुपर आइसलैण्ड टिका है – नीली चट्टानें जहाँ मोम-सी बनकर धूपमें पिघल रही हैं और बादल हैं, जो थिएटरके परदों-से हवामें टँगे हैं, जिन्हें हमारा जहाज़ एक-एक करके उठाता हुआ आगे बढ़ता जायेगा।

हम धूपमें ऊँघने लगे हैं। हवा चलती है और अजीब कोमल-सी सरसराहट होती है कानोंके पास। घास, तितलियाँ – या महज़ हवा। थोर्गियेर दूरबीनसे बन्दरगाहकी ओर देख रहा है। सोते हुए भी मुझे लहरोंका स्वर सुनाई देता है····जैसे कोई रो रहा है। लेकिन मैं जानता हूँ, यहाँ कोई नहीं है – सिर्फ़ हवामें सरसराती घास है और ऊपर बादल हैं और समुद्र बहुत दूर है····अचानक थोर्गियेर मेरा कन्धा हिलाता है, "देखो····उस तरफ़" वह उँगलीसे इशारा करता है और दूरबीन मेरे हाथमें पकड़ा देता है। एक नन्हा-सा सफ़ेद धब्बा दूरबीनके शीशेपर सिमट आया है – गुलफ़ॉस! हमारा जहाज़। दूरसे वह कितना अरक्षित और असहाय-सा दिखाई देता है।

"अब हमें चलना चाहिए।" थोर्गियेरने जम्हाई लेते हुए कहा। सोनेकी ज़बरदस्त इच्छा होती है, घासपर भूल जानेकी इच्छा होती है कि हमें फिर डेककी 'डिफ़ेन्स-लाइन' में जाना होगा। लेकिन हम नीचे

उतरते जाते हैं, दोपहरकी लम्बी छायाओंके संग····"बीच यात्रामें मुहब्बतसे बचना चाहिए" एक पुरानी चीनी कविताकी पंक्ति याद आती है।

समय कम और सीमित है। शामको चार बजे तक जहाज़पर पहुँच जाना होगा – इतना समय नहीं कि जहाज़पर भोजन करनेके बाद वापस शहर लौटा जा सके। हम चाय पीकर ही सन्तुष्ट हो गये हैं। 'फ़ोर्ट' और 'आर्ट गैलरी' के बीच चुनाव करना ही होगा, दोनोंको देखनेका समय नहीं है। निर्णय करनेमें ज्यादा ऊहापोह नहीं करनी पड़ी। हमारे पाँव एडिनबोरो आर्ट गैलरीके चौड़े दरवाज़ोंकी तरफ़ बढ़ जाते हैं।

कितने कम याद रह पाते हैं चित्र, दीवारपर टँगे फ्रेमोंमें बन्द ख़ून और पसीनेमें लिथड़े स्वप्न। और हम हैं कि हर क़दमपर सदियोंको पार करते जाते हैं। संग रह जाता है केवल एक आभास – रंगों और आकृतियों-से उत्पन्न हुई किन्तु उससे अलग एक स्मृति। शून्यताको काटती एक उड़ान, एक चीख़। बन्द सदियोंकी कुछ चाभियाँ, जिन्हें हम अपने संग ले आते हैं और बादमें खोलते हैं, अकेलेमें, अपने ही अकेलेपनको।

जब कभी एडिनबोरोकी 'आर्ट गैलरी'के बारेमें सोचता हूँ, आँखों-के सामने घूम जाते हैं तितियानके चित्र····लगता है, जैसे मानव-आत्मा अपने सब बन्धनोंको तोड़कर सुनहरे असीम आलोकके ज्वलन्त रंगोंमें फैल गयी है। तितियानके देवदूत असीम दूरियाँ लाँघते हुए एक ऐसे मांसल आनन्दको खींच लाते हैं जिसमें रहस्यमय अथवा अशरीरी कुछ भी नहीं है, धरतीके ऊपर उड़ते हुए भी जो धरतीकी गन्ध और आत्मीयताको नहीं छोड़ पाते और बरबस मुझे बैरन्सनके शब्द याद हो आते हैं "पुनर्जागरण-की सच्ची पवित्र सन्तानें, ज़िन्दगीके भय और ओछेपनसे सर्वथा मुक्त।" गैलरीमें मेरे प्रिय चित्रकारों – रैम्ब्राँ, हालास और स्टीलके भी चित्र हैं, किन्तु इतने कम कि भूख नहीं मिटा पाते। सिर्फ़ एक एलग्रेको। सबसे ज्यादा आश्चर्य मुझे उस समय हुआ जब अचानक गैलरीके एक अलग

छोटे-से कक्षमें सिर्फ़ पूसाँके चित्र दिखाई दिये – 'सेवेन सेक्रामेण्ट्स' का पूरा सेट। निःसन्देह कोई भी गैलरी फ्रेंच कलाकारकी इन अद्वितीय, अमर कृतियोंपर गर्व कर सकती है। दीवारके एक कोनेमें बैलिनीके वे उद्‌गार उद्‌धृत किये गये हैं जो उन्होंने 'सेवन-सेक्रामेण्ट्स' को पहले-पहल देखकर प्रकट किये थे। काश, मैं उन शब्दोंको अपनी नोटबुकमें लिख पाता!

उस रात पहली बार जहाज़के विभिन्न 'वर्ग' आपसमें घुल-मिल गये और हम देर तक 'बार' में बैठकर बीयर पीते रहे····बिना किसी डर या आशंकाके – मानो हम प्रागके ही किसी 'पब' में बैठे हों। समुद्र पिछले दिनोंकी अपेक्षा कुछ अधिक स्थिर था, किन्तु यह स्थिरता ज़्यादा देर तक नहीं टिकेगी, यह हम जानते थे। शायद इसी कारण अनेक यात्री "मृत्यु-शय्या" पर जानेसे पहले मुक्तिके इन चन्द लमहोंको खुले और अकुण्ठित मनसे जी लेना चाहते थे।

लीथ छोड़नेके बाद डेकपर अनेक चेहरे दिखाई देने लगे हैं। इंग्लैण्डसे अनेक नये यात्री जहाज़पर आये हैं, केवल अँगरेज़ ही नहीं, विभिन्न देशोंके लोग। 'बार' की मेज़पर दो स्विस लड़कियोंसे परिचय हुआ। उन्हें केवल यह चिन्ता सता रही थी कि आइसलैण्डमें अच्छा दूध मिलेगा या नहीं। "दूध नहीं मिला, तो ज़्यादा दिन मैं नहीं रह सकूँगी।" "दूधके बारेमें मुझे नहीं मालूम, लेकिन दुर्भाग्यवश बीयरपर पाबन्दी है।" मैंने कहा। बीयरसे उन्हें ख़ास लगाव नहीं था अतः इस समाचारसे उन्हें कोई विशेष दुःख नहीं हुआ। बादमें पता चला उनकी आर्थिक स्थिति ज़्यादा अच्छी नहीं है (क्या हमसे ज़्यादा खराब? मैंने मन-ही-मन सोचा) और वे "हिचहाइकिंग" – द्वारा ही आइसलैण्डका भ्रमण करेंगी। उस रातके बाद हमने उन्हें आइसलैण्ड पहुँचने तक नहीं देखा····टॉमस मानके सेनेटोरियमके मरीज़ोंकी भाँति इस जहाज़पर जाने-पहचाने लोग अचानक ग़ायब

हो जाते हैं और फिर उनके बारेमें बात-चीत करना 'वैड-टेस्ट' माना जाता है ।

लीथकी बन्दरगाहसे पुरातत्त्वशास्त्र और भूगर्भशास्त्रके अनेक अँगरेज़ी छात्र-छात्राएँ जहाज़पर दिखाई देते हैं । उनका अपना एक अलग झुण्ड है और वे हमेशा एक संग घूमते हैं । किन्तु हमारे सबसे आत्मीय और दिल-चस्प मित्र कुछ 'पेसिफ़िस्ट' युवक-युवतियाँ हैं जो आइसलैण्डमें लूले-लँगड़े बच्चोंकी शिक्षाके लिए विशेष स्कूलका निर्माण करने जा रहे हैं । उनमें-से एकने बात-चीत करते हुए मुझे बताया कि यद्यपि वे एक ही संस्थाके सदस्य हैं, उनमें-से हर व्यक्तिको हर समस्यापर अपने स्वाधीन विचार रखनेका अधिकार है । उनमें-से कुछ लोग आणविक-निःशस्त्रीकरण-कॅमिटी (अध्यक्ष बर्ट्रण्ड रसेल) के समर्थक हैं । एक बुद्धिजीवी-से दिखनेवाले युवकने, जिनकी लम्बी ऊबड़-खाबड़ दाढ़ी है और जो हमेशा नीली जीन्स पहने रहते हैं (जिसकी जेबोंमें किताबें भरी रहती हैं····बीटनिक कवि ? मैं सोचता हूँ) मुझे देखते ही तपाकसे हाथ मिलाया है । "मैंने आपको कहीं देखा है – क्या आप एल्डर मास्टन-मार्चमें तो नहीं थे ?"

"नहीं, उन दिनों मैं इंग्लैण्डमें नहीं था – लेकिन शायद आपने मुझे ट्रिफ़ाल्गर-स्कॉयरमें देखा होगा, कभी-कभी मैं वहाँ जाया करता था ।" काफ़ी देर तक हम लन्दनके बारेमें बात-चीत करते रहे । वह भी मेरी ही तरह 'डेक-वासी' थे । अकसर बहसोंके दौरानमें (वह एकतरफ़ा निःशस्त्री-करणके समर्थक थे) मैं चुपचाप अकसर उनके तर्क सुना करता था ।

बीचके इन दिनोंमें देर रात तक डेकपर लम्बी और कभी-कभी उत्तेजनापूर्ण बहसें हुआ करती थीं····लगभग सभी 'डेक-वासी' इनमें भाग लेते थे । एकतरफ़ा निःशस्त्रीकरण (जो सबसे ज़्यादा 'जलता प्रश्न' था) से लेकर आइख़मैनके मुक़दमे तक····न प्रश्नोंकी कमी थी, न समयका अभाव । हमें काफ़ी ऊँचे स्वरमें बोलना पड़ता था ताकि हमारी आवाज़ लहरोंसे ऊपर उठ सके ।

हमारा जहाज़ अटलाण्टिक सागरके बीच आ चुका था। जितना ही अधिक वह उत्तरकी ओर सरकता जाता था, रातें ज़्यादा सफ़ेद होती जाती थीं। एक असीम उजाला। रात और दिनकी सीमारेखा दिनपर दिन धुँधली होती जा रही थी। अकसर हम आधी रात तक अपने-अपने स्लीपिंग बेडमें लिपटे डेकपर लेटे रहा कहते थे। 'बार' की बत्ती बुझ जाती थी, फ़र्स्ट क्लासके केबिन अँधेरेमें डूब जाते थे और चारों ओर एक घना, गहरा सन्नाटा घिर आता था – सिर्फ़ लहरें थीं जो कभी चुप नहीं होती थीं किन्तु अब हम उनकी ओरसे निरासक्त हो चले थे। हम लेटे रहते, और धीरे-धीरे तारोंसे आकाश भरने लगता। जुलाईका नीरव उजला आकाश। आकाश और बहुत पुराना अतीत। हर एककी अलग स्मृतियाँ। और हम डेकपर लेटे हुए एक-दूसरेकी साँस सुनते रहते····नींद नहीं आती थी। तब अचानक कोई धीमे, बहुत धीमे स्वरमें गाने लगता था। कोई जर्मन, फ्रेंच या अँगरेज़ी गीत। कोई लोकप्रिय धुन और धीरे-धीरे दूसरी आवाज़ें पहली आवाज़के संग मिलने लगतीं। या कभी 'इण्टर नेशनल ब्रिगेड' का कोई प्रयाण-गीत जो मुद्दत पहले स्पेनिश-गृह-युद्धके ज़मानेमें गाया जाता था या 'टॉम ब्राउन्स बॉडी लाइज़ ए मोल्डरिंग इन दे ग्रेव' – या फिर अवान्ती पोपोलो जिसे गाते समय समूचा जहाज़ गूँजने लगता या कभी-कभी बहुत पुराना जहाज़ियोंका गीत – जो हमें हमेशा उदास कर देता – 'माई बौनी इज़ ओवर द ओशन, माई बौनी इज़ ओवर द सी – ब्रिंग बैंक, ओ ब्रिंग बैंक माई बौनी टु मी'····[मेरा यार सागरमें है, मेरा यार समुद्रमें है – बुला दो, ओ मेरे यारको बुला दो····]

ऐसी ही एक रात थी जब बर्टसे मेरी मुलाक़ात हुई थी। पहली बार जब मैंने उसे देखा था, तो वह डेकपर राधाकृष्णन्‌की पुस्तक 'हिन्दू व्यू ऑव लाइफ़' पढ़ रही थी। मैंने उसे कभी अपने केबिनमें जाते नहीं देखा था। मुझे लगता है वह रातके समय भी डेकपर ही सोती थी। वह पैसिफ़िस्ट संस्थाकी ओरसे आइसलैण्ड जा रही थी। उसे यह जानकर काफ़ी

आश्चर्य हुआ था कि मैं आगसे आ रहा हूँ – "क्या यह कॅम्युनिस्ट देश नहीं है ?" उसने मुझसे सिगरेट माँगी, दियासलाई जलाते समय मैंने क्षण-भरके लिए उसके गम्भीर चेहरेको देखा था। कुछ देर तक हम चुपचाप सिगरेट पीते रहे।

"कितने अरसेसे आप पैसिफ़िस्ट संस्थामें काम कर रही हैं ?"

"दो साल पहले घर छोड़ा था····तबसे मैं वापस नहीं गयी।"

"आपको यह काम भाता है ?"

एक क्षण तक वह चुप रही।

"मैंने कभी नहीं सोचा····इस प्रश्नके बारेमें। जो भी थोड़ा-बहुत कर सकती हूँ, करती हूँ। फिर भी बहुत कम····उससे बहुत कम जितनी ज़रूरत है, जितना कर सकती हूँ।"

डेक लगभग खाली हो गया है····ऊपर फ़र्स्ट-क्लासके किसी केबिनमें ग्रामोफ़ोनपर कोई रेकॅर्ड बजा रहा है – कभी-कभी लहरोंके बीच इक्के-दुक्के सोते हुए यात्रियोंकी साँस सुनाई दे जाती है।

"काफ़ी लम्बा अरसा है – दो वर्ष"

"ज़्यादा लम्बा नहीं, यदि उम्र लम्बी हो।" उसने हँसते हुए कहा, "लेकिन मुझे कभी अपने निर्णयपर खेद नहीं हुआ। दो साल पहले मैं कुछ भी नहीं समझती थी। महज़ दिन-रात एक फ़िज़ूल-सी बेचैनी महसूस करती थी और अब····" वह क्षण-भर रुकी मानो शब्दोंको टटोल रही हो "और अब कभी-कभी लगता है जैसे मैं अपनी तरफ़से ज़िन्दगीको मानी दे सकी हूँ····"

"अपनी तरफ़से ?"

"हाँ, क्योंकि सूक्ष्म अर्थमें मुझे अपने कामसे ज़्यादा सुकून नहीं मिलता।"

उसकी आवाज़ हलकेसे सिहर गयी।

"पिछले साल मैं अल्जीरिया गयी थी – सिर्फ़ चन्द हफ़्तोंके लिए।

गाँवके गाँव तबाह हो गये हैं वहाँ····हजारों आदमी बिना घर-बारके, सड़कोंपर भूखे और बीमार बच्चे। 'मानव-उन्मीलन' पहली बार मुझे इस शब्दके सही मानी पता चले····उससे पहले मैं सिर्फ़ अख़बारोंमें पढ़ती थी, अल्जीरी शरणार्थियोंके बारेमें। तुमने भी पढ़ा होगा····लेकिन जबतक हम आँखोंसे नहीं देखते, कभी नहीं जानते····इतना भयानक!"

लम्बी देर तक हम चुपचाप लहरोंकी आवाज़ सुनते रहे।

"····और हम जो उनकी सहायताके लिए गये थे, उनकी पीड़ाके सामने बिलकुल निस्सहाय थे····कभी-कभी सोचती हूँ, क्या हम कुछ भी नहीं कर सकते? 'लौह आवरण'के पीछे लोग क्या सोचते हैं····आप तो जानते होंगे?"

"लौह-आवरणके पीछे····" मैं कुछ चौंक-सा जाता हूँ।

"शायद आपको आपत्ति है इस शब्दपर" उसने कुछ खेद-भरे स्वरमें कहा।

"नहीं, इससे कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं पड़ता।"

आकाशकी ओर निहारते हुए अचानक प्रागकी याद हो आती है। फ़र्क़ पड़ता है····मेरे लिए····और नहीं भी····

"अगले वर्ष मेरा भारत जानेका इरादा है····आजकल मैं 'हिन्दू व्यू ऑव लाइफ़' पढ़ रही हूँ····"

"क्या सोचती हैं आप इसके बारेमें।"

"बहुत आकर्षक। आपका दर्शन अद्भुत है। कभी-कभी सोचती हूँ, आजके संकटका हल आपके देशमें मिल सकता है।"

मैं चुप रहा हूँ।

"आप शायद ऐसा नहीं सोचते?"

"मुझे आपकी बात याद आती है····जबतक हम आँखोंसे नहीं देखते, कभी नहीं जान पाते····"

उस रात बात आगे नहीं बढ़ी। वह डेकपर ही सो गयी थी।

'बार'से सीढ़ियाँ नीचे उतरती हैं, डेकपर। मैं सबसे ऊँची सीढ़ीपर बैठा हूँ और उन छायाओंको देख रहा हूँ जो डेकके इर्द-गिर्द मँडरा रही हैं।

समयका बोध बहुत पहले ख़त्म हो चुका है। रात सूरजके संग-संग चलती है और अँधेरेके कण इतने महीन हैं कि मुट्ठीमें आते ही उँगलियों-से फिसल जाते हैं और दिनका उजाला रातको धकेलता नहीं, उसे केवल एक उदास, गुलाबी रंगमें भर देता है और समुद्र है, जो हमेशा संग है, एक विराट् रहस्यकी मानिन्द – तटस्थ, उतना ही जितना समय, जिसके अब कोई मानी नहीं रह गये हैं····

लेकिन घड़ीकी सुइयाँ अब भी घूमती हैं····पुरानी आदतसे मजबूर। अब साढ़े ग्यारह बजे हैं, मैं सबसे ऊँची सीढ़ीपर बैठा हूँ और रोशनी इतनी है कि लिख सकता हूँ, वैसा लिखना नहीं जो कभी हम अँधेरेमें लिखते हैं और पढ़ नहीं पाते····मैं पढ़ता हूँ, जो कुछ देर पहले लिखा था।

लिखा है :

भोजनके बाद हम डेकपर बैठे थे, हर रोज़की तरह। अचानक देखता हूँ, लड़के-लड़कियोंका एक छोटा-सा गुच्छा डेकके जँगलेके पास सरक आया है। वे अत्यन्त उत्तेजित और उत्सुक दिखाई देते हैं। वे अपनी-अपनी दूरबीनसे समुद्रके पश्चिमी-छोरकी ओर देख रहे हैं – उस ओर जहाँ समुद्रका धूमिल छोर आकाशमें खो गया है। मैं 'स्लीपिंग-बेड'से उठ-कर जँगलेके पास चला आया हूँ····मुझे अभीतक उनकी उत्सुकता और उत्तेजनाका कारण नहीं मालूम हो सका है, किन्तु फिर भी उनकी निगाहों-का अनुकरण करती हुई मेरी आँखें उस बिन्दुपर जा रुकी हैं, जहाँ सबकी आँखें टिकी हैं।

समुद्रके छोरपर क्षितिजके संग-संग एक बहुत ही हलकी, मटमैली-सी रेखा दिखाई देती है। भूमि ? अचानक विश्वास नहीं हो पाता। वह एक

बहुत फीका-सा धब्बा है, बहुत ही नरम और छुई-मुई-सा, जो बादल भी हो सकता है। एक बार दिखाई दिया और फिर अचानक आकाश और समुद्रके अन्तहीन फैलावमें खो गया····लेकिन उसका खोना महज़ निगाहों-का भटकाव था। कुछ क्षणों बाद वह फिर उभर आया था, और इस बार वह इतना नरम और धुँधला नहीं था। अबतक जो धूमिल रेखा जान पड़ती थी, वह अब एक ठोस पथरीली सफ़ेदीमें बदल गयी थी····बादलों-से कहीं अधिक ठोस। सहसा हम सबकी साँस जैसे रुक-सी गयी, हम अनायास चुप हो गये थे और हमारी भूखी निगाहें बीचका अन्तराल निगलते हुए स्तम्भित-सी ठिठक गयी थीं, एक सुदूर बिन्दुपर।

और तब सबके हाथ अनायास एक ही दिशामें उठ गये····समुद्रके छोर-पर एक विराट्, सफ़ेद-सी चीज़ धीरे-धीरे ऊपर उभर रही थी····जैसे समुद्रकी अन्तहीन गहराइयोंको चीरती हुई कोई जलपरी उनपर आ रही हो – स्तब्ध, सफ़ेद, निरावृत!

आइसलैण्डका पहला ग्लेशियर

सब अपने-अपने कैमरोंके लिए केबिनोंमें भाग रहे थे। समुद्रके परे, जलपर तिरते धूपके द्वीपों परे, एक धनुषाकार रेखा फैल रही थी – नंगे, निरावृत उरोजोंकी भाँति सफ़ेद और सुडौल, मीर दल स्योकुल – मीर दलका ग्लेशियर। ग्लेशियरकी चौड़ी दरारोंके बीच रूईके गोलों-से बादलों-के गुच्छे सिमट आये थे और ऊपर फैला था – बर्फ़ और बादलोंके ऊपर जूनका आकाश। तब रातके दस बजे होंगे किन्तु ग्लेशियरकी बर्फ़ उस समय भी सूरजकी महीन, पीली धूपमें चिलमिला रही थी····

सोचता हूँ····न जाने उन 'वाईकिंग्स' ने क्या सोचा होगा, हज़ार वर्ष पहले ऐसी ही शाम ग्लेशियरको अचानक आँखोंके सामने पाकर? आतंक और आलोकमें लिपटी हिम-शिलाएँ, लहरोंके हहराते कर्ण-भेदी क्रन्दनके ऊपर एक रहस्यमय, सफ़ेद शान्ति····सोचा होगा, वे समय और 'स्पेस' के अन्तिम छोरपर आ पहुँचे हैं।

कुछ देर बाद एक दूसरा ग्लेशियर दिखाई देता है – एइया फियाल्ल यो कुत्ल, पर्वत-द्वीपोंका ग्लेशियर। ये पर्वत आस-पासके प्रदेशोंमें बिलकुल अकेले हैं, तभी इन्हें पर्वत-द्वीप कहा जाता है। इन पर्वतोंका एक खण्ड क़िलेकी दीवार-सा समुद्रके आर-पार खड़ा है। कुछ निकट आनेपर आश्चर्य होता है····इसी दीवारके बीचो-बीच एक चौड़ा सुराख़ दिखाई देता है····सदियोंसे समुद्रकी लहरोंके अनवरत प्रहारसे चट्टान बीचो-बीच कट गयी है। पहाड़ीका नाम है – दीर होलेव, पर्वतद्वार (दीर = दरवाज़ा, होल = पहाड़ी)।

सबके चेहरोंपर एक अजीब-सी चमक और ताज़गी दौड़ आयी है – एकदम पुनर्जीवन। पिछले दिनोंकी थकान और उनींदापन, अकेलापन और अकुलाहटका कहीं छोटा-सा चिह्न भी दिखाई नहीं देता। केबिन खाली पड़े हैं और 'मृत्यु-शय्याएँ' उजाड़। डेकपर मेला-सा लग गया है····पुराने खोये हुए चेहरे फिरसे दिखाई देते हैं। "आइसलैण्ड अब दूर नहीं है" इस एक वाक्यको अलग-अलग शब्दोंमें दोहराया जाता है – कुछ ऐसे गर्व और गौरवके संग, मानो हम एलिज़ाबेथ-कालके साहसी, समुद्री 'एडवेंचरर' हों जिन्होंने बीहड़ जोखिमोंका सामना करते हुए किसी नये देशको खोज निकाला है!

और अब आधी रात है – हवाका वेग अचानक बहुत कम हो गया है। डूबती रोशनीमें सब कुछ डूब रहा है। यह जहाज़पर आख़िरी रात है, रात भी नहीं, महज़ चन्द घण्टे····हम देर तक 'बार' में बैठे रहे थे – थोर्गियेरने आइसलैण्डी कवि स्टेनरकी कुछ कविताएँ सुनायी थीं – ग्लेशियर-के बारेमें, बर्फ़ और बर्फ़पर टिमकती उत्तरी रोशनियोंके बारेमें। स्टेनर···· कितनी बार प्रागके पबोंमें बैठकर थोर्गियेरसे उनकी कविताएँ सुनी हैं।

किन्तु मैं 'बार' में अधिक देर तक नहीं ठहर सका। कम्बल लपेटकर मैं नीचे सीढ़ियोंपर बैठ गया हूँ। डेक अब वीरान हो गया है। कभी किसी कोनेसे जहाज़का कोई कर्मचारी सीटी बजाता हुआ निकल जाता

है····अँधेरी छाया-सा। ऊपर 'वार' में कोई गितार बजा रहा है····अँधेरेमें भटकती अकेले गितारकी धुन। फ़र्स्ट क्लासके केबिनसे एक अधेड़ व्यक्ति नीचे उतरे हैं, आप-ही-आप कुछ बड़बड़ा रहे हैं। जान पड़ता है, बहुत पी ली है। जान पड़ता है इस रात लगभग सब यात्री बीयरमें डूबे हैं — न जाने फिर कब नसीब हो। सीढ़ियोंके पास आकर उनके लड़खड़ाते पाँव सहसा ठिठक गये। एक क्षण तक वह मुझे घूरते रहे — काफ़ी विस्मय और कौतूहलसे। फिर थिएटराना-अन्दाज़में दूर धूमिल पड़ते ग्लेशियरकी ओर हाथ फैलाकर गुर्राये····

"भाया ?"

"भाया" मैंने सम्मतिमें सिर हिलाया।

"आप क्या ग्रीनलैण्डसे आये हैं ?"

मैं हँसने लगा।

न जाने आज तक कितने लोगोंने मुझे कितनी जातियोंका सदस्य बनानेका गौरव प्रदान किया है — मंगोल, तिब्बती, कोरियाई, जिप्सी····किन्तु कोई मुझे एस्किमो भी समझ लेगा, इसकी कल्पना कभी नहीं की थी।

"हिन्दुस्तानी ?" उन्होंने तनिक सन्दिग्ध दृष्टिसे मेरी ओर देखा। फिर मेरे बहुत निकट आकर धीमे, गोपनीय स्वरमें बोले, "आप जानते हैं, 'विकिंग्स' हज़ारों साल पहले यहाँ आये और आधे तो रास्तेमें ही खत्म हो गये !" कुछ देर तक वह रहस्य-भरी निगाहोंसे मेरी ओर देखते रहे — शायद यह जाननेके लिए कि मैं सचमुच भयभीत हो गया हूँ या नहीं···· फिर जेबसे बोतल निकाली, एक लम्बा घूँट लिया और डगमगाते, लड़खड़ाते क़दमोंसे आगे बढ़ गये।

तारे, लहरें, काँपता हुआ डेक····और मध्य रात्रिका भुतैला आलोक ! दूरसे रोशनियोंका झुरमुट दिखाई देता है। हमारे जहाज़की गति बहुत धीमी पड़ गयी है। थोर्गियेरसे मालूम हुआ कि हम वेस्टमेन आइलैण्ड्सके पाससे गुज़र रहे हैं। बायीं ओर छोटे-छोटे 'लिलिपुटियन' मकानोंकी

बस्ती दिखाई देती है। धरतीके नन्हे-से अंशपर चारों ओर छितरी हुई छतें; पीली, धूमिल रोशनीमें झिलमिलाती दीवारें, अकेली वीरान बस्ती, जिसके चारों ओर समुद्रके अलावा कुछ भी नहीं है····

और लम्बी भीमकाय चट्टानें।

धुंधकी जामुनी चादर – जो इतनी झीनी और पतली है कि उसके पीछे हर चीज़ मायावी-सी जान पड़ती है····लहरोंमें भीगती, डूबती और सरसराती-सी – एक अयथार्थ लोककी धुन्ध।

चट्टानोंके शिखरोंपर घासके कुछ टुकड़े हैं – जिनपर सागर-पक्षियोंका झुण्ड चक्कर काट रहा है – उनकी छाया नंगी चट्टानोंपर मँडराती है और गायब हो जाती है; रातके धुँधले आलोकमें उनके फड़फड़ाते डैने जैसे किसी बहुत पुराने दुःस्वप्नके स्मृति-अंश हों। मध्यरात्रिकी डूबती धूपमें डबडबाये द्वीप····एक ज़बरदस्त चाह। सब कुछ एक स्वप्निल, अशरीरी छायालोकमें लिपटा जान पड़ता है लेकिन देखो तो कुछ भी स्वप्निल नहीं, कुछ भी अशरीरी नहीं – अपने अनुभवपर ही अविश्वास होता है····क्या हम छू सकते हैं (पकड़कर रख सकते हैं ?) उसको जो कभी दिबुसीकी सिम्फनी 'सागर'में छलछला आया था, स्वरोंका फेनिल-आलोक, फड़फड़ाहट (दिल-की, पंखोंकी ?) क्रन्दन, अपने निजत्वकी सीमाओंको तोड़ता एक मदमाता ज्वार।

और एक अजीब-सी चाह, जिसका कोई तुक और अर्थ नहीं।

एक नहीं, उस सीमा तक, जहाँ मृत्यु है।

और फिर कुछ भी नहीं। परिन्दे हैं जो चट्टानोंके ऊपर उड़ते हैं···· लहरोंकी चीत्कारके ऊपर, समूचे समुद्रको चुनौती देते हुए।

सोचता हूँ, ऐसे ही किसी अकेले और उदास, बहुत अकेले और उदास क्षणमें गोर्कीने तूफ़ानी पेत्रलको देखा होगा।

और तब अचानक मैं चौंक जाता हूँ। सूर्योदय। बिलकुल अचानक, बिना किसी आहटके। हवामें, आकाशमें एक बहुत नरम और स्निग्ध

आलोक फैल जाता है····धुन्ध घुल रही है और दूरसे रिक्याविककी बहुत धूमिल-सी रूपरेखा समुद्रके ऊपर उभरती-सी दिखाई देती है।

एक क्षणके लिए विश्वास नहीं होता। सोचता हूँ क्या यह वही सूरज है जो अभी-अभी डूबा था ?

रिक्याविककी आउटर हार्बर····सुबह। हलकी-हलकी बारिश हो रही है, छोटी-छोटी बूँदें डेकपर टप-टप गिरती हैं। समुद्र बिलकुल शान्त है जैसे उसका सब गुस्सा, सब क्षोभ धुल गया है। सब लोग अपने बिस्तर-बक्सोंको डेकपर ले आये हैं। हर कोई अपनी नोटबुकमें एक दूसरेका पता लिख रहा है – न जाने फिर कब मिलना हो।

दूर····सुबहकी धुन्धके ऊपर रिक्याविककी लाल, नीली, हरी छतें दिखाई देती हैं। लगता है यह शहर दुनियाके अन्तिम छोरपर बसा है, जिसके परे कुछ भी नहीं है – समय और शून्यकी सीमापर। थोर्गियेरने उँगलीसे अपना घर दिखाया है····नेशनल थिएटरके पास। सागर-पक्षियोंने हमारा संग फिर पकड़ लिया है····, समुद्रसे कुछ ऊपर जहाजके संग-संग उड़ते हैं, सफ़ेद स्वप्नों-से, उनके पंख फड़फड़ाते हैं, हवा और बारिशमें।

शहरकी छतोंके परे पहाड़ हैं, समुद्रको पेटीसे बाँधे हुए। और उनके बीच कहीं-कहीं बर्फ़के टुकड़े दिखाई दे जाते हैं····बर्फ़, जो अभीतक नहीं पिघली है। पहाड़, समुद्रके इतने पास और समुद्र जहाँ इतनी स्मृतियाँ दबी हैं····'सागा'-ग्रन्थों-सी पुरानी और कालातीत।

मैं डेकपर खड़ा हूँ····अचानक मुझे एक आइसलैण्डी कविताकी पंक्तियाँ याद हो आती हैं।

दूर····समूचा शहर बारिशमें भीग रहा है।

करण किया था। लेकिन सच पूछा जाये, तो शहरका धुएँसे दूरका सम्बन्ध भी नहीं। युरॅपके किसी नगरमें मैंने हवा इतनी साफ़, हलकी और सफ़ेद (यदि हवाको 'सफ़ेद' कहा जा सके) नहीं देखी। शायद इसलिए कि यहाँके निवासी कोयलेका प्रयोग बिलकुल नहीं करते, न खाना पकानेके लिए, न कमरोंको गरम रखनेके लिए। गरम पानीके झरनोंसे समूचे शहर-को बिजली बैठे-बिठाये मिल जाती है। आप अनुमान लगायें ऐसे शहरमें एक भारतवासीके सुखका, जो ज़िन्दगी-भर धुएँमें ही रहकर अन्तमें धुएँमें ही लीन हो जाता है।

नामकी चर्चा हो रही है, तो आइसलैण्डका ही नाम लीजिए। इतना भ्रामक नाम शायद किसी दूसरे देशका नहीं। रिक्याविकके बाहर जाते ही चारों ओर हलकी धूपमें उमगती हरियालीको देखकर कभी-कभी मनमें भ्रम होने लगता है कि कहीं हम ग़लत देशमें तो नहीं आ गये। मेरे आइसलैण्डी मित्रोंका कहना है कि जाड़ेके दिनोंमें भी कुछ उत्तरी भागोंको छोड़कर बर्फ़ ज़्यादा नहीं पड़ती और रिक्याविक तो कभी-कभी बर्फ़से बिलकुल अछूता रह जाता है। सुना है, एक बार अँगरेज़ी कवि (अब अमरीकी) ऑडेनने सुझाव दिया था कि आइसलैण्डका नाम ग्रीनलैण्ड और ग्रीनलैण्डका नाम आइसलैण्ड कर देना चाहिए। ऑडेनके जीवन-दर्शनमें मुझे ज़्यादा भरोसा नहीं, किन्तु उनके इस सुझावसे मैं पूर्णतया सहमत हूँ। कमसे कम इससे आइसलैण्डी 'टूरिस्ट ब्यूरो' को काफ़ी तसल्ली मिलेगी, जो पिछले वर्षोंसे इस बातको लेकर काफ़ी परेशान हैं कि आइसलैण्डका नाम बेवजह सैलानियोंको आतंकित कर देता है।

रिक्याविकका कोई विशेष व्यक्तित्व या स्वभाव है – जैसा हम पेरिस या प्रागके बारेमें कह सकते हैं – इसमें मुझे सन्देह है। आख़िर तक मैं निश्चय नहीं कर सका कि मैं रिक्याविकका कौन-सा खास चेहरा चुनकर वापस लौटूँगा? वह – जिसका हर दिन-रात समुद्रकी लहरोंमें घुलता रहता है, या जहाज़ों, मछली पकड़नेकी नौकाओं और बासी-खट्टी गन्धसे

घिरे बन्दरगाह, या एक पहाड़ी क़स्बा, जो मध्यरात्रिके जामुनी आलोकमें उनींदा-सा पड़ा रहता है, अथवा छोटे-छोटे रंग-बिरंगे मकानोंका लिलिपुटियन नगर, वॉल्ट डिसनीका परी-देश ! रिक्याविक शायद यह सब कुछ है, फिर भी जब मैं आँखें मूँदकर याद करता हूँ, तो इनमें-से कोई भी चीज़-सामने नहीं आती। याद आती सिर्फ़ रिक्याविककी हवा।

सच मानिए, आइसलैण्ड आनेसे पहले मुझे नहीं मालूम था कि हवाका असली जादू क्या होता है।

और मौसम ? हमारे शास्त्रोंमें नारी-चरित्रके बारेमें जो कटूक्तियाँ लिखी गयी हैं, वे सही न भी हों किन्तु उन्हें रिक्याविकके पल-छिन बदलते मौसमपर लागू करनेमें मुझे कोई ख़ास हिचक न होगी। रिक्याविककी जलवायुके बारेमें शायद किसी बहुत खट्टे-मिज़ाज मैलानीने कहा होगा : "यहाँ कोई जलवायु नहीं, मौसम-ही-मौसम है।"

इन अन्तर्विरोधोंके जालसे निकलकर जब हम बाहर आते हैं, तो आँखें बरबस आकर्षित हो जाती हैं सड़कपर चलते लोगोंकी ओर। मैंने रिक्याविकमें शायद ही ऐसा कोई पुरुष देखा, जिसे एकटक देखता न रह गया हूँ। एक ही स्थानपर इतने सुन्दर लोग किसी अन्य नगरमें देखना दुर्लभ है। क़द उनका इतना लम्बा है कि हम भारतीय उनके सामने बिलकुल बौने लगते हैं। आश्चर्य नहीं, आइसलैण्डकी यात्राके दौरान मेरा 'हीन-भाव' इतनी भयंकर स्थितिमें पहुँच गया था ! उनकी तुलनामें शायद स्वीडे ही ठहर सकते हैं या शायद वे भी नहीं। किन्तु आश्चर्य इतना उनके ऊँचे क़दमें नहीं, जितना इसमें होता है कि इतने आकाश-चुम्बी क़दके लोग इतने विनम्र, शालीन और चुप्पे हो सकते हैं। शरमीले इतने कि अपने बारेमें एक भी शब्द कहनेमें उन्हें अजीब-सी उलझन महसूस होती है। अँगरेज़ जातिकी 'अण्डर-स्टेटमेण्ट' की प्रथा विश्व-विख्यात है, किन्तु वहाँ जो शिष्टाचारका महज़ एक 'मैनरिज़्म' प्रतीत होता है आइसलैण्डमें वह सहज, निश्छल प्रकृतिका अंग है। यह शायद

बहुत कम लोगोंको मालूम है कि कोलम्बससे पाँच सौ वर्ष पहले एक आइसलैण्डी वाइकिंग एरिकसॉनने अमरीकाको खोजा था और शायद अपनी शालीनतावश किसीको अपनी खोजके बारेमें उसने कुछ नहीं कहा। यह बात दूसरी है कि इस तथ्यको मरोड़कर ऑस्कर वाइल्डने कहा था – अब समझमें आता है कि एरिकसॉनने अमरीकाको खोजा···और क्यों उसके बारेमें चुप रहा!

बहुत सम्भव है, उनके इस चुप्पेपनको आत्म-केन्द्रीयता या अहम्-भाव समझ लिया जाये, लेकिन मेरा खयाल है, अहम्-भावसे पीड़ित व्यक्ति बहुत कम आत्मीय हो पाता है। और कोई भी विदेशी, जिसे आइसलैण्डियोंके निकट-सम्पर्कमें आनेका अवसर मिला है, इस आत्मीयतासे अछूता नहीं रह पाता। यह सच है, वे बहुत खुले ढंगसे आत्मीयताका प्रदर्शन नहीं करते – कोई भी चीज़ वे खुले, प्रत्यक्ष ढंगसे व्यक्त करते हैं, मुझे सन्देह है। कदाचित् उनके निकट आनेसे पहले उनके चरित्रकी अनेक ग्रन्थियों और गाँठोंका सामना करना पड़े। एक सूखी, तिक्त-सी व्यंग्यात्मकता, अनमनापन, एक खास सनक तक पहुँचा हुआ आत्मनिषेध, और – शायद सबसे दुरूह चीज़ – एक अजीब-सा अवसाद, जो अँगरेज़ी शब्द 'मेलन्कली' के ज़्यादा निकट है, किन्तु सही-सही शायद वह भी नहीं। यह अवसाद भावुकता या आत्मदयासे बिलकुल अछूता है। बहुत पी लेनेके बाद नशेमें धुत् होनेके बावजूद – और आइसलैण्डी दुनियामें सबसे ज़्यादा पीते हैं – मैंने कभी उन्हें अन्य देशोंके पियक्कड़ोंकी तरह भावुक होते नहीं देखा।

सोचता हूँ, पिछले हज़ार वर्षोंसे जो देश आस-पासकी दुनियासे अलग सिर्फ़ समुद्र, ग्लेशियरों और ज्वालामुखी पर्वतोंसे घिरा रहा है, उसकी वीरानी और ख़ामोशीकी छाया यदि उसके निवासियोंके भीतर कहीं छिपी रहे, तो क्या आश्चर्यकी बात होगी?

किन्तु यहाँ मैं सिर्फ़ पुरुषोंकी चर्चा कर रहा हूँ, आइसलैण्डी स्त्रियों-

की बात बिलकुल अलहदा है। क्या आपने कभी सचमुच, सही मानीमें स्वाधीन स्त्रीको देखा है? स्वाधीन – बराबरीके वोट या आर्थिक स्वतन्त्रताके स्तम्भोंके सहारे नहीं बल्कि सहज और अनायास रूपसे। यह अनुभव अपनेमें नितान्त अद्भुत है, एक चमत्कारसे कम नहीं – मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ। उन्हें शायद बहुत सुन्दर न कहा जा सके, लेकिन उनमें एक अजीब उच्छलता है और वे परम्परागत 'नैतिकता' से बिलकुल अदूषित हैं – निपट ग्रन्थिहीन और कुण्ठारहित। पुरुष और स्त्रीके बीच इतना सहज और ग्रन्थिहीन सम्बन्ध शायद दूसरे देशोंमें 'अनैतिकता' की पराकाष्ठा माने जायेंगे, किन्तु आइसलैण्डमें वे बहते पानीकी तरह नैसर्गिक हैं – न कोई कृत्रिम अवरोध है और न मैलापन। नैतिकता जीवनपर थोपी नहीं गयी, वह जीवन-क्रियाका अदृश्य अंग है। हर व्यक्ति – स्त्री और पुरुष – स्वयं अपने लिए जवाबदेह है, और अन्ततोगत्वा यही जवाबदेही नैतिकताको अर्थ देती है। शायद आपको आश्चर्य हो कि आइसलैण्डमें अवैध बच्चोंकी संख्या दुनियामें सबसे अधिक है। किन्तु इससे अधिक आश्चर्य मुझे इसमें होता है कि 'अवैध' की कुण्ठा या अपराध भावना न ऐसे बच्चोंमें, न उनकी माताओंमें दिखाई देती है। जब एक आइसलैण्डी स्त्री माँ बनती है, तो उसके मित्र और पड़ोसी उसे बधाई देने आते हैं – वह विवाहित है या नहीं – यह प्रश्न उन्हें कभी परेशान नहीं करता। अहम् चीज़ यह है कि पड़ोसमें अमुक स्त्री माँ बनी है, अन्य प्रश्न निरे अप्रासंगिक हैं।

ऊपरसे सनकी दिखनेवाले, ये लोग जीवनके कुछ तथ्योंके प्रति कितने 'नॉर्मल' हो सकते हैं, कमसे कम अपनेको 'सहिष्णु' कहनेवाले हम भारतीय उनसे काफ़ी कुछ सीख सकते हैं।

आइसलैण्ड युरॅपमें अकेला देश है, जिसकी अपनी कोई सेना नहीं। वैसे भी एक देशके लिए जिसकी जनसंख्या दिल्लीके एक इलाक़े करोलबाग़की आबादीकी भी चौथाई हो (आइसलैण्डकी जनसंख्या एक लाख सत्तर

हज़ार है), अलगसे एक सेना रखना काफ़ी अर्थहीन है। आइसलैण्ड-निवासियोंके लिए सेना और सैनिक अनुशासन हमेशा परिहासका विषय रहे हैं। कई चीज़ें हैं, जिनकी कल्पना मैं कभी नहीं कर सकता – आइसलैण्डीको फ़ौजी पोशाकमें 'मार्च' करते हुए देखना उन चीज़ोंमें एक है। तोपों और बन्दूकोंसे कभी उन्हें अपने देशकी रक्षा करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी। शायद इसी कारण जब अमरीकी सेनाओंने उनकी 'रक्षा' के लिए अड्डे स्थापित किये, तो किसी आइसलैण्डीको उनकी उपयोगितापर ज्यादा विश्वास नहीं हुआ। इस सन्दर्भमें मुझे लैक्सनेसका एक वाक्य याद आता है: "मुझे अमरीकी हमेशा बहुत अच्छे लगते हैं – यदि उनसे फ़ौजी पोशाकमें अपने देशकी धरतीपर न मिलना पड़े!'

मेरा विचार है, अहिंसाका मूल्य केवल हिंसाकी तुलनामें महत्त्वपूर्ण दीखता है; जहाँ हिंसाका प्रयोग न हुआ हो – जैसा आइसलैण्डके स्वाधीनता-संघर्षमें – वहाँ अहिंसा एक नैतिक मान्यता न होकर सहज विश्वासके संग जुड़ी है। यही कारण है कि यद्यपि आइसलैण्डका स्वतन्त्रता-संघर्ष इतिहासमें सबसे लम्बा 'सत्याग्रह' रहा है, शायद ही कोई आइसलैण्डी इस सम्बन्धमें डींग मारता हुआ दिखाई देगा। मुझे कभी-कभी आश्चर्य होता है कि न टॉल्स्टॉयने और न गान्धीजीने इस तथ्यकी ओर कभी ध्यान दिया, हालाँ कि दोनोंके जीवन-कालमें यह संघर्ष जारी था। उन्नीसवीं सदीमें आइसलैण्डके अनेक विद्वान् और लेखक (जिनमें अकसर बूढ़े किसान और भिक्षु भी शामिल होते थे) डेन्मार्क जाते थे। अस्त्र-शस्त्रोंके स्थानपर उनके हाथमें केवल कुछ काव्य-ग्रथ और नीति-विधानकी पुस्तकें हुआ करती थीं। डेन्मार्कके राज-दरबारमें बड़े धैर्यसे तथ्यों और तर्कोंके सहारे वे आइसलैण्डकी स्वतन्त्रताके पक्षमें भाषण देते थे। कहते हैं, इन लम्बे भाषणोंसे छुटकारा पानेके लिए अन्तमें डेन्मार्कके सम्राट्ने आइसलैण्डको स्वतन्त्रता देनेका निश्चय कर लिया था!

आज भी आइसलैण्डके मछली पकड़नेकी समुद्री सीमाका इंग्लैण्डके

जहाज़ों-द्वारा उल्लंघन किया जाता है[1]। तोपों और बन्दूकोंसे लैस ये अँगरेज़ मछुए आइसलैण्डके निःशस्त्र पहरेदारोंके सम्मुख उनके ही समुद्रमें मछली पकड़ते हैं। आइसलैण्डकी समूची आर्थिक व्यवस्था मछलीके व्यापारपर आधारित है। पिछले कई वर्षोंसे वे अन्तर्राष्ट्रीय विधान-सभाओं-में अपने अधिकारोंके लिए बहस कर रहे हैं। सोचता हूँ, जिस जातिने सिर्फ़ बहस करके अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त की, उसके लिए कुछ भी करना असम्भव नहीं। वैसे अपनेमें यह काफ़ी हास्यास्पद चीज़ जान पड़ती है, कि दुनियाका सबसे विराट् साम्राज्यवादी देश एक ऐसे देशके तटपर आक्रमणकारी सेनाएँ भेजे, जो न केवल दुनियामें सबसे छोटा है, बल्कि जिसकी अपनी कोई सेना नहीं।

मेरे एक आइसलैण्डी मित्रने मुझे बताया कि आइसलैण्डमें पिछले तीस या चालीस वर्षोंसे चोरी या डाकेकी एक भी घटना नहीं हुई और किसी व्यक्तिकी हत्या तो अब प्रागैतिहासिक चीज़ बनकर रह गयी है। मैंने उनसे इसका कारण पूछा। वह कुछ देर तक सोचते रहे। फिर कहा, "कारण बहुत हैं, किन्तु शायद सबसे बड़ा कारण आइसलैण्डकी आबादी है।"

"आबादी ?" मुझे तनिक आश्चर्य हुआ, "चोरी और डाकेका आबादी-से क्या सम्बन्ध ?"

"देखिए....." उन्होंने धैर्यपूर्वक मुझे समझाते हुए कहा, "हमारे देश-की आबादी इतनी कम है कि आपको मुश्किलसे कोई ऐसा आइसलैण्डी मिलेगा, जो किसी दूसरे आइसलैण्डीको प्रत्यक्ष या परोक्षरूपसे न जानता हो। उनके बीच कोई पुराना रिश्ता आसानीसे निकाला जा सकता है। अब ज़रा कल्पना कीजिए, कोई व्यक्ति जॉन बन्दूक लेकर रिक्याविकके

१. आइसलैण्डकी यह न्यायोचित माँग रही है कि उसके तटसे बारह मील-के घेरेमें किसी दूसरी जातिको मछली पकड़नेका अधिकार नहीं होना चाहिए। इंग्लैण्ड आज तक यह माँग अस्वीकार करता आया है।

किसी बैंकमें डाका डालने जाता है। उसकी स्थिति कितनी संकोचपूर्ण हो जायेगी, जब वह बैंकमें चारों ओर बरसोंसे जाने-पहचाने चेहरे देखेगा, जिनमें शायद उसके जिगरी दोस्त और सम्बन्धी भी शामिल हैं! आश्चर्य नहीं यदि ख़ज़ानची महोदय हँसकर कहें, "अरे भाई जॉन, यह बैंकमें बन्दूक़ लेकर क्या कर रहे हो? क्या आज सुबहसे ही चढ़ा ली है?"

मेरे मित्र कुछ देर तक ख़ामोश रहे, फिर धीरेसे बोले, "आपको नहीं मालूम, इससे कभी-कभी काफ़ी दुविधापूर्ण स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। चोर-डाकुओंके लिए ही नहीं, साधारण शान्तिप्रिय नागरिकोंके लिए भी। रिक्याविकको ही लीजिए। यहाँ शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति हो, जिसके व्यक्तिगत-जीवनकी छोटीसे छोटी तफ़सीलसे दूसरा व्यक्ति परिचित न हो। वह शामको कहाँ जाता है; किस लड़कीके प्रेमपाशमें बँधा है; आजकल कौन-सी पुस्तक पढ़ रहा है, जब वह दिनके समय दफ़्तरमें होता है, तो उसकी पत्नी किस रेस्तराँमें जाकर कॉफ़ी पीती है, इत्यादि छोटी-बड़ी बातें सब लोगोंको मालूम रहती हैं। अभी हालमें एक प्रोफ़ेसर महोदयने अख़बारमें खुला पत्र लिखा है, जिसमें उन्होंने खेद प्रकट किया कि अमुक दिन थिएटरमें दस मिनिट देरसे आनेपर जो उनके सम्बन्धमें अफ़वाहें उड़ी थीं, वे ग़लत हैं। फिर उन्होंने विस्तारसे इस चीज़का स्पष्टीकरण किया कि वह उस दिन थिएटरमें विलम्बसे क्यों पहुँचे थे।

किन्तु ज़्यादातर इन व्यक्तिगत-भेदोंको लोग घरेलू राज़की भाँति अपने तक ही सीमित रखते हैं। दिलचस्पी इससे आगे नहीं जाती और एक-दूसरेकी ज़िन्दगीमें शायद ही कोई दखल देता है। दरअसल रिक्याविककी सड़कोंपर चलते हुए अकसर महसूस होता है कि हम किसी एक बड़े परिवारके बीच चले आये हों, जहाँ हर क़दमपर लोग एक-दूसरेसे हाथ मिलाते हैं, कुछ देर बात-चीत करते हैं और फिर आगे बढ़ जाते हैं। एक बार अपने मित्र थोर्गियेरके संग सड़कपर चलते हुए – और वह सड़क ज़्यादा लम्बी नहीं थी – हमें तीन बार रुकना पड़ा। पहली बार 'नेशनल

थिएटर'की एक प्रसिद्ध अभिनेत्रीसे भेंट हुई जो साग-सब्ज़ी ख़रीदकर घर वापस लौट रही थीं। दो क़दम आगे चलकर एक बहुत ही प्रसिद्ध 'अवाँ-गार्द' युवा कविके दर्शन हुए, जो अभी कुछ दिन पहले पागलखानेसे छूटकर आये थे। कुछ और आगे चलकर प्रगतिशील आइसलैण्डी पत्रिका 'संस्कृति और भाषा'के सम्पादक सिग्फूस दादालॉनसे मुलाक़ात हुई, जो शायद आज आइसलैण्डमें सबसे योग्य आलोचक हैं। फ्रान्समें सात वर्ष गुज़ारकर वह अभी पिछले वर्ष आइसलैण्ड लौटे थे। और उसके एकदम बाद मेरी आँखें सड़क पार करते हुए एक वृद्ध पुरुषपर टिक गयीं, जिनकी वेशभूषा इतनी निराली और अद्भुत थी कि देर तक मैं निश्चय नहीं कर सका कि यह सरकसके कोई खिलाड़ी हैं या भूत-प्रेतोंको झाड़ने-फूँकनेवाले कोई ओझा! बादमें थोर्गियेरसे मालूम हुआ कि वह और कोई नहीं, जोहान्स किवरवाल थे – आइसलैण्डके सबसे महान् चित्रकार। दो दिन पहले 'नेशनल-गैलरी' में मुझे उनके चित्र औरोंकी तुलनामें इतने विशिष्ट और असाधारण लगे थे कि याद रखनेके लिए मैंने उनका नाम अपनी नोटबुकमें दर्ज कर लिया था। तब नहीं मालूम था, इतने आकस्मिक ढंगसे सड़कपर उनसे भेंट हो जायेगी!

अब आप ही बताइए, दस मिनिटके अरसेमें एक छोटी-सी सड़कको पार करते हुए जहाँ इतनी महान् आत्माओंसे ख़ुद-ब-ख़ुद (टेलेफ़ोनपर समय लिये बिना) मुलाक़ात हो जाये, उस शहरको आप क्या कहेंगे?

"आइसलैण्डसे? ख़ुदा रहम करे, लोग भी न जाने कैसे-कैसे अजीब स्थानोंमें रहते हैं!" युरॅपमें कुछ आइसलैण्डी छात्रोंको देखकर एक बूढ़े जर्मनने हैरतमें आकर कहा था। आश्चर्य नहीं, सबसे पहले आयरिश भिक्षुओंने इस वीरान और सूने द्वीपमें अपना घर बसाया था। शान्ति और अकेलेपनकी खोजमें भटकते हुए वे यहाँ आये थे और यहीं बस गये थे। शायद उन्होंने ही इस देशके एकाकीपन और अलगावको देखकर उसे 'हरमिट ऑव एटलाण्टिक'की उपाधि दी थी – समूचे युरॅपकी भगदड़से

अलग-थलग एक 'संन्यासी देश।' फिर नॉर्वेजियन आये, आक्रमण करने नहीं, आश्रय लेने – स्वाधीन जीवनकी खोजमें। कुछ अजीब मिलाप हुआ होगा आइसलैण्डकी धरतीपर – भिक्षुओं और स्वातन्त्र्य-प्रिय शरणार्थियोंमें। सोचता हूँ, यह शायद आकस्मिक नहीं कि आज भी आइसलैण्डियोंके रक्तमें भिक्षुत्व और विद्रोह-भावना, दोनों तत्त्व बराबरीसे एक संग दिखाई देते हैं।

आइसलैण्डके इतिहासका ज्ञान मेरा अधिक गहरा नहीं, किन्तु मुझे अकसर इन नॉर्वेजियन शरणार्थियोंपर काफ़ी विस्मय होता है, जो हज़ार वर्ष पहले सामन्तवादी उत्पीड़नसे छुटकारा पानेके लिए अपना घर-बार त्याग कर दुनियाके इस सुदूर कोनेमें आकर बस गये थे। निस्सन्देह वे युरॅपके सबसे पहले प्रजातन्त्रवादी लोग थे····और गो यह सच है कि आज इंग्लैण्डको सब ओरसे 'पार्लमिण्टकी माँ' स्वीकृत कर लिया गया है, सही बात यह है कि पार्लमिण्टकी 'दादी-माँ'के दर्शनके लिए हमें आइसलैण्डकी सदियों पुरानी चट्टानों और घाटियोंके बीच ही रास्ता टटोलना होगा।

'टटोलना' शब्द इसलिए इस्तेमाल कर रहा हूँ, क्योंकि जहाँ युरॅपकी सबसे पहली पार्लमिण्टकी नींव डाली गयी थी, वहाँ आज हमें सिर्फ़ पत्थरों, गुफाओं और घासके मैदानोंके अलावा कुछ भी दिखाई नहीं देता। यह स्थान – नाम है थिंगविलियर ("प्रथम लोकतन्त्र")– रिक्याविकसे ज़्यादा दूर नहीं, 'टूरिस्ट बस'से सिर्फ़ दो घण्टेका रास्ता है। सपट सूनी उजाड़ धरती, जहाँ दूर-दूर तक एक भी बस्ती दिखाई नहीं देती। सिर्फ़ चट्टानोंकी एक लम्बी अन्तहीन शृंखला दूर तक फैलती गयी है, जो पहली नज़रमें किसी बहुत पुराने क़िलेकी कटी-फटी दीवार-सी मालूम देती है। बादमें हमें पता चला कि सदियों पहले यहाँ समतल भूमि थी, फिर अचानक ज्वालाभूमिके विस्फोटनके परिणामस्वरूप बीचकी धरती भीतर धँसती गयी और ये लम्बी चट्टानें पुरानी धरतीके भग्नावशेष हैं। चट्टानों-

के नीचे घासके लम्बे मैदान हैं और आस-पास अनेक बड़े सुडौल पत्थर बिखरे हैं, जिन्हें कभी अस्थायी खेमोंके लिए इस्तेमाल किया जाता होगा। इन पत्थरोंके अलावा कहीं भी कोई खण्डहर नहीं, पुराने गौरवका ज़रा-सा भी चिह्न नहीं।

दूर, घासके मैदानोंके परे ओक्सारा नदी बहती है। एक हलका सिरसता-सा स्वर, और मौन। समूची घाटी एक असीम, कालातीत मौनमें लिपटी जान पड़ती है।

"आइसलैण्डका यह सबसे गौरवपूर्ण तीर्थ-स्थान है····" हमारे 'गाइड'-ने कहा। हर देशके अपने तीर्थ-स्थान, अपने पावन स्मारक होते हैं····मैं सोचता हूँ····किसी-न-किसी रूपमें उनका धर्म, ईश्वर, देवी-देवताओंसे सम्बन्ध होता है····शायद इसीमें उनकी पवित्रता निहित है। और एक यह 'तीर्थ-स्थान' है, थिंगविलियर, जिसकी पवित्रता किसी धर्मसे नहीं जुड़ी – जो महज़ इसलिए पुनीत है कि पहली बार यहाँ मनुष्यने स्वाधीनताको धर्म (सिर्फ़ 'अधिकार' नहीं) माना था। किन्तु आज यहाँ हवामें सरसराती घास और धूपमें सोये पत्थरोंके अलावा कहनेको एक भग्नावशेष भी नहीं, जिसकी परिक्रमा करके हम तीर्थयात्री अपनेको कृतार्थ कर पाते।

लावाकी सूखी, कटी-फटी दरारोंके बीच पारे-सा पानी झिलमिलाता है। ऐसी ही एक बावड़ीका नाम है 'निकुलासारगया', जिसका जल इतना गहरा और पारदर्शी है कि यदि हम उसमें सिक्का या ढेला फेंकें, तो वह एक चमचमाते जादुई मोती-सा बावड़ीकी अतल गहराइयोंमें लुढ़कता जाता है। और ऊपर, पानीके तलपर आस-पास घिरी काली चट्टानोंकी छाया काँपती है। लगता है, हम दबे पाँव किसी 'सुर्रियलिस्ट' 'लैण्डस्केप'में चले आये हों····असलियतमें नहीं, सिर्फ़ 'कैनवास'के भीतर, जहाँ हर रंग दूसरे रंगको पकड़कर बदल जाता है, बदल जाता है और फिर भी वही रहता है, जो पहले था, जहाँ पुराने पत्थरोंसे टकराती हवा है

और लावाकी बेडौल आकृतियाँ निस्पन्द, साँस रोके खड़ी हैं। लगता है, कमसे कम उस एक लमहेके लिए बीते हुए हज़ार वर्ष बीचकी दूरी लाँघकर चुपचाप हमारे पास सरक आये हों।

हाँ, यह सच है। हज़ार वर्ष पहले गरमियोंकी सफ़ेद, उजली रातोंमें यहाँ 'एल्थिंग' (आइसलैण्डी पार्लामेण्ट) की बैठक लगती थी। ओक्सारा नदीके किनारे घासके मैदानोंमें एल्थिंगके सदस्योंके लिए खेमे गाड़े जाते थे। खुली हवामें, आकाश तले, नियम-क़ानूनोंपर बहस होती थी, हर समस्याको न्यायकी कसौटीपर जाँचा-परखा जाता था। 'न्याय' में उनका विश्वास यूनानियोंकी तरह अटूट था—और यूनानियोंकी ही भाँति वे मानव और नियतिके बीच अँधेरी, टेढ़ी-मेढ़ी भूल-भूलैयामें रास्ता खोजते थे—लेकिन यह समानता इससे आगे नहीं जाती, प्राचीन आइसलैण्डियोंको यूनानियोंकी तरह देवी-देवताओंकी कभी ज़रूरत महसूस नहीं हुई, अपनेको वे नियतिके सम्मुख बिलकुल अकेला पाते थे। यह आश्चर्यजनक चीज़ है कि मध्यकालीन युरॅपके 'अँधेरे-युग' में, जब जीवन और कलाका कोई अंश धर्मसे अछूता नहीं था, आइसलैण्डका महान् साहित्य अपनेमें शुद्ध रूपसे 'सेक्यूलर' बना रहा। आइसलैण्डके पौराणिक साग़ा-ग्रन्थोंमें दैवी अथवा अतिमानवीय शक्तियोंका कहीं उल्लेख नहीं मिलता। उनके लिए 'नियति' एक ख़ास मानवीय चीज़ थी और एक 'ट्रेजिक' नियति इसमें निहित नहीं थी कि मनुष्य दैवी शक्तिके हाथोंमें असहाय कठपुतली है, बल्कि इसमें, कि वह स्वाधीन होनेके बावजूद अपनी निजी प्रकृतिके आगे विवश है।

इस दृष्टिसे यह कहना शायद बहुत ग़लत न होगा कि साग़ा-ग्रन्थोंके अज्ञात लेखक शायद दुनियाके सबसे पहले अस्तित्ववादी थे।

जो भी हो, इस दिलचस्प प्रश्नको साहित्य-आलोचकोंके हाथोंमें छोड़कर हमने थिंग विलियरसे विदा ली। काली चट्टानोंकी दुर्ग-दीवार देर तक हमारी 'टूरिस्ट-बस' के संग चलती रही। दीवार ख़त्म होते ही सामने दूर-

दूर तक सिर्फ़ ऊसर धरती, या छोटे-छोटे टीले और मिट्टीके ढूह दिखाई देते हैं – या धूपमें झिलमिलाती घास, जिसका रंग पल-छिन बदलता रहता है। कभी-कभी तो लगता है जैसे हमारी आँखोंसे छिपी कहीं रंग-बिरंगी 'फुट-लाइट्स' लगी हों जो सामने फैले 'मंच' को सतरंगी रोशनियोंमें हर पल नहला-जाती है। हमारे 'गाइड' महोदय (जिनका अँगरेज़ीका 'एक्सेण्ट' अल्मोड़ाके कुमाऊँ क्लर्कोंसे बहुत मिलता-जुलता है) बार-बार हमारी खुशक़िस्मतीकी दाद देते हैं। कहते हैं, पिछले पाँच वर्षोंसे उन्होंने इतना साफ़ और सुन्दर दिन नहीं देखा। यात्रियोंको खुश करनेका शायद यह उनका अपना तरीक़ा हो, किन्तु इससे हमारी खुशी और खुशक़िस्मतीमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। हवा सचमुच धुले काँचकी तरह पारदर्शी है – इतनी साफ़ और हलकी, कि उसे जेबमें ठूँसकर दिल्ली ले जानेको मन करता है! दुःख इतना ही है कि आस-पास कहीं भी एक पेड़, हवामें सरसराता एक भी पत्ता नहीं दिखाई देता – चारों ओर वनहीन नंगी धरतीका फैलाव। जन्मसे मैं पहाड़ी हूँ, वृक्षोंके बिना मुझे हमेशा एक अजीब-सी रिक्तताका आभास होता है। किन्तु जंगल नहीं है, इस अभाव-की पूर्ति मानो आस-पास फैला अत्यन्त मांसल – लगभग मनःस्पर्शी वायु-मण्डल कर देता है। धरती – खुली और अबाध धरतीकी रूपरेखा इतनी कोमल और सुडौल हो सकती है, इसकी कल्पना कभी नहीं की थी। पेड़ोंका होना, यह अपना एक सुख है, लेकिन इस सुखसे मैं परिचित हूँ। उनके न होनेसे जो एक विशाल हलकापन, चाक़ूकी-सी चमकीली धार-सी हवामें तिरते रंग, दूरीको निकटसे देखनेका मायावी चमत्कार – यह एक अलग अनुभूति थी, जिसका परिचय पहले कभी न मिला। और इसी-लिए मैं कहता हूँ कि हर यात्रीको अपनी झोली खोलकर यात्रा करनी चाहिए, जो न मिले उसका दुःख न करके जो मिले उसे समेटकर ही अपने भाग्यकी सराहना करनी चाहिए। क्योंकि यह तो मैं अपने अनुभवसे जानता हूँ कि एक सुखका अभाव कभी दुःखका कारण नहीं बनता, उलटे

एक नये, अपरिचित सुखको जन्म देता है।

उत्तरकी ओर बढ़ते हुए हमें दूर क्षितिज-रेखापर झिलमिलाते लैग्यो-दूल ग्लेशियरकी झलक मिल जाती थी – बर्फ़की स्निग्ध सफ़ेदी, जैसे कोई नरम सफ़ेद बालोंवाली बिल्ली आँधे मुँह लेटी धूप सेंक रही हो। इस बीच हमारे 'गाइड' महोदयकी कवित्व-प्रेरणा पूरी तरहसे जग उठी थी···· और जब सड़कके एक मोड़पर आकर हमें अचानक एक नये 'ग्लेशियर'के दर्शन हुए, तो वह अपने उत्साहको अधिक नहीं रोक सके। "देखिए···· यह हौफ़्सयोदुल ग्लेशियर है····यहाँसे सैकड़ों मील दूर! इतनी दूरीसे इस ग्लेशियरको देख पाना दुर्लभ है, लेकिन आप भाग्यवान् यात्री हैं, सूर्य भगवान् बराबर आपके पक्षमें चल रहे हैं।" और मैं सोचता हूँ, देखने और सुननेमें कितना भारी अन्तर है। कितनी बार सुना था, आइसलैण्ड ग्लेशियरोंका देश है, किन्तु जब कभी नीले आकाश तले सफेद रूई-से पिरा-मिड दिखाई दे जाते हैं, अटल शान्त, समयके घेरेके बाहर, तब केवल एक इच्छा होती है, अपनी उम्र और बुजुर्गियत, अपने अतीत अपने झूठे-सच्चे अनुभवों और अभावोंकी पोटली बसमें ही छोड़कर नीचे उतर जायें, और इस धरतीके ही हो रहें।

इस बीच हमें कहीं भी, कोई बस्ती, कोई गाँव, कोई घर दिखाई नहीं दिया। लगता था जैसे हम एक अन्तहीन, विशाल 'वेस्टलैण्ड'में आ पहुँचे हैं, जहाँ किसी भी जीवित प्राणीके दर्शन दुर्लभ हैं। धरतीका सूना विस्तार और महज़ खाली हवा। दूर छोटे-छोटे पर्वतोंकी रूपरेखा दिखाई दे जाती थी। कहीं-कहीं झाड़-झंखाड़ और उनके बीच गरम पानीके सोतोंसे उठता हुआ धुआँ, उबलते पानीके गेयसिर। और तब मुझे पहली बार पता चला कि अन्तर्राष्ट्रीय शब्द 'गेयसिर'की उत्पत्ति आइसलैण्डके हाउकादालुर गेयसिरसे हुई है, जिसका जल फूटनेपर कमसे कम ३८० फ़ीट ऊँचा जाता है।

किन्तु चाहे मौसमकी दृष्टिसे हम 'भाग्यवान्' रहे हों, गेयसिरने हमपर

कोई कृपा नहीं की। वह बहुत ही 'मूडी' स्वभावके गेयसिर जान पड़ते थे – कब चारों ओरसे उदासीन होकर सोते रहेंगे और कब अचानक चौंककर दीवालीके 'अनार'की तरह फूट पड़ेंगे, कोई नहीं जानता। हमारे 'गाइड' महोदय लगभग एक घण्टे तक उबलते जलमें साबुन घोलते रहे (कहते हैं, साबुनसे गेयसिरको उत्तेजना मिलती है) लेकिन वह मोहमायासे मुक्त निरासक्त योगीकी तरह अपनी जगहसे टससे मस नहीं हुए। हमारी निराशाको कम करनेके लिए 'गाइड' महोदयने हमें सान्त्वना देते हुए कहा कि डेन्मार्कके बादशाह तीन दिनों तक खेमे गाड़कर प्रतीक्षा करते रहते थे किन्तु गेयसिर भगवान् उन्हें दर्शन नहीं देते थे। सबसे खेदपूर्ण घटना तो अभी दो-तीन वर्ष पहले हुई जब सोवियत संघकी संस्कृति-मन्त्री तीन घण्टोंकी विफल प्रतीक्षाके बाद लौट गयीं, और उनके लौटनेके पाँच मिनिट बाद ही गेयसिरकी आकाशचुम्बी धार फूट पड़ी !

ऐसे हैं ये गेयसिर महाशय, बादशाह सलामत हों या सोवियत – किसीके बीच भेद नहीं करते।

इस दौरान धीरे-धीरे आकाशके अलग-अलग कोनोंमें बादलोंके धब्बे सिमट आये थे। कभी-कभी हलकी-सी बूँदाबाँदी हो जाती थी। सर्दी अचानक बढ़ गयी थी और जब हम आइसलैण्डके सबसे सुन्दर झरने 'गुलफ़ॉस' (स्वर्ण-प्रपात) को देखने बससे बाहर निकले, तो हम सबकी देह रह-रहकर सिहर जाती थी।

सामने दिखाई दी हवीता नदी। पत्थरों और चट्टानोंके बीच लुढ़कते हुए पानीके कुण्डल। नंगी शिलाओंपर भँवर बनाता फ़ेनिल झाग····और ऊँची ढलानसे गिरती धारकी बूँदें। एक खास कोणसे देखने-पर हवामें छितरती ये बूँदें इन्द्र-धनुषीय रंगोंका जाल बुनती-सी दिखाई देती हैं। आज गुलफ़ॉसको याद करता हूँ, तो सिर्फ़ उसकी आवाज़ बार-बार लौट आती है। गिरते पानीकी आवाज़ और शार्क मछली। चौंकिए नहीं, गुलफ़ॉसके झरनेमें शार्क नहीं हैं ! किन्तु यदि आप चाहें, तो वहाँके

डाकबँगलेके 'वेटर' एक अत्यन्त स्वादिष्ट 'डेलीकेसी'के रूपमें आपको शार्क-मछलीका मांस दे सकते हैं। आठ-नौ महीने तक शार्कके मांसको धूपमें सुखाया जाता है, या कभी-कभी उसे गोबरके भीतर रख दिया जाता है, उस समय तक····जबतक वह सड़ने न लगे। फिर उसे कड़वी शराबके संग मिलाकर खाया जाता है!

बीहड़ रास्ता – कहीं-कहीं बहुत तंग और छोटे पुलोंपर हिचकोले खाते हुए हमारी लॉरीको घिसटना पड़ता था। कई बार ऐसा जान पड़ा कि मोटर रोडको बीचमें ही नाले-परनालोंने ग्रस लिया है – बीच नालेकी धारमें आकर बमके पहिये अड़ जाते थे। जूते-मोज़ोंको उतार और पतलूनोंके पाँचे चढ़ाकर हम पानीके भीतर घुस पड़ते थे। बसको आगे धकेलते हुए जान पड़ता था जैसे पानीकी बर्फ़ीली धार काँचके टुकड़ों-सी हमारे नंगे पैरोंको छील रही है। खाँसती, खँखारती लॉरी आगे बढ़ती थी और हम हाथोंसे नीले, सिकुड़े पैरोंको सेंकते हुए खिड़कीके बाहर देखने लगते थे – बाहर जहाँ दिनकी मन्द पड़ती हुई रोशनी अँधेरेको महज़ छू-भर लेती थी, लेकिन वास्तवमें अँधेरा कहीं नहीं था। सिर्फ़ रोशनीकी ही नरम, पीली-सी छाया थी जो दिनके आलोकपर पतले छिलके-सी उतर आयी थी।

हम धीरे-धीरे एक ऐसे भुतैले प्रदेशमें आ पहुँचे थे जो मध्यकालीन कैथोलिक युरेपमें 'अभिशप्त आत्माओंका डेरा' के नामसे प्रसिद्ध था। कभी-कभी हम नीचे उतरकर ज्वालामुखी पर्वतोंके क्रेटरोंकी परिक्रमा करने निकल पड़ते थे। बुझे हुए क्रेटर, जो लम्बी, डूँगी और आगमें झुलसी हुई कढ़ाईसे दिखाई देते थे। उनके इर्द-गिर्द लाल बजरीकी ईंटों-सा लावा बिखरा था। यदि दुनियाके एक तिहाई लावापर 'मेड इन आइसलैण्ड' का लेब्ल चिपका दिया जाये, तो वह महज़ अति-शयोक्ति नहीं मानी जायेगी। इन पंक्तियोंको लिखते समय भी मेरी मेज़पर लावाके ये लाल टुकड़े रखे हैं, जो आइसलैण्डके स्मारक रूपमें मैं

अपने संग ले आया था।

किन्तु सबसे रोमांचकारी दृश्य वह था, जब मोटर रोडके अगले मोड़पर हमें अचानक दूर, भूरे सुनसान मैदानोंके परे एक विशाल हिमाच्छादित दैत्य-मस्तकके दर्शन हुए। बर्फ़से ढकी पहाड़ीका इतना बीभत्स और इतना मायावी रूप एक ही समयमें एक संग बहुत कम देखनेको मिलता है। जान पड़ता था जैसे धरतीके बीचो-बीच पिरामिडके नीचे दबी 'ममी' का ढक्कन ऊपर उठ आया है, बर्फ़के सफ़ेद बालोंसे लिपटा हुआ, जो किसी भी क्षण बच्चोंके लट्टू-सा घूमता हुआ हवामें गायब हो जायेगा। जब मैं इस तरहकी विकृत और बेतुकी उपमाओंमें डूबा था, तभी मुझे अपने 'गाइड' महोदयके शब्द सुनाई दिये, "देखिए, अपने सिरसे बादलोंकी टोपी उतारकर हैकला आपका स्वागत करनेके लिए प्रस्तुत दिखाई देता है।"

हैकला····जिसके इर्द-गिर्द दुनिया-भरकी अभिशप्त आत्माएँ रासलीला करती हैं!

क्या कोई अनुमान कर पायेगा कि चारों ओर बर्फ़से ढँके इस गोल पहाड़के नीचे सदियोंसे ज्वालामुखी धधकता रहा है, बर्फ़के नीचे अग्निकी लपलपाती ज्वाला। अन्तिम बार हैकलाका विस्फोटन सन् १९४७ में हुआ था और पूरे एक वर्ष तक वह लावा उगलता रहा था। कहते हैं, विस्फोटनके समय उसके भीतरसे राख और गैस एक लाख फ़ीट ऊँची मीनारकी तरह आकाश चीरती हुई ऊपर उड़ी थी। किन्तु उस शाम, जब हम उसके पाससे गुज़रे, कोई भी कहने लायक़ अनहोनी दुर्घटना नहीं हुई। सिमट आया था सिर्फ़ एक निर्भेद्य मौन। और उसके एकाकी, हिमाच्छादित शिखरपर उड़ रहे थे रूईके गालों-से छुई-मुई बादल। हम जीती-जागती अभिशप्त सैलानी आत्माओंके प्रति वह निपट उदासीन दिखाई देता था।

हमें पता नहीं चला, कब अचानक बारिशने हमें पकड़ लिया। हम जो दिन-भर सूर्यके संग-संग यात्रा करते रहे थे, एकाएक घटाटोप आकाश

तले घिर-से गये। और तब हमारे 'गाइड' महोदयने 'सनसनीखेज़' स्वरमें घोषणा की – "ज़रा खिड़कीके बाहर होके देखिए····मेरा ख़याल है, शायद बर्फ़ गिर रही है!" जूनके महीनेमें बर्फ़! दिन-भरकी इस विचित्र यात्राके बाद हमारी तर्क-शक्ति इतनी शिथिल और मृतप्राय हो चुकी थी, कि हम किसी भी चमत्कारपर विश्वास करनेके लिए तत्पर थे। जब बर्फ़के नीचे ज्वालामुखी वास कर सकता है, तो जूनके महीनेमें बर्फ़ गिरे, इसमें आश्चर्य क्या?

किन्तु इससे पेश्तर कि हम खिड़कीके बाहर सिर निकालकर किसी निश्चयपर पहुँच पाते, धूप दोबारा निकल आयी थी। हमारी आँखें अनायास एक सूनी बस्तीके छोरपर उठ आयीं। एक पक्की इमारत खड़ी थी, सीधी-सादी – लेकिन सब घरोंसे अलग। पास ही गरम पानीके चश्मे-से सफ़ेद धुआँ उठ रहा था। इर्द-गिर्द ऊबड़-खाबड़ धरती थी और उसके परे हलकी धूपमें झिलमिलाती बारिशमें धुली पहाड़ियाँ। इन सबके बीच वह ऊँची, आधुनिक इमारत बीसवीं सदीकी संस्कृतिका अन्तिम अवशेष-सा जान पड़ती थी।

मालूम हुआ – विश्वविख्यात आइसलैण्डी लेखक हालदॉर लैक्सनेस यहीं रहते हैं।

सोचता हूँ, बरसों पहले पढ़े 'इण्डिपेण्डेण्ट पीपुल' के पन्नोंके बारेमें, जिन्होंने पहली बार मेरा ध्यान इस अजाने देशकी ओर आकर्षित किया था।

बस आगे बढ़ गयी। बादलोंकी ओटसे एक बहुत ही कोमल आलोक निचुड़ता हुआ बह रहा था। खुली हवामें बारिशकी बूँदें अब भी टपक रही थीं····शामकी धूपमें चमचमाती सूइयों-सी, सुनहरी गीली धरतीको छेदती हुई····और आकाश, जूनका आकाश जैसे इन सबके प्रति तटस्थ था····धूप और बारिश और हवा सबके प्रति उदासीन, न किसीसे घिरा हुआ, न किसीको घेरता हुआ, सम्पूर्ण रूपसे निर्वैयक्तिक और मुक्त – जो

सिर्फ़ आइसलैण्डका ही आकाश हो सकता है।

आइसलैण्डके अतीतका कोई साक्षी नहीं – न ऐतिहासिक स्मारक, न पुराने गिरजे, एक खण्डहर भी नहीं। यदि एक क्षणके लिए हम उसकी पाण्डुलिपियोंको छोड़ दें, तो समूचा अतीत हाथोंसे छूट जायेगा। बावजूद इसके कि रिक्याविककी नींव सैकड़ों वर्ष पुरानी है, आज वह युरॅपका सबसे नया और कम उम्रवाला नगर दिखाई देता है। निस्सन्देह शहरके हर कोने और चौराहेपर बहुत ही आधुनिक और आकर्षक मूर्तियाँ दिखाई दे जाती हैं, किन्तु उनका अतीतसे उतना ही सम्बन्ध है, जितना आधुनिक आइसलैण्डी कविताका 'एद्दा' से। रिक्याविकमें अनेक नये गिरजोंका निर्माण हो रहा है, और यह आपके लिए एक विरोधाभास बना रहेगा कि दुनियाके सबसे गैरधार्मिक लोग गिरजोंका निर्माण करनेमें सबसे गहरी दिलचस्पी लेते हैं।

जान पड़ता है, पुराने आइसलैण्डियोंको वास्तुकलामें ज्यादा दिलचस्पी नहीं थी, किन्तु इसके बावजूद रिक्याविकके राष्ट्रीय संग्रहालयमें कुछ ऐसी मूर्तियाँ और कलात्मक अवशेष मिल जाते हैं, जिनसे पुराने आइसलैण्डी गिरजोंके गौरवका अनुमान लगाया जा सकता है। यह अपनेमें अत्यन्त दिलचस्प प्रश्न है कि ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दियोंमें युरॅपकी रोमन्स्क और गोथिक कलाने उत्तरी देशोंको किस सीमा तक प्रभावित किया; संग्रहालयमें सुरक्षित सेण्ट पीटरकी काष्ठ-मूर्तिकी अनुपम भव्यता देखकर अचानक मेरा ध्यान इस समस्याकी ओर आकृष्ट हुआ था। वैसे मेरे विचारमें उत्तरी देशोंके निवासियोंकी सुघड़ता और कलात्मक-बोधका परिचय उनके जहाज़ों, विशेषकर वाइकिंग-जहाज़ोंपर, मण्डित ड्रेगन-मस्तकोंको देखकर मिलता है, उतना शायद किसी और चीज़से नहीं। ये वाइकिंग-जहाज़ ओस्लोके विशेष म्यूज़ियममें सुरक्षित हैं। रिक्याविकके संग्रहालयमें एक स्मरणीय चीज़ गिरजेका (१६०६ ई०) का 'ऑल्टर-ट्टार' है, जो ह्वेल-मछलीकी हड्डीको काट-तराशकर निर्मित किया गया है। दरवाज़ेके

ऊपर-नीचे दो लम्बे 'पेनल' हैं, जिनपर बाइबिल-कथाएँ चित्रित हैं और चार अलग-अलग कलात्मक स्तम्भ इन दोनों 'पेनल'को एक-दूसरेसे जोड़ते हैं।

सीमित साधनों और भौगोलिक अलगावके बावजूद आइसलैण्डियोंका मूर्ति-कलाके प्रति जो लगाव रहा है वह विस्मयकारी है। रिक्याविकमें उन्नीसवीं शताब्दीके मूर्तिकार आइनर योहोन्सोनकी कृतियोंका एक अलग संग्रहालय है और यद्यपि उनकी अत्यधिक रोमैण्टिक शैली मुझे अधिक रुचिकर नहीं जान पड़ी, उनकी मूर्तियोंमें उत्तरी देशोंकी पौराणिक-गाथाओं-का अद्भुत चित्रण मिलता है। आज भी 'प्लास्टिक'-कलाओंके क्षेत्रमें मूर्ति-कला जिस हद तक आइसलैण्डका प्रतिनिधित्व करती है, उतनी शायद चित्रकला नहीं (वैसे यह मेरी निजी राय है, मेरे आइसलैण्डी मित्र शायद इससे सहमत नहीं होंगे)। आधुनिक आइसलैण्डी चित्रकार इतने 'आधु-निक' हैं कि उन्हें खोजनेके लिए आइसलैण्ड जाना आवश्यक नहीं (सिर्फ़ कियरवालको छोड़कर, जिन्हें आइसलैण्डके बाहर खोजना असम्भव है) किन्तु आइसलैण्डी मूर्तिकलाका अपना विशिष्ट व्यक्तित्व है — आइसलैण्डी साहित्यकी मानिन्द — और उसकी उपेक्षा करना असम्भव है।

इन पंक्तियोंको लिखते समय मुझे बरबस आधुनिक आइसलैण्डी मूर्तिकार आस्मुन्दुर स्वेन सॉनका ध्यान हो आता है। मुझे उनके घरमें ही उनसे मिलनेका अवसर मिला था। उनसे भेंट करनेके पूर्व रिक्या-विकके चौराहों और वाटिकाओंमें उनकी मूर्तियोंको विस्मय और कौतूहलसे देख चुका था। शायद मेरी उत्सुकताको भाँपकर ही मेरे मित्र थोर्गियेरने मुझे उनसे मिलानेकी ज़िम्मेदारी ले ली थी।

दूरसे ही उनका घर पहचान लिया जा सकता है। समुद्रके किनारे-पर एक साफ़-सुथरे ढंगकी वास्तुकलाका नमूना। बादमें पता चला कि उन्होंने स्वयं अपने हाथोंसे अपने इस घरको बनाया था। सामने छोटी-सी वाटिका थी, जहाँ अलग-अलग कोनोंमें उनकी मूर्तियाँ खड़ी थीं। भीतर घुसते ही आभास होता था मानो हम किसी 'ओपन-एयर' प्रदर्शनीमें चले

आये हों।

घरसे सटा उनका स्टूडियो है – यदि एक लम्बे बैरक-नुमा तहख़ानेको स्टूडियोका नाम दिया जा सके। जब हम उनके पास पहुँचे, तो वह छेनी और हथौड़ा लिये एक अधूरी मूर्तिपर झुके थे। एक क्षणके लिए मेरी आँखें उनके हाथोंपर टिक गयीं – चौड़े और खुरदुरे, एक किसानके हाथों-की तरह पुराने और अनुभवपूर्ण। हमारी आहट सुनकर उन्होंने सिर उठाया – एक बहुत ही भोला और कौतूहलपूर्ण चेहरा हमारी ओर देखता हुआ मुसकरा रहा था, मानो हम भी (मेरे संग थोर्गियेर भी थे) आस-पास बिखरी उनकी मूर्तियोंके ही हिस्से हों!

उनकी पत्नीने हमारा उनसे परिचय करवाया। पहले वह कुछ झिझके, मानो समझ न पा रहे हों, हमसे क्या बात-चीत की जाये। फिर सहसा जैसे उन्हें हमारे आनेका उद्देश्य समझमें आ गया हो। उन्होंने अपने स्टूडियो-में रखी मूर्तियोंपर एक नज़र डाली, कुछ वैसे ही जैसे एक सफल निर्देशक अपने 'ऑरकेस्ट्रा'को देखता हो, फिर चुपचाप हमें हालमें किया हुआ काम दिखाने लगे।

इस जगह विस्तारसे उनके कामकी चर्चा करना असम्भव है। किन्तु इस क्षेत्रमें उनके कुछ प्रयोग मुझे अत्यन्त दिलचस्प और असाधारण जान पड़े। पश्चिमी युरॅपके आधुनिक मूर्तिकारोंकी 'एब्स्ट्रेक्ट' कलासे उनकी कृतियोंका – 'एब्स्ट्रेक्ट' होनेके बावजूद – कहीं मेल नहीं बैठता था। समूचा स्टूडियो जैसे अनेक जीवन्त बिम्बोंका अपनेमें एक सम्पूर्ण और अर्थपूर्ण जगत् था। उनकी कृतियोंमें मुझे अजीब-सी 'आवेगपूर्ण शान्ति'की उप-लब्धि हुई। एक कलात्मक अनुभूतिकी सम्पूर्णता नहीं – जो हम अधिकतर पश्चिमके आधुनिक कलाकारोंमें पाते हैं बल्कि सम्पूर्णताकी अनुभूतिका कलात्मक आग्रह, जो अमूर्त और आकृति, दोनोंमें केवल सही विधानको खोजता है। "मेरी अपनी इमेज" उन्होंने बादमें हमसे कहा, "एक बहुत ही 'एब्स्ट्रेक्ट' अनुभूतिसे आरम्भ हो सकती है, किन्तु उसकी परिणति एक

रूपायित आकृतिमें नहीं होगी, यह मैं कैसे कह सकता हूँ। उसी तरह जैसे कभी-कभी एक बहुत जानी-पहचानी वस्तुकी अभिव्यक्ति एक बहुत ही अमुक विधानमें ही हो सकेगी, इसकी पूर्व धारणा शुरूमें नहीं हो पाती।"

अपनी एक 'एब्स्ट्रेक्ट' मूर्ति 'विद्युत्'के सामने खड़े होकर उन्होंने हमसे कहा, "कुछ वर्ष पहले जब हमारे इलाक़ेमें बिजली पहले-पहल आयी, तो खुशीकी झोंकमें मैंने इसे बनाना शुरू किया था।"

शब्द बहुत साधारण हैं किन्तु स्वेनसॉनकी समूची कलाका रहस्य शायद इनमें छिपा है।

बादमें काफ़ी देर तक आधुनिक कलाके सम्बन्धमें चर्चा होती रही। उन्होंने बताया कि सन् '३० के आस-पास वह कला-अध्ययनके लिए फ्रान्स गये थे। उनकी मूर्तियोंकी प्रदर्शनियाँ स्कैण्डेनेवियाके लगभग सब देशोंमें हो चुकी हैं। आज-कल आइसलैण्डी सरकार उनके सम्बन्धमें एक फ़िल्म बनानेकी योजनापर विचार कर रही है, जिसमें उनके कला-विकासके विभिन्न चरणोंको चित्रित किया जायेगा।

अपनी कलाके पीछे उनका कोई विशेष सिद्धान्त रहा हो, याद नहीं पड़ता। उम्र शायद साठसे ऊपर थी, किन्तु नये प्रयोगोंकी दृष्टिसे वह आइसलैण्डके सबसे युवा कलाकार जान पड़ते थे। आधुनिकता उनके लिए इस उम्रमें भी वैसे ही सहज और अनिवार्य थी, जैसे हवामें साँस लेना। "लोग मेरे स्टूडियोमें आते हैं। अकसर मेरी तथाकथित अमूर्त मूर्तियोंको देखकर उन्हें परेशानी महसूस होती है। मैं उन्हें क्या कहूँ? चुप रहना ही बेहतर है, वे मुझे अत्याधुनिक समझते हैं और मैं हूँ, जो आज तक 'आधुनिकता'का अर्थ नहीं समझ पाया। मैं अपनेको सिर्फ़ "तकनीकी-युगका कलाकार मानता हूँ।" वह कुछ देर तक अपने खयालोंमें खोये रहे, फिर अचानक हँसकर बोले, "यही लोग जो मेरे स्टूडियोमें अमूर्त मूर्तियोंको देखकर नाराज़ होते हैं, जानेसे पहले मुझसे पूछते हैं, क्या मैं

टेलेफ़ोन करके उनके लिए टैक्सी मँगवा सकता हूँ ? मुझे काफ़ी दिक़्क़त महसूस होती है – लेकिन उतनी नहीं, जितनी उन्हें मेरी कला समझनेमें। आख़िर दोनों ही तो – टेलेफ़ोन और मेरी मूर्तियाँ तकनीकी-युगकी उपज हैं। क्यों उन्हें एककी ज़रूरत महसूस होती है और दूसरेकी नहीं ?"

उनसे बिदा लेनेके बाद भी देर तक मुझे उनका अन्तिम वाक्य याद आता रहा। उन्होंने आधुनिक कलाके सौन्दर्य या सन्तुलन या सिद्धान्तोंकी मीमांसा नहीं की, सिर्फ़ उसकी 'ज़रूरत' पर ज़ोर दिया था। और इन अज्ञात आइसलैण्डी कलाकारसे मिलनेके बाद मुझे महसूस हुआ कि आधुनिकता – यदि वह सिर्फ़ एक खाली शब्द नहीं, आस-पासकी हर चीज़को ऐसे अन्दाज़से देखने और परखनेकी क्रिया है, जो हमसे पहले किसी भी पीढ़ीके पास नहीं था – सिर्फ़ 'देखना-परखना' ही काफ़ी नहीं, उसके लिए एक बिलकुल नये सिरेसे जीना ज़रूरी है – एक ऐसे स्तरपर, जहाँ हर निगाह एक खोज है और हर खोज अपनेमें एक छोटी-सी 'साहसिकता'।

पिकासोका एक वाक्य याद आता है – जो कलाकार आईनेमें देखे बिना अपनी स्वयंकी तसवीर नहीं बना सकता, वह भला आईनेमें देखकर ही अपनी स्वयंकी तसवीर बना सकेगा, इसकी क्या गारण्टी है ? 'आधुनिकता' पर यही चीज़ बहुत ठीक उतरती है – जो व्यक्ति कलाके आईनेसे बाहर आधुनिकताको नहीं पहचान पाता, वह उसके भीतर उसे परख सकेगा, मुझे इसमें सन्देह है।

शायद यह कोई बहुत नयी बात नहीं, किन्तु आइसलैण्डके इस वृद्ध मूर्तिकारसे मिलनेसे पूर्व मैंने इस तथ्यको कभी इतनी ईमानदारीसे महसूस नहीं किया था।

कोपनहेगनकी एक 'पब' में मैंने आइसलैण्डी शराबको एक ऐसी विचित्र बोतलमें बिकते देखा था, जिसकी शकल एक किताबकी तरह थी – उस किताबनुमा बोतलपर चिपके लेब्लपर लिखा था – स्पिरिट ऑव

आइसलैण्ड !

आइसलैण्डकी आत्माका बेहतर प्रतीक शायद और कहीं ढूँढ़ पाना असम्भव है।

और यह इसलिए नहीं कि इस देशमें शराबके बाद सबसे ज़्यादा माँग पुस्तकोंकी है, न इसलिए ही कि जनसंख्याके अनुपातमें (रिक्यावीक-की आबादी सिर्फ़ ७५,००० है) युरॅपके अन्य देशोंकी अपेक्षा यहाँ सबसे ज़्यादा पत्रिकाएँ और पुस्तकें छपती हैं। इन आँकड़ोंपर हम यदि एक क्षणके लिए ध्यान न भी दें, तो भी एक साधारण आइसलैण्डीके मनमें 'लिखे शब्द'के प्रति जो सहज श्रद्धाका भाव है, वह एक विदेशीके लिए हमेशा विस्मयकी चीज़ रहा है। साहित्यके प्रति यह लगाव केवल बुद्धि-जीवियों तक ही सीमित नहीं है, एक इन्जीनियरसे लेकर मछली पकड़ने-वाले बूढ़े तक अपने देशके हर लेखक और कविके भूत और भविष्यमें कुछ इस तरह दिलचस्पी लेते हैं, जितना हमारे देशके युवक-युवतियाँ फ़िल्मी सितारोंकी ज़िन्दगीमें।

उन दिनों जब मैं आइसलैण्डमें था, पुस्तकोंकी पाण्डुलिपियोंको डेन्मार्क-में वापस लौटानेके प्रश्नने[1] इन शान्तिप्रिय लोगोंको काफ़ी व्यग्र और उत्तेजित कर रखा था। राजनीतिके अलावा महज़ शुद्ध साहित्य और पुस्तकोंके प्रश्नको लेकर भी सड़कों और चौराहोंपर प्रदर्शन और विरोध-सभाएँ हो सकती हैं, युरॅपमें इसका अनुभव पहली बार हुआ। यदि किसी आइसलैण्डीको, जो स्वभावतः अत्यन्त विनम्र और धैर्यशील होता है, मैंने कभी उत्तेजित होते देखा, तो सिर्फ़ उस प्रश्नपर।

कोपनहेगनके संग्रहालयमें मुझे हज़ारों वर्ष पुराने सागा-ग्रन्थोंकी इन पाण्डुलिपियोंको देखने और छूनेका सौभाग्य मिला था। युरॅपकी इतनी छोटी जाति विश्वका इतना महान् साहित्य – जो बीथोवाके संगीत और शेक्सपियरके नाटकोंकी ही तरह शाश्वत है – का सृजन कर सकेगी, यह

१. जिसके लिए मैं श्री लैक्सनेसका आभारी हूँ।

प्रश्न आज भी अनेक लोगोंके लिए रहस्य बना है। "जब आपके प्रधान मन्त्रीने मुझसे यह प्रश्न पूछा, तो सिर्फ़ हँसनेके अलावा मैं कोई उत्तर नहीं दे सका।" लैक्सनेसने बातचीतके दौरान यह मुझे बताया था।

साहित्यकी इन अमूल्य निधियोंके रचयिता अज्ञात हैं – आज तक इनके लेखकोंका नाम मालूम नहीं हो सका है। ग़रीब किसानोंने (बारहवीं-तेरहवीं शताब्दीमें) इन्हें अपने झोंपड़ोंमें बैठकर लिखा था। पीढ़ी-दर-पीढ़ी सर्दीकी लम्बी शामोंमें इन्हें पढ़ा और सुना जाता था। दरअसल सागा-ग्रन्थोंकी शैली कुछ ऐसी है, जिसका पूरा रसास्वादन चुपचाप अकेले पढ़नेकी अपेक्षा बहुत लोगोंके बीच बैठकर सुननेमें अधिक मिलता है। पुराने समयमें सागा-पाठ अतिथि-सत्कारका मुख्य अंग माना जाता था। खाना-पीना समाप्त कर लेनेके उपरान्त गृहस्वामी बड़े आदरसे अतिथिको अपने पुस्तकालयमें ले जाता था और फिर बहुत विनम्र भावसे पूछता था, "आप कौन-सा सागा सुनना पसन्द करेंगे?" इस जगह मैं एक आइसलैण्डी भिक्षुका कथन उद्धृत करनेका लोभ संवरण नहीं कर पा रहा, जो उसने 'सागा-पाठ' की प्रशंसामें सदियों पहले लिखा था :

"सागा-ग्रन्थोंको पढ़नेसे घड़ी दो घड़ी मन बहलाया जा सकता है, जब कि अन्य मनोरंजनोंकी व्यवस्था करना काफ़ी कठिन है। कुछ बहुत महँगे हैं और कुछ ऐसे हैं, जिनका पूरा लुत्फ़ बहुत-से लोगोंके योग बिना नहीं उठाया जा सकता। कुछ केवल बहुत कम समयके लिए और बहुत कम लोगोंको उपलब्ध हो सकते हैं और कुछ ऐसे हैं, जिनके संग प्राणोंपर खतरा बना रहता है। किन्तु सागा या कविताका आनन्द बिना किसी खर्च या खतरेके उठाया जा सकता है। सिर्फ़ एक व्यक्ति कमसे कम अथवा ज़्यादासे ज़्यादा लोगोंका मनोरंजन कर सकता है। बड़ी बात यह है कि इसका आनन्द किसी भी समय प्राप्त किया जा सकता है, रात हो या दिन, प्रकाश हो या अँधेरा।"

मुझे एक और दिन स्मरण हो आता है। रिक्याविकके एक प्रोफ़ेसर

मित्रकी गाड़ीमें हम आइसलैण्डके पश्चिमी भागकी यात्रा कर रहे थे। शाम घिरनेपर हमें कॉफ़ी पीनेकी इच्छा हुई, किन्तु दूर-दूर तक ऊसर धरती और सूनी पहाड़ियोंके अलावा कुछ भी दिखाई नहीं देता था। हमारे प्रोफ़ेसर मित्रने अचानक गाड़ी एक छोटी-सी झोंपड़ीनुमा 'कॉटेज'-के सामने रोक दी। इस वीरानके बीच कोई जीवित आत्मा बस कर सकती है, विश्वास नहीं हुआ। "आपको यहाँ कॉफ़ी ही नहीं, केक भी मिलेंगे।" उन्होंने मुसकराते हुए कहा। मालूम हुआ, इस झोंपड़ीमें उनके एक रिश्तेदार रहते हैं, अपने परिवारसहित [देखिए, क्या मैंने झूठ कहा था, हर आइसलैण्डीको कहीं-न-कहीं अपना रिश्तेदार ज़रूर मिल जाता है।] भेड़ें पालना और थोड़ी-बहुत खेती-बारी करना – यही उनके रिश्तेदारोंका धन्धा था।

सभ्यतासे कोसों दूर, निपट अकेलेपनमें, कोई परिवार जीवन-यापन कर सकता है, यह कम आश्चर्यकी बात नहीं थी। किन्तु असली विस्मय तो उस झोंपड़ीमें पाँव रखनेके बाद हुआ। एक क्षणके लिए भ्रम हुआ मानो हम किसी 'मेट्रोपॉलिटन' नगरके एक अत्यन्त सुसंस्कृत 'बुद्धिजीवी' के घर आ पहुँचे हैं। पहला कमरा पुस्तकोंसे ठसाठस भरा था। बैठकमें कुछ और पुस्तकें थीं (जो शायद पहले कमरेमें नहीं समा पायी थीं) और दीवारपर दिखाई दीं, अत्यन्त सुरुचिसम्पन्न आधुनिक चित्रोंकी अनुकृतियाँ।

स्मरण रहे, यह एक बहुत ही साधारण किसानका घर था।

कुछ देर बाद एक वृद्धा हमारे लिए कॉफ़ी और केक लायीं। परिचय हुआ। यह जानकर कि मैं भारतीय हूँ, उनकी आँखें सहसा चमक उठीं। कॉफ़ीका प्याला मेज़पर ही छोड़कर वह एक छोटी-सी लड़कीकी तरह भागती हुई पहले कमरेमें गयीं और अपने संग एक बहुत पुरानी किताब – जिसकी जिल्द बिलकुल जरद और भुरभुरी हो चुकी थी – ले आयीं। "यह मेरी बहुत प्रिय पुस्तक है। कभी एक भारतीयको आँखोंसे देखनेका अवसर

मिलेगा, मैंने कभी स्वप्नमें भी नहीं सोचा था।"

पुस्तक आइसलैण्डी भाषामें थी, 'श्रद्धांजलि' का अनुवाद।

कुछ देर बाद उनके पति खेतसे लौटे। एक बहुत ही पका हुआ, झुर्रियों-भरा किसानका चेहरा। बेहद हँसमुख और विनोद-प्रिय। हाथ मिलाया। श्रम और मिट्टीकी गन्धमें लिपटा अ-बुद्धिजीवी हाथ।

देर तक मैं उस हाथ और अलमारीमें चुनी हुई किताबोंको देखता रहा।

और तब अनायास याद हो आयी एक और रात, जो मैंने मध्य फ्रान्स-के एक किसान परिवारमें गुज़ारी थी। कितना भारी अन्तर था इन दो ग्रामीण परिवारोंमें। पेरिसकी मेट्रोपॉलिटन संस्कृतिसे सब परिचित हैं, किन्तु पेरिससे सौ-दो-सौ मीलकी दूरीपर एक ग्रामीण परिवार संस्कृतिसे इतना अछूता रह सकता है, यह कितने लोग जानते हैं।

और मेरे लिए यह एक महत्त्वपूर्ण अन्तर है – आइसलैण्ड और युरॅपके अन्य 'संस्कृति-सम्पन्न' देशोंमें। आइसलैण्डमें (और कदाचित न्यूनाधिक मात्रामें, अन्य स्कैण्डेनेवियाई देशोंमें भी) संस्कृतिका अर्थ ही 'लोक-संस्कृति' है – दैनिक रहन-सहनमें सहज रूपसे रची हुई मेंहदीकी मानिन्द। किसी भी समय वह किसी वर्ग-विशेषकी सम्पत्ति नहीं रही और सबसे बड़ी बात यह कि किताबोंकी अलमारी और आधुनिक चित्र महज़ घरके 'फ़र्नीचर' का अंग न होकर अपनेमें स्वतन्त्र 'स्वान्तःसुखाय' वस्तुएँ भी हो सकती हैं, किसानके घरमें उतनी ही अनिवार्य जितनी एक शहरी 'बुद्धिजीवी' के 'फ़्लैट' में।

यात्राके दिन शेष हो चले हैं।

उत्तर जानेकी साध मनमें दबाये मैं 'ईगल्स-हिलकी घासपर लेटा रहता हूँ। भारतीय 'रोप-ट्रिक' की विद्या आती तो रिक्याविककी सड़कों-पर पैसे बटोरकर सीधा आकुईरेरीकी ओर भाग खड़ा होता और उसके परे ग्रीनलैण्ड भी। उम्र नहीं रही 'हिच-हाइकिंग' करनेकी, वरना छातीपर

'इण्डियन' को तख्ती लटकाकर बीच चौराहेमें खड़ा होनेसे ऐसा कौन संगदिल होगा जो 'लिफ़्ट' नहीं देगा।

और सामने समुद्र है, कविताकी लयकी तरह रिक्याविकसे जुड़ा हुआ – जो है, इसलिए कोई ध्यान नहीं देता, किन्तु जिसका न होना ध्यानके परे है····ईगल्स हिल····रफ़्ता-रफ़्ता रात झुक आती है।

सफ़ेद रातोंमें शराबियोंकी डगमगाती छायाएँ। सामने बन्दरगाह है। देर रात तक नाविकोंके पियक्कड़ गानोंकी आवाज़ हवामें तिरती आती है।

रिक्याविककी हवामें····और मध्यरात्रिकी धूप। नीचे, पहाड़ीके नीचे 'स्कोल गाथा' है – रिक्याविककी वेला रोड। सिर्फ़ जमुनाकी जगह समुद्र-ने घेर ली है। हममें कुछ हैं कि हर नगरमें अपना नगर खोज लेते हैं।

चेहरे, शहर, नाम।

दूर, मध्यरात्रिके ख़ामोश उजलेपनमें एक कटे-फटे किनारेवाला परदा लटक आया है, 'एशिया' पहाड़। अजीब नाम है। पहाड़के नीचे समुद्रकी लहरें उठती हैं, सफ़ेद रातमें मदमस्त साँपों-सी अपने फनको बार-बार चट्टानोंसे टकराती हुई, और फिर लौट आती हैं – पुरानी स्मृतियों-की तरह।

नाम, चेहरे····

किसी पुराने चर्चकी झुकी छत, दीवारपर दगे गोलियोंके निशान, या फिर किसी पहचाने परिन्देकी फड़फड़ाहट, या यह भी नहीं, सिर्फ़ यात्राका एक सिलसिला····

'ईगल्स हिल'की घासपर मैं लेटा रहता हूँ।

■

चीड़ोंपर चाँदनी

लिदीत्से : एक संस्मरण

वह भी एक दिन था, जब सिर्फ़ नाम सुना था।

स्कूलसे लौटते हुए अचानक पाँव एक पोस्टरके सामने रुक गये थे। पोस्टर कुछ अजीब, अलग-सा रहा होगा – नहीं बरसों बाद उसकी धुँधली याद आज भी बसी है। काग़ज़का एक कोना दीवारसे उखड़ गया था और बार-बार हवामें फड़फड़ा उठता था। दूसरे कोनेपर लाल स्याहीसे लिखा था – लिदीत्से विल लिव।

उन दिनों मैं बहुत छोटा था – स्कूलका एक छात्र। नक़्शेपर चेकोस्लोवेकियाका नाम देखकर जो दो-तीन नाम बरबस आँखोंके सामने घूम जाते थे – वे थे मासारिक, कॉरेल चैपेक और अख़बारकी एक तसवीर – प्रागकी सड़कोंपर मार्च करते हुए जर्मन सैनिक। उस दिन गलीके चौराहेपर पोस्टरके सामने खड़ा-खड़ा मैं कुछ चकित-सा हो आया था – यह एक नया नाम था, लिदीत्से!

घर लौटकर मैंने अपनी पुरानी एटलस खोली और चेकोस्लोवेकियाके नक़्शेपर उत्सुकतासे ढूँढ़ने लगा, अपने इस नये शहरका नाम। किन्तु सिर्फ़ निराशा हाथ लगी। कहीं भी नाम न था। तब नहीं मालूम था कि नक़्शेपर इन गाँवों, बस्तियोंके नाम नहीं होते, जहाँ मुश्किलसे सौ-दो सौ आदमी रहते हैं।

इतना ही छोटा-सा क़स्बा था – लिदीत्से।

मैंने खिन्न-भावसे एटलस बन्द कर दी। किन्तु फिर भी मैं भूल नहीं सका। उस रात सोनेसे पहले वह पोस्टर देर तक मनके एक कोनेपर फड़फड़ाता रहा····लाल स्याहीमें टेढ़े-मेढ़े अक्षर – लिदीत्से विल लिव!

बीचमें कितने दिन बीत गये !

फिर यह भी एक दिन है। मैं अपनी आँखोंसे उस अजीब गाँवको देख आया हूँ, जिसका नाम उस दिन नक़्शेपर नहीं मिला था।

हम अभी-अभी अपनी बससे नीचे उतरे हैं। युरॅपके अलग-अलग देशोंके युवक-युवतियाँ संग हैं – इटली, जर्मनी, रूस, फ्रान्स – सब स्लाव भाषाओंके छात्र ! पिछले चन्द दिनोंसे हम एक ही होस्टलमें रह रहे हैं – एक दूसरेको धीरे-धीरे पहचानने लगे हैं। हमारे संग फिलॉलॉजिकल फेकल्टीके डीन भी हैं – डॉ० फ्रीड।

अकसर सोचता हूँ, कौन-सा सही तरीक़ा है, किसी देशके जातीय गुण जाननेका ! शायद बहुत छोटी-छोटी बातोंसे – जिनका कोई विशेष महत्त्व नहीं है, जिन्हें बहुत आसानीसे नज़रअन्दाज़ किया जा सकता है। किन्तु इन्हीं नगण्य घटनाओंके बीच कुछ मूक, अदृश्य संकेत मिल जाते हैं। चेक लोगोंके संग रहते अरसा हो आया – बीयर-पब्ज़में शराब पीते हुए, साहित्यिक मसलोंपर बहस करते हुए, उन्हें अलग-अलग पहलुओंसे देखनेका अवसर मिला है। किन्तु आज भी जब कोई मुझसे उनके सम्बन्धमें मेरी राय पूछता है, तो अनायास मुझे वह दिन याद आ जाता है।

पहले हमेशा यही होता था। जब कभी हम कोई स्थान या स्मारक देखने जाते थे, डॉ० फ्रीड हमें बसमें ही उस स्थानका ऐतिहासिक अथवा कलात्मक महत्त्व समझा देते थे। किन्तु न जाने इस बार ऐसा कुछ नहीं हुआ। हमारी बस लिदीत्सेके पास पहुँच गयी है, किन्तु डॉ० फ्रीड वैसे ही कुछ आगेकी सीटपर बैठे हैं। उन्होंने लिदीत्सेके सम्बन्धमें हमसे एक शब्द भी नहीं कहा।

वैसे कहनेको बहुत कहा था। जिस क़सबेको नात्सियोंने रातकी चन्द घड़ियोंमें ही राख और ईंटोंके ढेरमें बदल डाला था, जिसके विनाशकी ख़बर बिजली-सी दुनियाके हर कोनेमें फैल गयी थी, उसके सम्बन्धमें कुछ भी कहनेके लिए शब्दोंकी कमी नहीं है। युरॅपका कोई अन्य देश होता तो

शायद हम एक जोशीला, फ़ासिस्ट-विरोधी भाषण सुनते। किन्तु डॉ० फ्रीड गुमसुम, अपनी खोयी-सी अधमुंदी आंखोंसे बन्दी खिड़कीके बाहर देखते रहे।

बादमें महसूस हुआ, उनका मौन कितना सही था – एक दृष्टिसे वह इस मरी हुई बस्तीके मौनका ही प्रतीक था। जो कुछ उस दिन हमने देखा, अपनेमें ही अपने लिए जो अर्थ ग्रहण किया, उसे किसी भी राजनैतिक टिप्पणीमें व्यक्त करना असम्भव है।

यह मुझे आज भी महसूस हो रहा है, जब मैं यह सब कुछ लिख रहा हूँ।

सामने छोटी-सी घाटी फैली है। बीचमें ऊबड़-खाबड़ जमीन और मिट्टीके ढूह हैं। कहीं-कहीं समतल धरतीपर घासके टुकड़े दिखाई दे जाते हैं। दूर छोरपर छोटी-छोटी पहाड़ियाँ अगस्तकी नरम धूपमें ढंकी हैं। एक घनी विचित्र-सी शान्ति चारों ओर फैली है। कभी-कभी हवा चलनेसे मिट्टी उड़ने लगती है, पेड़ोंके पत्ते चुपचाप मरमरा उठते हैं।

लगता है, धरतीका यह अंश सदियोंसे इसी तरह धूपमें अलसाया, उनींदा-सा सो रहा है····

इसी घाटीकी गोदमें लिदीत्सेका गाँव है – या कहें, कभी था। आज वह नहीं है।

जो बचा रह गया है, वह नहीं है, जो हमेशासे था – संस्कृतिसे पहले, फ़ासिज्मसे पहले, धूपमें झिलमिलाते पुराने पत्थर, हवामें काँपती घास, उनींदी-सी पहाड़ियाँ।

क्षण-भरके लिए विश्वास नहीं होता कि किसी ऐसे ही दिन, ऐसी ही शान्त घड़ीमें, यह खामोश घाटी, घाटीके ऊपर सिमटा लिदीत्सेका नीला आकाश, फ़ौजी बूटों और बन्दूकोंके बीच घिर गया होगा।

१० जून १९४२····उस दिन प्रागसे कुछ मिलिटरी ट्रकें लिदीत्से आयी थीं। यह गाँव प्रागसे ज्यादा दूर नहीं है – मुश्किलसे बीस-पचीस मीलके

फ़ासलेपर। कुछ दिन पहले एक बड़े जर्मन अफ़सरको किसीने गोलीसे मार डाला था—चारों ओर तनाव और आतंकका वातावरण दूषित हवा-सा फैलने लगा था। चेकोस्लोवेकियाके हर शहर और गाँवमें इश्तिहार चिपकाये गये थे कि जो कोई 'हत्यारे'का अता-पता सरकारको देगा, उसे दस हज़ार क्राउन इनाममें दिये जायेंगे। किन्तु बहुत छानबीन, तलाशियों और धमकियोंके बावजूद फ़ासिस्ट हत्याके सम्बन्धमें कोई ठोस सबूत हासिल नहीं कर सके।

तब सन्देह हुआ लिदीत्सेपर।

फ़ैक्टरी-मज़दूरोंका यह गाँव था – औरतें खेतोंमें काम करती थीं, आदमी क्लादनोव और प्रागके कारख़ानोंमें काम करने जाते थे – सुबह जाते थे, दिन ढलते वापस लौट आते थे।

बहुत साधारण-सा गाँव, बहुत साधारण-से लोग। आश्चर्य नहीं कि उस दिन मुझे अपनी स्कूल-एटलसमें उसका नाम नहीं मिला था। दुनिया-की बात अलग रही, चेकोस्लोवेकियामें ही कितने लोग थे, जो उन दिनों लिदीत्सेके बारेमें कुछ भी नहीं जानते थे।

धीरे-धीरे यह सन्देह पक्का होता गया कि 'हत्यारा' लिदीत्सेमें ही कहीं छिपा है। किन्तु गेस्टापो-पुलिस न उसे पहचानती थी, न यह जानती थी, कि उसने किस घरमें आश्रय लिया है। लिदीत्सेके हर व्यक्तिसे – बूढ़ेसे लेकर बच्चे तकसे – पूछ-ताछ की गयी, डराया-धमकाया गया; किन्तु सबका एक ही उत्तर था – वे कुछ भी नहीं जानते।

किन्तु यह सच नहीं था, और फ़ासिस्ट अच्छी तरह जानते थे कि यह सच नहीं है। वे सिर्फ़ यह नहीं जानते थे कि 'सत्य' और सत्यमें भी अन्तर हो सकता है। लिदीत्सेके साधारण लोगोंका सत्य उनके सत्यसे बिलकुल अलग था।

यह एक विकट समस्या थी····किन्तु समस्याका समाधान बहुत सरल ढंगसे किया गया। यदि लिदीत्सेके हर बालिग व्यक्तिको – जो सोलह

वर्षसे ऊपर है – खत्म कर दिया जाये, तो वह 'हत्यारा' भी, जो उनके बीचमें कहीं छिपा था, जीवित नहीं रह सकेगा।

"आनेवाली पीढ़ियाँ कभी नहीं जानेंगी कि इस धरतीपर किसी ऐसे गाँवका अस्तित्व था, जिसने जर्मन राज्यके शत्रुको आश्रय दिया था।" यह जर्मन हाई-कमान्डके एक घोषणा-पत्रकी कुछ पंक्तियाँ हैं। आज भी यह घोषणा-पत्र लिदीत्सेके म्यूज़ियममें सुरक्षित है।

१० जून १९४२····उस दिन प्रागसे कुछ सिविल-ट्रकें लिदीत्से आयी थीं। वह छुट्टीका दिन था – ऐसा ही शान्तिमय दिन, जैसा आज है। ट्रकोंकी आवाज़से वह उनींदा गांव सहसा चौंक-सा उठा। बच्चे खिड़कियोंसे बाहर झांकने लगे।

पलक मारते ही सारी बस्ती जर्मन सिपाहियोंसे घिर गयी।

कहते हैं, उस रात दूर-दूरसे जलते हुए लिदीत्सेकी लपटें दिखाई देती थीं।

वह अन्तिम दिन था····

किन्तु आज जब हम अपनी बससे बाहर आये, हमें देखनेवाला कोई नहीं था। घाटी अब भी है, और आकाश है, और धूप वैसी ही नरम और नशीली जैसे अठारह वर्ष पहले उस दिन रही होगी। क्या यह सचमुच सच है कि इस क्षण हम अकेले हैं कि हमें देखनेवाला कोई भी नहीं? लगता है, इस सूनी घाटीमें, मरे हुए गाँव बीच, अब भी कुछ शेष रह गया है, जो अब भी जीता है, जो इस क्षण भी हमें देख रहा है, किन्तु जिसे हम नहीं देख पाते।

जो देख पाते हैं, वह है सिर्फ़ टूटी दीवारोंका मलबा, जली हुई ईंटोंका ढेर, सूने ख़ामोश पत्थर। चलते-चलते अचानक हमारे पाँव मलबेके ढेरके सामने रुक गये। एक छोटा-सा बोर्ड दिखाई दिया – प्राथमरी स्कूल। पहली बार उस दिन डॉ० फ़ीडका स्वर सुनाई दिया। "स्कूलके सारे बच्चोंको जर्मनीके विभिन्न कॉन्सनट्रेशन-कैम्पोंमें भेज दिया गया था····इनमें-

से अनेक ऐसे हैं जिनका पता आज तक नहीं लग सका। और यह....'' डॉ० फ्रीड क्षण-भरके लिए रुके, फिर धीरेसे कहा, ''यह स्कूलकी इमारत है....वेल, ऐज़ यू सी, इट इज़ ऑल दैट इज़ लेफ्ट ऑव इट।''

स्कूलसे आगे एक छोटी-सी पगडण्डी खेतोंके बीच ऊपरकी ओर चली गयी है। हलकी-सी चढ़ाई पार करते ही दूर-दूर तक लीपा और बबूके पेड़ दिखाई देते हैं – घने और छायादार। यहीं अन्तिम सिरेपर कभी गाँवका चर्च था, जिसका अब कोई चिह्न शेष नहीं रह गया है। किन्तु गिरजेका चर्चयार्ड अब भी है – चारों ओर टूटे, पुराने लकड़ीके जँगलेसे घिरा हुआ। जब कभी हवा चलती है, पेड़ोंके पत्ते एक क़ब्रसे उड़कर दूसरी क़ब्रपर जा लुढ़कते हैं। टूटे चर्चके ख़ामोश पत्थर और वर्षों पुरानी क़ब्रें – दोनों ही एक-दूसरेके पास आ सिमटे हैं, दोनोंके ही बीच एक अजीब-सी समानता है। अब यहाँ कोई नहीं आता, सिवाय उस सूनी, मँकरी पगडण्डीके, जो आज भी पुरानी परम्पराका पालन करती हुई, खेतोंके बीच रास्ता बनाती, गाँवकी स्मृतियोंको सिमिट्री तक पहुँचा जाती है।

कुछ आगे चलकर हमारी आँखें तनिक आश्चर्यसे एक छोटी-सी इमारतपर टिक गयीं। इस उजड़ी वीरान बस्तीमें, जहाँ हर छोटे-बड़े घरको चुन-चुनकर नष्ट कर दिया गया है, दीवारों और छतसे घिरी एक पूरी साबूत इमारतको देख पाना सचमुच एक आश्चर्यजनक घटना थी। पास आनेपर पता चला कि यह लिदीत्सेका म्यूज़ियम है, जिसे युद्धके बाद निर्मित किया गया था। लिदीत्सेकी हर छोटी-बड़ी चीज़, जो बाक़ी रह गयी थी, जिसे देखकर हम उन दिनोंकी कल्पना कर पाते हैं, जब इस बस्तीपर फ़ासिज़्मकी छाया नहीं पड़ी थी, इस म्यूज़ियममें संगृहीत है। बच्चोंके पैराम्बुलेटर और अधजली गुड़ियाएँ, खिड़कियोंके झीने परदे, शराबकी बोतल, शेवका सामान....एक रेशमी स्कार्फ़! दूसरे कोनेमें एक फ़ोटो टँगा है – बच्चोंकी उत्सुक हँसती आँखें हमें देख रही

हैं। लिदीत्सेके छात्र-छात्राओंका यह अन्तिम फ़ोटो है – कॉन्सन्ट्रेशन-कैम्पोंमें भेजे जानेसे कुछ महीने पहले नये वर्षपर लिया गया था। पीछेकी ओर एक अलमारीमें लिदीत्सेके उन सब युवकोंके पासपोर्ट और पासपोर्टपर लगे फ़ोटो रखे हैं, जो कभी जीवित थे, और अब नहीं हैं····

म्यूज़ियमकी एक अलग दीवारपर अख़बारोंके कुछ कटिंग लगे हैं···· ब्राजीलकी एक नन्हीं लड़कीकी फ़ोटो, जिसकी माँने उसका नाम 'लिदीत्से' रखा था, फ्रेंच 'रसिस्तों' कवियोंकी कुछ कविताएँ, लन्दनके ट्रिफ़ाल्गर स्क्वायरमें एक विराट् फ़ासिस्ट-विरोधी प्रदर्शन, जिसमें एक लड़कीने प्लेकार्ड पकड़ रखा है····प्लेकार्डपर लिखा है – लिदीत्से विल लिव। अचानक मुझे बरसों पहलेकी एक शाम याद आ जाती है····

म्यूज़ियमकी 'विज़िटर-बुक' पर अपना और अपने देशका नाम लिख-कर हम बाहर आ गये। दोपहर बीत चली थी। चर्चयार्डके पास लगे वृक्षोंकी छायाएँ शामकी मिटती धूपमें फैलने लगी थीं। हवाका वेग अचानक तेज़ हो गया। नीचे ढलानपर उतरते हुए घास और पत्तोंकी सरसराहट सुनाई पड़ती थी।

हम बस्तीके बीच एक छोटे-से खुले मैदानमें आ गये हैं। घास और फूलोंसे घिरा यह स्थान दूरसे ही दिखाई दे जाता है। चारों ओर झाड़ियाँ और सिपरसके पेड़ लगे हैं। बीचमें लाल बजरीका एक छोटा-सा रास्ता है, जो आगे एक लम्बे पत्थरके स्तूपके पास जाकर ख़त्म हो जाता है।

स्तूपके नीचे नये-पुराने फूलोंकी मालाएँ पड़ी हैं – यह लिदीत्सेका स्मारक है – बस्तीके मृत प्राणियोंकी सामूहिक क़ब्र। स्तूपके ऊपर लकड़ी-का क्रॉस लगा है – बहुत लम्बा नहीं, किन्तु लगता है, जैसे लिदीत्सेका समूचा आकाश उसपर झुक आया है। क्रॉसके इर्द-गिर्द काँटेदार जाली लगी है – बॉर्ब्ड वायर····सदियोंसे मानवीय-यातनाका शाश्वत प्रतीक।

हमारे गिरोहमें एक जर्मन लड़की कुछ फूल लिये आगे बढ़ती है और

चुपचाप उन्हें क्रॉसके नीचे उन सब फूलोंके संग रख देती है, जिनमें अलग-अलग देशोंकी गन्ध बसी है।

जानेसे पहले हम कुछ लमहोंके लिए चुपचाप समाधिके सामने खड़े रहे हैं। आस-पास कहीं कोई स्वर नहीं है – एक विचित्र-सी अशरीरी निस्तब्धता हमें अपनेमें जकड़ लेती है। लगता है, यहाँ आकर हम समयके अन्तिम छोरपर पहुँच गये हैं।

सोचता हूँ, क्या अर्थ है हमारे लिए लिदीत्सेका। हम – जो दुनियाके दूर-सुदूर देशोंसे यहाँ आये हैं? हम सबने – अलग-अलग शहरोंमें अरसा पहले लिदीत्सेका नाम सुना था – अपने-अपने ढंगसे उसके सम्बन्धमें सोचा था। किन्तु इस क्षण लगता है, एक उड़ती हुई धुँधली अनुभूति हम सबको छू गयी है – ऐसा कुछ, जो जब कभी महसूस होता है, हम हठात् चौंक-से जाते हैं, एक अजीब-सी छाया, जो जब सरसराती-सी हमें छूती हुई निकल जाती है, हमें लगता है, जैसे हमारे भीतर एक अँधेरा खोखल-सा खुल गया है····

क्या यह मृत्युकी छाया है, जिसे हमने लिदीत्सेकी वीरान बस्तीमें इतने नज़दीकसे स्पर्श किया है? किन्तु अगस्तके इस दिन – जब चारों ओर घनी और शान्त धूप फैली है, दूर पहाड़ियोंपर अलसाये-से इक्के-दुक्के बादल बिखर आये हैं। ऐसी शान्त सुनहरी घड़ीमें मृत्यु बहुत दूरकी चीज़ लगती है, उसके बारेमें कुछ भी सोचना असम्भव-सा प्रतीत होता है।

युरॅपके शहरोंमें घूमते हुए मुझे अकसर यह महसूस हुआ है कि इन लोगोंके बीच मैं महज़ 'आउटसाइडर' हूँ – एक बाहरका आदमी। युरॅपके लिए फ़ासिज़्मका जो अर्थ रहा है, क्या मैं उसे कभी सही-सही समझ सकूँगा, महसूस कर पाऊँगा? आज वह उसकी आत्माका एक हिस्सा है – पूरे अर्थमें एक 'पाप', जो सिर्फ़ अतीतकी विरासत ही नहीं है, किन्तु जिसे हर व्यक्ति कमोवेश अपनेमें लिये जीता है।

और तब लिदीत्सेके खण्डहरोंके बीच भटकते हुए मुझे पहली बार अपने लिए 'आउटसाइडर'का शब्द अजीब-सा बेमानी लगा है। टूटी हुई दीवारोंके मलबेके नीचे हम सबकी आत्माका एक अंश दब गया है···· क्योंकि जिस सदीमें हम जीते हैं, हममें-से हर व्यक्ति उसका गवाह है, और गवाह होनेके नाते जवाबदेह भी····

शायद मैं ग़लत हूँ, किन्तु लिदीत्सेसे वापस लौट आनेके बाद मैं इस-पर विश्वास करना चाहूँगा।

■

है। 'यान नेरुदा'को गुज़रे एक मुद्दत बीत गयी, किन्तु आज भी 'माला-स्त्राना'की गलियोंमें घूमते हुए उनकी कहानियाँ, कहानियोंके पात्र, सजीव हो उठते हैं। छोटे-छोटे एक-दूसरेसे सटे मकान, नीचे झुकी हुई छतें, सेण्ट निकोलस चर्चका हरा गुम्बद, चर्चके नीचे चाँदनी रातमें एक-दूसरेका हाथ पकड़े प्रेमियोंके जोड़े – सब कुछ वैसा ही है, जैसा सदियों पहले था; कुछ भी नहीं बदला। लगता है जैसे छतोंपर मँडराते हुए बादल भी बहुत पुराने हैं, बरसोंसे यहीं, आकाशके इस टुकड़ेके आस-पास चक्कर लगाकर वापस लौट आते हैं····

पहाड़ीपर, ज़रा पीछेकी ओर, 'लॉरेन्तो चेपल' है····सत्ताईस घण्टियों-का वारोक चर्च। रातकी मौन घड़ियोंमें जब यह घण्टियाँ एक संग बजती हैं, तो इनसे एक विचित्र, मायावी संगीत रिसने लगता है····ए थाउजेण्ड टाईम्स वी ग्रीट दी[1]। लोक-कथा कहती है कि ये घण्टियाँ एक बूढ़ी माँ-की स्मृतिमें बजती हैं, जो दो सौ वर्ष पूर्व प्लेगकी बीमारीमें अपने सत्ताईस बच्चोंके संग मर गयी थी।

प्रागका अकेलापन लॉरेन्तोकी घण्टियोंके संग जुड़ा है – भूली-बिसरी स्मृतियोंका अकेलापन। ऐसी रातमें यह सम्भव लगता है कि मृत्युके परे भी स्मृतियाँ जीवित रहती हैं, कि स्मृतियोंका अकेलापन किसी भी शहर-में – अपने शहरसे हज़ारों मील दूर भी टूटता नहीं। और तब अनायास हमारे पाँव और भी धीमे हो जाते हैं। हम उस अज्ञात, जादुई लयको नहीं तोड़ना चाहते, जो एक पारलौकिक, पारदर्शी संगीतके संग सम्पृक्त है – संगीत जो इस चाँदनी रातसे परे, अपनी स्मृतियोंसे परे, केवल प्राग-की हवासे जुड़ा है····

प्राग, ऐसी ही चाँदनी रातकी ख़ामोशीमें जिसे कभी मोत्सार्टने देखा होगा।

हम ट्रामसे उतर गये हैं। बीचमें अँधेरी गली आती है। पास ही

---

१. हज़ार बार हम तुम्हारा अभिवादन करते हैं।

एक छोटा-सा नाला है, जिसके दोनों ओर नये बनते मकानोंका मलबा पड़ा है। गलीके नुक्कड़पर एक बहुत पुराना 'लैम्पपोस्ट' है····उसकी पीली रोशनीमें बारिशकी बूँदें माचिसकी तीलियों-सी क्षण-भर चमककर अँधेरेमें ग़ायब हो जाती हैं। 'समर-स्कूल'के हम तीस-चालीस छात्र हैं – युरॅप और एशियाके अलग-अलग देशोंसे यहाँ आये हैं और इस समय, इस अँधेरी गलीमें एक दूसरेके पीछे चुपचाप चल रहे हैं। लगता है जैसे यह गली कभी ख़त्म न होगी, जैसे हम इसी तरह भयभीत, कातर, आशा-को मनमें दबाये बारिशमें भीगते हुए चलते रहेंगे।

किन्तु हर गली चाहे वह कितनी ज़िद्दी और लम्बी क्यों न हो, आख़िर ख़त्म हो जाती है। हम एक सूनी, सुनसान सड़कपर आ गये हैं। बायीं ओर 'पेत्रशिन'की पहाड़ीपर निरीक्षण बुर्जका लाल सितारा तिमिरा-च्छन्न आकाशमें चुपचाप, निपट एकाकी-सा चमक रहा है। आख़िर चलते-चलते हम पीछेके लोग एकाएक ठिठक गये। अगली क़तारके चन्द व्यक्ति सीधी सड़क छोड़ ऊपरकी ओर मुड़ गये हैं। मनमें यह ख़याल – जो इतनी देरसे हम अपनेमें दबाये थे, बिजलीकी तरह कौंध जाता है – क्या यहीं आस-पास मोत्सार्टका घर है ?

"आनो – ताम ना हो रू"····वहाँ ऊपरकी ओर। वह बोर्ड नहीं देखते ?" एक जर्मन लड़की टूटी हुई चेकमें हमसे कह रही है। फिर भी एकाएक विश्वास नहीं हो पाता।

वह बोर्ड ! सड़कके किनारे एक सँकरा रास्ता ऊपर जाता है····शुरूमें दो क़दम ऊपर चढ़ते ही वह बोर्ड दिखाई दे जाता है – 'बर्त राम्का' एक क्षणके लिए हम मन्त्र-मुग्ध-से खड़े रहते हैं।

'बर्त राम्का'····एक छोटा-सा शब्द, जिसका कोई चेहरा नहीं है, महज़ नाम। प्रागके लाखों घरोंके जमघटके बीच एक साधारणसे घरका नाम····बोर्डका पुराना, ज़र्द तख़्ता भीग रहा है····बारिशकी बूँदोंमें टप् टप्।

पेड़ोंके झुरमुटके बीच वह घर दूरसे ही दिखाई दे जाता है····हवामें काँपते 'लीपा'के पत्तोंसे घिरी एक खिड़की है। भीतरकी मद्धिम रोशनी फरफराते परदोंसे छनती हुई सीढ़ियोंपर गिर रही है, जहाँ हम खड़े हैं। सोचता हूँ, मोत्सार्ट इन्हीं सीढ़ियोंसे उतरकर पुराने शहरके थिएटर जाते होंगे।

उन दिनों 'बर्त राम्का' जहाँ मोत्सार्ट ठहरे थे – शहरकी सीमाओंसे अलग था। यह सोचकर आज भी आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता कि हर शाम मोत्सार्ट इतनी दूर पैदल ही 'नौसटिट्ज़ थिएटर' (जो अब 'तिन थिएटर'के नामसे प्रसिद्ध है) जाया करते थे। वह उन दिनों अपने नये 'ऑपेरा' 'डॉन जुआन'का रिहर्सल देखने प्राग आये थे। कहते हैं, थिएटर जाते हुए मोत्सार्ट 'ओल्ड टाउन'के रेस्तराँमें एक गिलास शराब पीने अवश्य रुक जाते थे। वापस आते हुए आधी रात बीत जाती थी। चार्ल्स ब्रिज पार करनेके बाद (प्रागमें उन दिनों यही एक पुल था) वह बिना नागा 'लिट्ल क्वार्टर'के एक छोटे-से कॉफ़ी-हाउसका दरवाज़ा खटखटाया करते थे। कॉफ़ी हाउसका मालिक, जो उस समय सो रहा होता था, दरवाज़ेपर थपथपाहट सुनकर एकदम जाग उठता था। उसे यह जाननेमें ज़्यादा देर नहीं लगती थी कि रातकी इस घड़ीमें उसके दरवाज़ेपर मोत्सार्टके अलावा कोई दूसरा नहीं हो सकता, कुछ ही देरमें रेस्तराँ कॉफ़ीकी सोंधी गन्ध और मोत्सार्टकी बातोंसे महकने लगता था। 'लिट्ल क्वार्टर'में, जहाँ आज-कल हम ठहरे हैं, उस कॉफ़ी-हाउस की टूटी-पुरानी इमारत आज भी आते-जाते दिखाई दे जाती है।

वे शुरू पतझरके दिन थे। प्रागकी गलियोंमें अंगूर-लताओंकी गन्ध तिरती रहती थी। जिन दिनों मोत्सार्ट बर्त राम्का आये थे, गुलाबके फूलोंकी आखिरी पँखुड़ियाँ झर रही थीं। वाटिका अब भी है····किनारेपर पेड़ोंकी छाँह तले एक बेंच दिखाई देती है, जिसपर 'दूब' की पत्तियाँ इकट्ठी हो गयी हैं। पत्थरकी दीवारके पीछेकी फूलोंकी नीली घण्टियाँ

हवामें झूलती हैं। उनके स्वप्निल-स्वरकी छाँहको किसी अजानी घड़ीमें मोत्सार्टकी भूखी उँगलियोंने छुआ होगा। यहीं इसी बेंचपर, इन्हीं पत्तोंके झुरमुटमें, जहाँ आज रात चाँदनी बारिशमें भीग रही है – नीरव और मदिर!

लेकिन हम इसी तरह सीढ़ियोंपर कब तक खड़े रहेंगे? शीशेके दरवाज़ेके सामने पहुँचकर सीढ़ियाँ खत्म हो जाती हैं। परदेसे छनती रोशनीका फीका आभास, भीतर कुछ अस्पष्ट-सी हलचल, बाहर वाटिकामें उड़ते हुए इक्के-दुक्के जुगनू····सब कुछ इस क्षण बहुत आत्मीय-सा हो आया है। इतना आत्मीय इतना अपना-सा कि यह नहीं महसूस होता कि बन्द दरवाज़े और हमारे बीच एक लम्बी सदी गुज़र गयी है। लगता है, जैसे अभी दरवाज़ा खुलेगा, मोत्सार्ट मुसकराते हुए बाहर आयेंगे, देहरी-पर उनकी छाया ठिठकी-सी खड़ी रहेगी। मनका यह भ्रम इतना वास्तविक-सा हो जाता है कि दरवाज़ा खुलनेपर जब एक अधेड़, पके बालोंवाले व्यक्ति हमें भीतर बुलाते हैं, तो हम सहसा चौंक-से जाते हैं। अँधेरेकी ओटमें हमने जिस मोहक भ्रमको अपनेमें पाला था, कमरेकी तीखी रोशनी-में वह अचानक टूट-सा जाता है।

"यह घर अब मोत्सार्टका 'म्यूज़ियम' है····और वह 'लायब्रेरी' है जिसमें····"अधेड़ व्यक्तिकी धीमी-सी आवाज़ सुनाई देती है – इतनी धीमी और कोमल कि मनमें विश्वास हो जाता है कि वह 'गाइड' नहीं है। 'गाइड' की पहचान ही उसके ऊँचे तीखे स्वरसे हो जाती है। बादमें मालूम हुआ कि वह 'म्यूज़ियम' के संरक्षककी हैसियतसे बरसोंसे यहाँ रह रहे हैं।

मोत्सार्टका कमरा····अलमारीमें सजी हुई उनकी पाण्डुलिपियाँ, उनके खत। हम धीरे-धीरे आगे बढ़ते जाते हैं। जिस व्यक्तिकी आत्माका संस्पर्श आज तक केवल ग्रामोफ़ोनके रेकॉर्डोंसे ही उपलब्ध हुआ है, आज उसके कमरेमें चलते हुए, उनकी निजी चीज़ोंको छूते हुए, एक अजीब-

सी झिझक महसूस होती है। हम बाहरके लोग हैं, कुछ देर बाद उड़ती निगाहोंसे चीजोंका मुआयना करके फिर बाहरकी दुनियामें लौट जायेंगे। किन्तु भविष्यमें जब कभी मोन्साटके सम्बन्धमें सोचेंगे, तो ये चीजें बरबस बीचमें आ जायेंगी, कहेंगी, देखो हम भी हैं। वह एकान्त छवि, जो कभी हमने अपने कमरेमें रेकॉर्ड सुनते हुए मनमें गढ़ी थी अब वह उतनी अपनी, उतनी एकान्त न रह सकेगी। ऐसे स्थानोंमें आकर अक्सर दुविधा होती है – सोचता हूं, जितना हम पाते हैं, क्या वह उससे कम नहीं है, जितना हम खो देते हैं····

किन्तु विचारोंका तांता बीचमें ही टूट जाता है। हमारे संग-संग चलते हुए वह व्यक्ति अपनी उसी गम्भीर आवाजमें कह रहे थे, "मोन्साटको प्रागसे गहरा लगाव था। वह अक्सर कहा करते थे कि उनका 'ऑरकेस्ट्रा' वियनामें नहीं, प्रागमें है। प्रागके लोग जितना अधिक उन्हें समझते थे, शायद उतना कहीं और नहीं।"

मैं एक छोटी-सी खिड़कीके सामने आकर सहसा रुक गया। बाहर प्रागका आकाश फैला था····श्यामोद्य और मेघाच्छन्न। दूर शहरके क्षितिज-पर 'हरादचानी' शाही महल – और 'मेण्टविता वैंयड्ल' की धूमिल रेखाएँ अँधेरेपर खिंच आयी थीं। कभी-कभी नीचेकी सड़कसे ट्रामके पहियों-की गड़गड़ाहट सुनाई दे जाती थी।

मुझे लगा जैसे कोई दबे धीमे क़दमोंसे मेरे पीछे चला आया है। मैंने पीछे मुड़कर देखा····वही अधेड़ सम्भ्रान्त व्यक्ति खड़े थे, उनके होंठोंपर एक हल्की-सी मुसकराहट सिमट आयी थी।

"जिस खिड़कीके सामने आप खड़े हैं, उसके संग एक दिलचस्प स्मृति जुड़ी है।" उनके स्वरमें दबा-सा रहस्य उभर आया।

वह अजीब-सी घटना थी। जो कुछ सुन पाया, वह चेक भाषामें था; कुछ समझ पाया, बहुत कुछ नहीं। किन्तु जितना कुछ भी समझ पाया, वह कम आश्चर्यजनक नहीं लगा।

उन दिनों मोत्सार्टका प्रसिद्ध 'आपेरा' 'डॉन-जुआन' प्रागमें प्रस्तुत किया जानेवाला था। सब तैयारी हो चुकी थी; अन्तिम 'रिहर्सल' सफलता-पूर्वक समाप्त हो चुका था। शहरकी दीवारोंपर, गली-कूचोंके चौराहोंपर 'ऑपेरा' के पोस्टरोंके अलावा कुछ भी दिखाई नहीं देता था। प्राग-निवासी महीनोंसे मोत्सार्टके 'ऑपेरा' की बाट जोह रहे थे – उन्हें अपने सौभाग्य-पर गर्व था कि 'डॉन-जुआन' का प्रथम उद्घाटन मोत्सार्टके शहर वियना-में नहीं, बल्कि प्रागमें होने जा रहा है। इस आनन्द-उत्सवमें यदि कोई सचमुच परेशान था, तो 'ऑपेरा' का निर्देशक। उनके बहुत कुछ आग्रह अनुनयके बावजूद, मोत्सार्टने अभीतक अपने 'ऑपेरा' का पूर्वरंग नहीं लिखा था। वह हमेशा उसे कलपर टाल देते थे। उद्घाटनका दिन तेज़ी-से पास आता जा रहा था आखिर हताश होकर एक रात उनके मित्रोंने उन्हें इस कमरेमें बन्द कर दिया और बाहर दरवाज़ेपर ताला लगा दिया। उनसे साफ़ यह कह दिया गया कि जबतक वह पूर्वरंग नहीं लिख देंगे, तबतक उन्हें मुक्त नहीं किया जायेगा। रात-भर उनके मित्र कमरेके नीचे चिन्ता-मग्न मुद्रामें घूमते रहे। बार-बार उनकी आँखें कमरेकी खिड़कीपर आ जमती थीं। उन्हें मालूम था, जबतक कमरेकी बत्ती जलती रहेगी, मोत्सार्ट तबतक लिखते रहेंगे। कहते हैं, रस्सीपर भोजनकी पोटली और शराबकी बोतल उन्हें इसी खिड़कीसे भीतर भिजवायी गयी थी। कौन कह सकता है कि यह घटना सच है। किन्तु यह अवश्य सच है कि मोत्सार्टने पूर्वरंग उद्घाटनके दिन ही दिया था, जब काग़ज़पर स्याही पूरी तरह सूखी भी न थी।

तब यह अजब नहीं लगता कि मोत्सार्ट प्राग-निवासियोंमें क्यों इतने लोकप्रिय थे। वे उन्हें अपना ही मानते थे। इसी 'लिट्ल क्वार्टर' में 'सेण्ट निकोलस' चर्च है····मोत्सार्टकी मृत्युका शोकसंवाद सुनकर प्रागके हज़ारों निवासी यहाँ जमा हुए थे। मोत्सार्टका 'रिक्विईम मास' भी यहीं, इस अवसरपर रोती-सिसकती भीड़के सम्मुख गाया गया था। किन्तु

वियनामें उनकी अरथीके संग केवल उनके इने-गिने मित्र ही गये थे····एक साधारण-से क्रब्रिस्तानमें उन्हें दफ़ना दिया गया। आज भी कोई नहीं जानता कि उनकी क़ब्र कहाँ है।

आख़िरमें सब कुछ घूम लेनेके बाद एक छोटा-सा हॉल आता है, जहाँ कुछ कुरसियाँ बिछी हैं। यहींपर कभी-कभी 'कॉन्सर्ट' होता है। गरमियोंकी रातोंमें अकसर 'कॉन्सर्ट'की व्यवस्था बाहर 'लॉन' में होती है, किन्तु आज रात बारिशके कारण हमें भीतर ही बिठाया गया है। 'समर-स्कूल' के छात्रोंके लिए 'कॉन्सर्ट'की विशेष रूपसे व्यवस्था की गयी है। चेक 'फ़िलोहॉर्मोनिक ऑरकेस्ट्रा' के कुछ कलाकार स्वयं उपस्थित हुए हैं····

तीन अलग-अलग संगीत अंश 'धानाचेक', 'द्वोशाक' और सबसे अन्तमें 'मोन्सार्ट'! हलके-से तालियाँ बजती हैं और फिर सब कुछ शान्त हो जाता है····

किन्तु यहाँ मैं ग़लत हूँ····'शान्त' का शब्द लिखनेके एकदम बाद बोध होता है कि वह ग़लत है कि लिखनेके बाद ही वह झूठा हो गया है। अनुभवके जिस परिचित दायरेसे शब्द निकलते हैं, उस रातकी अनुभूत परिधिके सम्मुख वे अजनबी हैं, जैसे किसी दूसरे ग्रहके प्राणी। जो सच है, जो रातकी उस घड़ीमें सच था, वह अब महज़ अर्ध-स्वप्नों, स्मृतियोंका पुंज रह गया है – आकारहीन, स्वरहीन – धुँधली धुन्धके लोंदे-सा! वह एक पुल था – हज़ारों सदियोंके कुहरेको काटता हुआ, अतीतके उस सीमान्तको छूता हुआ – जहाँ मौन, शब्दोंके अभावसे नहीं, उनके अधूरेपनसे उत्पन्न होता है – ऐसा पुल जो जितना कुछ जोड़ता है, उतनेमें ही टूट जाता है। सोचता हूँ – आज नहीं, उस रात सोचा था, जैसे वह लौ बिलकुल अकेली, बिलकुल नंगी हो गयी है, जिसे हम अपने अस्तित्वसे ढँके रहते हैं। कितनी जल्दी वह आस-पासके अँधेरेको निगल रही थी – भूखी-प्यासी लौ, लपलपाती, हाँफती, खुली हवामें साँस लेती हुई। कुछ भी ऐसा नहीं रहा

था, जिसपर उँगली रखकर कह सकें, यह आज है, यह कल। यह वह कड़ी है, जो कभी जीवित था और अब बीत गया है। वह कड़ी जो हमें आस पासकी दुनियासे जोड़ती है, जो हमें जीनेका झूठा-सच्चा अर्थ देती है, वह कड़ी इस क्षण अचानक टूट गयी है। इसके टूटनेके संग हम बिलकुल अकेले हो जाते हैं, सर्वथा मुक्त। मुक्त और एकदम कितने अर्थहीन। संगीत कितना अर्थहीन है और, इसलिए कितना पूर्ण।

फिर आखिरी लमहा – और तब उसके इर्द-गिर्द सब कुछ डूब जाता है – हमारा प्यार, आधी रातमें जागे हुए पसीनेसे लथपथ दुःस्वप्न, एक पगली-सी धड़कन, और फिर वह भी नहीं। जो शेष रह जाता है, देर तक हवामें टँगा रहता है, वह है एक अजनबी अपनापन, जिसे हमने पहले कभी नहीं देखा, जिसे हमने पिछले चन्द क्षणोंमें पहली बार जाना था, और जो अगले चन्द क्षणोंमें दोबारा अजनबी हो जायेगा····एक स्वर-हीन आलोक!

हमारी यह शाम खत्म हो चली है। दरवाज़ेपर आते ही एक रजिस्टर दिखाई देता है····'विज़िटर्ज़-बुक', हम भी अपना नाम दर्ज कर देते हैं – उन पन्नोंपर, जहाँ कभी चेकोवस्की, द्वोर्शाक और यानाचेकने अपने हस्ताक्षर किये थे।

'लीपा'के पत्तोंसे घिरी छोटी पगडण्डी, हलकी-हलकी बारिश। 'बर्त राम्का', मोत्सार्टका घर धीरे-धीरे पीछे छूट जाता है। 'माला-स्त्राना' की सूनी, सुनसान गलियोंमें जगह-जगह गँदले पानीके गढ़े जमा हो गये हैं, जिनमें 'लैम्पपोस्ट' की पीली छायाएँ झिलमिलाती हैं। सारे शहरपर पुराने गिरजोंकी बुर्ज़ियाँ चुपचाप खड़ी हैं – लगता है, प्रागका समूचा आकाश इन बुर्ज़ियोंपर आ टिका है। 'ए सिटी ऑव थाउज़ेण्ड टॉवर्स'[1] किसीने ऐसी ही रात प्रागको देखकर उसे यह संज्ञा दी होगी।

---

१. हज़ार बुर्ज़ोंवाला शहर।

हम अपने हॉस्टलके नज़दीक आ पहुँचे हैं – पास ही 'कांदे'का द्वीप है, प्रागका बेनिस, जहाँ 'वल्तावा' धारोंके बीच बहती है। चार्ल्स-ब्रिजकी रोशनियाँ नीचे पानीपर अपनी चमकीली छायाओंपर झुक आयी हैं। जब कभी हवाका झोंका आता है, बर्बा ('वीपिंग-विलोज़') की लम्बी, पत्तों-से ढकी शाखाएँ धीमे-से खुल जाती हैं, और उनके बीच एक-दूसरेसे मिलती छायाएँ दिखाई दे जाती हैं – एक-दूसरेपर झुकी हुई, 'वल्तावा' की लहरोंकी लयके संग अपने शब्दोंको दोहराती हुई····दूर····[illegible]पर किसी ऐसी ही घड़ीमें – लॉरेन्तो चर्चकी घण्टियोंका स्वर समूचे शहरकी हवामें तिर आता है, एक मायावी संगीत – 'मला-स्त्रान' की झुकी छतों और गिरजोंकी उठी मीनारोंके बीच रास्ता टटोलता, 'चार्ल्सब्रिज' पर सन्तोंकी 'बारोक' मूर्तियोंके सम्मुख प्रार्थना करता हुआ – ए थाउज़ेण्ड टाईम्स वी ग्रीट दी'।

पेरिस : एक स्टिल लाइफ़

हर शाम मैं दरवाज़ा खटखटाता हूँ। धीरे-धीरे दो शक्लें दिखाई देती हैं····दॉस्तॉवस्कीके पात्र, जो किसी भी समय खिड़कीसे नीचे कूद सकते हैं अथवा मौक़ा पड़नेपर किसी बूढ़ी, थकी-माँदी पेरिसियन वेश्याके पैरोंपर लोटकर अपनी समूची जीवन-गाथा सुना सकते हैं····दो चेहरे, एक ही कमरेमें, मेज़पर झुके हुए दो सिर, अखरोटी रंगके बाल····

"आह····तुम आ गये" दुबुआ लाल शराबकी बोतल ऊपर उठाकर अभिनन्दन करते हैं। प्लूमकी खोयी-खोयी-सी आँखें मुझे निहारती हैं···· शराबके कारण, अथवा संगीतके कारण····मैं आज तक किसी निर्णयपर नहीं पहुँच सका।

दरवाज़ेके दोनों ओर दीवारोंपर खजुराहोके चित्र लगे हैं····मुझे सहसा वे शामें याद आती हैं, जब दुबुआ सिमट-सिमटकर खजुराहोके मन्दिरोंकी दीवारोंपर चढ़ जाते थे····और बहुत ही ख़तरनाक स्थितिमें खड़े होकर फ़ोटो लेते थे····उन रहस्यमयी मुद्राओंके – जो आज उनकी दीवारोंपर आगन्तुकोंको चकाचौंध करती हैं,····और मैं····मैं नीचे खड़ा रहता था, ताकि यदि वह गिरें, तो बिना किसी विलम्बके उनके शवको पेरिस पहुँचानेकी व्यवस्था की जा सके।

दुबुआका यह कमरा बास्तीमें है – एक तंग सँकरी गलीमें सबसे ऊपर-की मंज़िलपर। बरसों पहले राम उन्हींके संग ठहरे थे····उसी कमरेमें, जहाँ आज मैं हूँ। शायद बिछौना-बिस्तर भी वही है। कभी-कभी यह सोचकर कौतूहल होता है कि कितनी हद तक हमारे मित्र अदल-बदल गये हैं।

मैं इस कमरेके कोने-कोनेसे परिचित हूँ····पूरे एक दिन तक यह 'मेरा पेरिस' बनके रहा है। उस दिनके बाद कोई नहीं कह सकेगा कि मैंने 'टार्चर-चेम्बर' की यातना अनुभव नहीं की – वह भी जर्मनीमें नहीं, पेरिस-के बीचोबीच। दुबुआ कामके लिए जल्दी सुबह चले जाते थे, मैं कुछ देर बाद निकलता था। उस दिन जब मैं बाहर जानेको हुआ तो देखा – दरवाजा बाहरसे बन्द। बहुत घसीटातान, धक्का-मुक्की की, किन्तु वह अपनी जगहपर अडिग रहा। जान पड़ता था, दुबुआ जल्दीमें बाहरकी साँकल चढ़ा गया था। आह····मैं कुछ देर तक युरोपकी समस्त भाषाओंकी चुनी-चुनी गालियाँ याद करता रहा। शुरू-शुरूमें मुझे यह खयाल अत्यन्त भयावह जान पड़ा कि मुझे समूचा दिन इस 'काल-कोठरी' में गुजारना होगा····किन्तु बादमें दुबुआकी 'रेड वाइन' पीते हुए मुझे लगा जैसे मैं भी बारबूसके उस 'इन साइडर' की तरह हूँ, जो दिन-भर अपनी कोठरीमें बन्द रहकर सिर्फ दरवाजेके 'की-होल' से बाहर झाँका करता था। खिड़कीके बाहर पेरिसका उज्ज्वल आकाश था····नीचे बाल्मीकी पुरानी, एक-दूसरेसे सटी लाल-नीली छतें – अप्रैलकी एक बहुत शान्त, सूनी दोप-हर! पेरिसकी अपनी फुसफुसाहट-भरी आवाजें····जो बाहर बुलीवारोंमें सुनाई नहीं देतीं। पास ही दुबुआका ग्रामोफ़ोन था, बची-खुची रेड वाइन, मैं दिन-भर बिस्तरपर लेटा रहा, लगता रहा कि यह एक सपना है – कि मैं पेरिसमें हूँ····

पेरिसमें हूँ और बाहर नहीं निकल सकता।

जब दुबुआ लौटे, तो रंग दूसरा ही था। इससे पेश्तर कि मैं कुछ कह पाता, वह मुझे बिस्तरसे घसीटकर नाचने लगे थे। पीकर आये थे और पूरी आवाजमें गा रहे थे····उनके मित्र प्लूम कोनेमें कुरसी घसीटकर बैठ गये थे और बराबर हँसते जा रहे थे। जब वह कुछ बोलने लायक हुए तो पहली बार गेगरीनका नाम कानोंमें पड़ा। दुबुआके उत्साहकी कोई सीमा

नहीं थी····पहली 'स्पेस-यात्रा' की ख़ुशी कहाँ और किस तरह मनायी जाये, देर तक इसीपर विवाद होता रहा। सीढ़ियोंसे नीचे उतरते हुए भी हम चीख़ते-चिल्लाते इसी विषयपर बहस कर रहे थे। प्रस्ताव रखनेकी देर न होती, कि उसे ठुकरा दिया जाता।

गेगरीन – उस दिन इस एक नामको लेकर समूचा पेरिस सड़कोंपर उमड़ आया था।

दुबुआकी कार शांज़लीज़ेपर ड्रग-स्टोरके सामने आकर रुक गयी – जान पड़ता था, बहसके दौरानमें उसने चुपचाप कोई निर्णय ले लिया था। भीतर घुसनेपर शुरू-शुरूमें लगा था मानो हम किसी दूतावासके सूचना-केन्द्रमें आ गये हों। चारों ओर सिवाय समाचार-पत्रों और पत्रिकाओंके अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं देता था – अलग-अलग भाषाओंमें झाँकती सुर्ख़ियाँ और हेडलाइन्सने हमारा स्वागत किया। किन्तु यह आश्चर्य अधिक देर तक नहीं टिक सका। कुछ और भीतर जानेपर एक चौड़ा हॉल दिखाई दिया – बिलकुल आधुनिक डिजाइनका फ़र्नीचर, एक अँगरेज़ी क्लबका-सा वातावरण, 'टिपिकल' फ़्रेंच कैफ़ेसे बिलकुल भिन्न – यह शांज़लीज़ेका अन्तर्राष्ट्रीय रेन्देवू था।

"जब मैं फ़्रेंच लड़कियोंसे ऊब जाता हूँ, तो यहाँ आता हूँ।" दुबुआने कहा।

गेगरीनके नामपर हमने शेम्पेन पी – दुबुआ महज़ इससे सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने एक ख़ास क़िस्मकी आइसक्रीम मँगवायी, जिसकी शक्ल काफ़ी कुछ आइफल टावरसे मिलती थी। हममें यदि पूरी तरह होश भी होती, तो भी शायद उसकी लम्बाई नापना सम्भव न होता। पड़ोसी मेज़ोंपर बैठे लोग, विशेषकर लड़कियाँ, हमारी ओर विस्मय और कौतूहलसे देख रहे थे। दुबुआ शायद यह चाहते भी थे – किसी भी सभा-मण्डलीमें आकर्षणका केन्द्र बनना उन्हें बहुत प्रिय था, शायद शेम्पेनके संग उस क़िस्मकी आइसक्रीम खाना भद्र समाजके शिष्टाचारके विरुद्ध था

बादमें हमें पता चला कि ड्रग-स्टोरमें 'अभिजात' वर्ग के टूरिस्ट ही आते हैं – वह एक 'नेस्ट ऑव जण्टरी' से कम नहीं था। किन्तु उस शाम हमें उसकी विशेष चिन्ता नहीं थी – ग्रेवीटेशनके शाश्वत नियमोंको भंग करनेवाले व्यक्तिके समान शेम्पेन पीते हुए 'अभिजात वर्ग' के नियमोंकी चिन्ता करना बेमानी लगा।

किन्तु उस शाम शांज़लीज़के सम्भ्रान्त रेस्तरांमें बैठे हुए बराबर मन भटकता रहा कुछ और शामों और स्मृतियोंकी तरफ़, जो पेरिससे जुड़ी है''''प्रथम युद्धसे पहलेका पेरिस, जब देश-निष्कासित रूसी लेखकों और कवियोंकी अपनी टोलियाँ, अपने अड्डे थे। आज उन रेस्तरां 'रोदुन्डा'-का नाम-निशान भी नहीं है, जहाँ इल्या इहरनबुर्ग पहले-पहल मोदिल्यानी, अपोल्योनोर और पिकासोसे मिले थे। सुर्रियलिस्ट कवियों और पापुलर-फ्रण्टका पेरिस, जब स्पेनिश गृह-युद्धमें भाग लेनेवाले 'अन्तर्राष्ट्रीय-ब्रिगेड'-के वालण्टीयर एक रात यहाँ गुज़ारकर आगे बढ़ जाते थे। युद्धके दौरानमें रजिस्टा कवियोंका पेरिस और फ़ासिज़मके अँधेरेमें एलुआकी उदास गूँज 'द फियर ऐण्ड करेज टु लिव ऐण्ड डाई''''डेथ सो ईज़ी डेथ सो डिफ़िकल्ट''''

कितने चेहरे हैं, पुरानी दीवारोंसे सटे हुए, सेनके किनारे सदियोंसे संग-संग सरकते हुए।

शायद शेम्पेन बहुत भावुक बना देती है। आख़िरी टोस्ट हमने दुबुआ-के लिए पिया है। प्लूम गिलास लेकर बहुत गम्भीरतासे खड़े हुए हैं – लड़खड़ाती टाँगोंपर – "टु जाक दुबुआ – गेगरीन ऑव अन नोन स्पेसिज़ इन फ़ीमेल बॉडी''''" हमने अपने गिलास ऊपर किये हैं – एक ख़ास रंगमें ढला हुआ फ्रेंच टोस्ट।

मुझे एक बहुत पहलेकी शाम याद हो आती है। बरसों युरॅप-प्रवासके बाद हमारे मित्र मुकुल वापस घर लौटे थे। देर रात तक उनके आनेकी खुशीमें हम पीते रहे थे। आधी रातके वक़्त किसीने एक अजीब-

सा प्रश्न उनसे किया था – फ़र्ज़ करो, यदि अणु-युद्धमें तुम्हें किसी एक शहर-को बचानेकी स्वतन्त्रता दी जाये, तो तुम कौन-सा शहर चुनोगे ? मेरे मित्र कुछ देर तक चुप रहे (वह कॅम्युनिस्ट हैं) "यदि सिर्फ़ एक शहर-को जीवित रखनेका प्रश्न है", उन्होंने धीमे स्वरमें कहा, "तो मैं पेरिसको चुनूँगा····यदि वह जीवित रहता है, तो मानव-संस्कृतिको अणुयुद्धके बाद भी पुनर्जीवित होनेमें ज़्यादा समय नहीं लगेगा।"

कुछ शहर होते हैं, जिन्हें रफ़्तः-रफ़्तः पहचानना होता है। उनके खुले हिस्सों और बन्द झरोखोंके पीछे एक रसीला, रहस्यमय लोक छिपा रहता है। वे खुद नहीं खुलते। उन्हें निरावृत करना पड़ता है, सँभल-सँभलकर सधे हाथोंसे। प्राग ऐसा ही शहर है। किन्तु कुछ ऐसे नगर भी होते हैं, जो स्वयं हमारी देहको छूते हैं, हमें सचेत कराते हैं, स्वयं अपने-से। उसकी सड़कोंपर चलते हुए लगता है कि हम उसे "डिस्कवर' नहीं कर रहे, वह स्वयं चुपचाप हमें मदद कर रहा है, खुद अपनेको डिस्कवर करनेमें – पेरिस ऐसा ही शहर है। यहाँ आकर पहली बार मुझे लारेन्स डरेलके शब्द स्मरण हो आये थे – यात्राएँ हमें बाहर केवल स्पेसमें ही नहीं ले जातीं, उन अज्ञात स्थानोंकी ओर भी ले जाती हैं, जो हमारे भीतर हैं।

किसी भी अजनबी शहरमें चलते हुए आँखें इमारतोंपर उठ जाती हैं– भले ही हम आर्किटेक्चरके विशेषज्ञ न हों। वैसे भी जब हम किसी देशकी भाषासे अनभिज्ञ हों, हमें अकसर उन चीज़ोंसे रिश्ता जोड़नेकी ज़रूरत महसूस होती है, जो स्वयं बोलती हों – बिना शब्दोंके। संगीत, पुराने चित्र, गिरजोंके मूक पत्थर, घर जो खाली हैं और घर जिनकी खिड़कियोंसे अपरिचित आँखें झाँकती हैं – ये सब छोटे-छोटे पुल हैं। इनकी ईंटें शब्दोंसे नहीं, आवाज़ों, रंगों और संकेतोंसे बनी हैं। फ़्रेंच नहीं जानता, इसलिए केवल इन्हें ही छू पाता हूँ।

पेरिस आनेपर जो चीज़ सबसे पहले हमें झकझोरती है, तो वे शहर-के रंग हैं, जान पड़ता है फ्रेंच लोगोंको बहुत साफ़-सुथरे, निखरे, उज्ज्वल रंग पसन्द हैं। आँखोंको एक राहत-सी मिलती है····विशेषकर यदि हम प्राग या लन्दनसे यहाँ आये हों। वैसे हर शहरकी अपनी अलग 'इमेज' होती है, बहुत ही व्यक्तिगत और हर यात्रीकी खास अपनी याद-से जुड़ी हुई। रिक्याविककी हवा, प्रागके पुल, वियनाके बाग़, उसी तरह पेरिसके रंग हैं। आश्चर्य नहीं होता रंगोंमें विलक्षण जादू लानेवाले इम्प्रेशनिस्ट स्कूलका जन्म इसी शहरमें हुआ था। यह पेरिसका अपना गुण है कि भाषा न भी आती हो, तो भी हवामें तिरते इन हलके स्वप्निल रंगोंके सहारे हम किसी भी क्षण उससे सम्पृक्त हो सकते हैं।

पहले-पहल यह अनुभव हुआ था – मोन्मात्रकी गलियोंमें चलते हुए। एक गुज़रे ज़मानेका मोन्मात्र जब देश-विदेशके लुटे-पिटे बोहेमियन कलाकार यहाँ अपना डेरा जमाते थे। सँकरी गलियोंके मकानोंपर आँखें सरकती जाती हैं····यह शायद हेनरी मिलरका कमरा रहा होगा। हम अपनेसे ही कहते हैं। और वह शायद सूताका स्टूडियो। सफ़ेद पुरानी दीवारोंपर लाल छतें····छतोंपर शामकी गुलाबी धूप। कहीं-कहीं कुछ फूल। सोचता हूँ, एक मोन्मात्र यह है, जहाँ मैं इस क्षण हूँ। मैं गलीसे गुज़र जाऊँगा और वह मेरे लिए हमेशाके लिए खो जायेगा। एक दूसरा मोन्मात्र है – कैफ़ेके बाहर चन्द जीर्ण-शीर्ण कुरसियाँ, कोनेमें बैठी एक अधेड़ स्त्री, सामने रेड वाइनका गिलास, जिसमें अप्रैलकी वासन्ती धूप घुल गयी है····और पिकासोका स्पेन। कितना अजीब है कि मोन्मात्रमें भटकते हुए मुझे बरबस ग्रानदाकी याद हो आती है – क्या कहीं कुछ सम्बन्ध है, लोर्काकी कविताओं और पिकासोके ब्लू – पीरियडमें?

कुछ आगे चलकर एक पुराना गोथिक चर्च दिखाई देता है····उसके इर्द-गिर्द फूलोंकी मार्केट है। काफ़ी भीड़ जमा है। फ्रेंच लोग भाव-तोल करनेमें हिन्दुस्तानियोंकी तरह ही दिलचस्पी लेते हैं। यद्यपि इस क्षेत्रमें वे

इटली-निवासियोंकी तुलनामें कुछ भी नहीं हैं। वहाँसे ज़रा हटकर मेरी निगाहें पहली वार कोनेके कुछ उपेक्षित मकानोंपर ठहर जाती हैं – भ्रम होता है इन्हें पहले कभी देखा है, ख़ास इसी ऐंगिलसे, कच्ची धूपमें सिमटी किसी पुराने नगरकी छायाएँ और अन्तहीन मौन, छोटी-सी सूनी गली, दोनों तरफ़ एक लम्बी क़तारमें लगे ताशके पत्तोंसे घर, ऊँची-नीची छतोंका एक जादुई, उदास सम्मोहन।

मन ख़ाली हो गया है····सिर्फ़ एक सफ़ेद-सा परदा आर-पार डोल जाता है।

उत्तिलो····और कुछ भी नहीं। शून्य उदासीका एक रंग – सफ़ेद!

नीलेसे उतरकर मोन्मात्र कितने चुपकेसे 'सफ़ेद' की तरफ़ सरक आया है।

एक और स्मृति-खण्ड

सेनके जिस छोरपर मैं खड़ा हूँ, वहाँ चेस्टनटकी शाखाएँ बहते भूरे पानीपर झुक आयी हैं। बहुत कम फ़ासलेपर पोंत-न्यूफ़ है और उसके परे मधुमक्खियोंके छत्ते-सा द्वीप – पानीके बीच एक भूखण्ड जहाँ नात्रेदाम-की मीनारें धूपमें झिलमिलाती हैं।

पुलके पास हेनरी चतुर्थकी मूर्ति है और उसके नीचे, सेनसे सटा एक छोटा-सा वाग़····किनारेपर इक्के-दुक्के मछुए दिखाई दे जाते हैं। ऊपर पुलकी सबसे ऊँची सीढ़ीपर एक कैनवास रखा है – आँखें उठती हैं, उस दृश्यकी ओर, जो न जाने कितने टूरिस्ट पोस्टकार्डोंपर अंकित हैं···· आगेकी ओर पोंत न्यूफ़, किनारेपर ऊँघते मछुए, सेवके एम्बेंकमेण्टपर सेकण्ड हैण्ड किताबों और घटिया चित्रोंकी दुकानें····हवामें फरफराते पिक्चर-पोस्टकार्ड और इन सबको 'रिलीफ़' देता हुआ नात्रेदाम। विश्वास नहीं होता कि वह लड़की हज़ार वार दोहराये गये इस 'लैण्डस्कोप' को

नये सिरेसे छेड़नेका प्रयत्न करेगी।

सोरबोनके कुछ छात्र डफल कोट और जीन्स पहने आते हैं। कुछ लमहोंके लिए उस कैनवासकी ओर देखते हैं – हवामें हाथ हिलाते हुए बहस करते हैं, सम्भवतः पेण्टिगके ही बारेमें। लड़की उनकी ओरसे बिल्कुल विरक्त है; फिर सब किसी बातपर ज़ोरसे हँस पड़ते हैं····लड़कीसे बात-चीत करनेकी कोशिश बराबर जारी है। वह कुछ भी नहीं कहती। सिर्फ़ मुसकरा-भर देती है – एक बहुत ही निष्क्रिय और निर्वैयक्तिक मुसकान – सिर बराबर कैनवासपर झुका रहता है।

छात्रोंके चले जानेके बाद लड़कीकी निगाहें उठती हैं – उत्सुक, दूर सेनकी ओर और जहाँ हवाकी आहट है और वसन्तके नये पत्तोंकी सरसराहट। मुसकराहटका एक अंश अब भी शेष रह गया है – एक क्षणके लिए भ्रम होता है कि वह जो कैनवासके चार बन्द हाशियोंके बीच खो गयी थी, अब उसकी सीमाओंको लाँघकर ख़ुद उस लैण्डस्कोपका एक जुज़ बन गयी है, जो अबतक उसके बाहर था····

पोंत-न्यूफके नीचे सेन बहती है····और उसके संग सड़े-गले पत्ते, पुराने अख़बार, सिगरेटके ख़ाली डिब्बे – सब एक रेलेमें बहे जाते हैं।

हैनरी चतुर्थकी मूर्तिके पास बहुत देरसे एक जापानी छात्र खड़ा है···· पुलके नीचे एकटक निहारता हुआ, दायीं ओर लूव्र है और तुइलेरीज़की उड़ती हुई झलक।····है अकेलापन! कैसे चुपचाप अज्ञात कोनेसे वह मेरे पास चला आया है।

पुल पार करनेके बाद अचानक मैं अपनेको एक बहुत ही शान्त और छायादार स्कावरमें पाता हूँ। लगता है, यह पेरिसका 'मौन-द्वीप' है – दोनों ओर सत्रहवीं शताब्दीके पुराने मकान सीधी पंक्तियोंमें खड़े हैं – सामने 'पैलेस ऑव जस्टिस' की विराट् इमारत है, जिसकी सीढ़ियोंपर कुछ अमरीकी टूरिस्ट एक दूसरेकी फ़ोटो खींच रहे हैं। पेरिसके बीचो-बीच ऐसी अद्भुत एक 'स्टिल-लाइफ़' देखनेको मिल जायेगी, कभी कल्पना नहीं की

थी। यह अजीब है कि पूरे डेढ़ साल बाद ऐसी ही एक सूनी दोपहरको फ़्लोरेन्समें नदीके एम्बेंकमेण्टपर चलते हुए मैं अचानक ठिठका-सा रह गया था····हूबहू यही तसवीर थी, यही मौन; एक स्लीप-वाकरकी तरह मुझे भ्रम हुआ था कि मैं एक ही समय, संग-संग दो शहरोंके बीच चल रहा हूँ—जिनमें कोई समानता नहीं किन्तु स्मृतिकी किस दीवारसे टकराकर एकका स्वर दूसरेकी प्रतिध्वनि बनकर गूँजने लगेगा, यह पता चलाना बहुत ही मुश्किल है।

पेरिसकी वह दोपहर शायद इसलिए भी याद है कि पहली बार मैंने डरते-डरते उन पत्थरोंको छुआ था जिन्हें किसी भूली-भटकी घड़ीमें मारी आन्तोय नेतने देखा होगा····खिड़कीके बन्द झरोखेसे, जो आज भी बन्द है। कोन्सियर्जरीकी इमारत कुछ इतनी साधारण है कि यदि हमें यह न मालूम हो कि यहीं एक अँधेरे कमरेमें मारी आन्तोय नेत बन्दी थीं, तो शायद हम ऊपर आँख उठाये बिना आगे बढ़ जायेंगे। दरवाज़ा आधा खुला था इसलिए मैं साहस बटोरकर भीतर आँगनमें चला आया था। भारी बोझिल दीवारोंके बीच टाइपराइटरकी खट-खट सुनाई दे रही थी····कभी-कभी चाय या कॉफ़ीके प्यालोंकी खनखनाहट और दूर हवामें गूँजता हुआ मोटरका हॉर्न! बीसवीं सदीकी इन आवाज़ोंके बीच यह विश्वास करना कठिन था कि इन्हीं दीवारोंके पीछे कहीं एक अँधेरा तहखाना होगा, बाहर चीख़ती-चिल्लाती भीड़का कोलाहल····यही वह दरवाज़ा था, जहाँसे सम्राज्ञी अन्तिम बार 'गिलोहित'पर जानेके लिए बाहर निकली होंगी···· सिनेमा स्लाईड्सकी तरह एक-एक तसवीर ऊपर उठती है···· और टाइपराइटरकी कर्कश खटखटाहट तले कटती जाती है····नहीं, इतिहास चाहे कितनी ही ट्रेज़िक क्यों न हो हमारी सदीमें उसका प्रभाव एक सस्ते, सतही 'मेलोड्रामा' से अधिक नहीं हो पाता।

कोन्सियर्जरीकी लाल ईंटोंकी दीवारोंके बीच सहसा एक और दोपहर याद हो आती है····तब मैं वर्साई गया था। मारी आन्तोय नेतका भव्य-

प्रासाद, चन्दनकी लकड़ीकी कुरसियाँ, हरे गुलाबी संगमरमरके स्तम्भ···· बाग़के दोनों ओर घने छायादार वृक्ष थे, जिनकी टहनियाँ यूनानी देवताओं-की मूर्तियोंपर काँपती रहती थीं। कोनेमें एक छोटा-सा झुरमुट है, कहते हैं, महलके कामोंसे ऊबकर सम्राज्ञी सबकी आँख बचाकर इसी झुरमुटके पीछे छिपकर घण्टों अकेली बैठी रहती थीं। आश्चर्य है, इस स्थानपर पहुँचकर मुझे बहुत तेज़ भूख लग आयी। सुबहकी ट्रेनसे पेरिससे आया था और अभीतक कुछ भी नहीं खाया था। आस-पास कुछ भी नहीं, सिर्फ़ पीछे झीलके पास एक ठेलेपर चलती-फिरती दुकान थी, जहाँ पुराने बासी बिस्किटों और केकके टुकड़ोंके अलावा कुछ भी नहीं था। पासमें पैसे हर दिनकी तरह काफ़ी कम थे। पेरिस वापस जानेका किराया अलग करके देखा तो सिर्फ़ इतने ही पैसे बचे थे कि केकका एक बासी टुकड़ा ख़रीद सकूँ। कुछ देर बाद टहलता हुआ मैं उसी झुरमुटके पास आ गया, जहाँ मारी आन्तोय नेत बैठा करती थीं। वहीं घासपर बैठकर मैं केक कुतरने लगा, और तब सहसा लगा जैसे झाड़ियोंसे कोई धीरेसे फुसफुसाकर कह रहा है – लोग मेरी बातका मज़ाक़ उड़ाते थे, लेकिन देखो – यह आदमी जिसके पास रोटीके लिए पैसे नहीं हैं, सचमुच केक खा रहा है।

हर शाम मैं दरवाज़ा खटखटाता हूँ। दुबुआ दरवाज़ा खोलते हैं···· दूसरे कोनेमें उनके मित्र अपनी उँगलियोंको चटखाते हैं। स्वभावमें दुबुआ-से बिलकुल भिन्न। लम्बे, पतले-दुबले, बहुत ही निरीह-सी आँखें। आज-कल पत्नीसे अनबन हो गयी है, इसलिए अपना घर छोड़कर दुबुआके कमरेमें ही सोते हैं। भूखे भेड़ियेकी तरह मैं भोजनपर टूट पड़ता हूँ। प्लूमको अँगरेज़ी अधिक नहीं आती। या शायद आती है और वह बोलते हुए शरमाते हैं, किन्तु क्लैसिकल संगीतका बेहद शौक़ है। जब हम खाना शुरू करते हैं, वह चुपकेसे दुबुआके कमरेमें जाते हैं। ग्रामोफ़ोनपर रेकॅर्ड लग जाता है और वह फिर हमारे संग आ बैठते हैं। रात देर तक बहस

चलती है – नयी फ्रेंच कविताके बारेसे, फ्रेंच राजनीतिके बारेमें। फ्रेंच लोग अकसर बहुत उत्तेजित होकर बहस करते हैं। अँगरेज़ोंके 'अण्डर स्टेटमेण्ट' या स्कैण्डेनेवियन लोगोंके सूक्ष्म व्यंग्यकी उन्हें कोई ज़रूरत नहीं और फिर दुबुआको तो उत्तेजित होनेका जायज़ हक़ है····फ्रेंच होनेके अलावा वह कॅम्युनिस्ट है और उसके अलावा एक प्रतिभाशाली कवि। असन्तुष्ट सबसे हैं····पार्टीकी वर्तमान नीतिसे लेकर अपनी पुरानी कविता तक।

मेज़पर रखी कोन्यांककी बोतल धीरे-धीरे कम होती जाती है···· खिड़कीके बाहर अप्रैलका बहुत नरम, गुदगुदा-सा अँधेरा है और बास्तीकी छतोंके परे पेरिसका आकाश। पासके कमरेसे रेकॅर्डका स्वर हमारे पास चुपचाप बीचकी हवामें सिरसिराता हुआ चला आता है। आयस्ट्राख़के वायलिनसे रातकी नीरवता रिस-रिस करते बहती जान पड़ती है। बीथोवांका सोनाटा नम्बर १ डी० दूर आप १२ प्रागमें ख़रीदा था, पेरिस आते हुए दुबुआके लिए। वह आयस्ट्राख़पर पागल है····हर रात हम इसे ही बजाते हैं।

बहुत देर बाद मैं अकेला रह जाता हूँ, वे सोनेके लिए दूसरे कमरेमें चले गये हैं। अब बीता हुआ पूरा दिन मेरे पास है। सिर्फ़ इस क्षणकी प्रतीक्षा थी। कहीं भीतर एक छोटा-सा थिएटर है। बिस्तरपर लेटते ही परदा उठता है····गुज़रे दिनकी स्मृति-छाया धीरेसे मंचपर आती है···· देखो····

देखो····निकलस द स्तालके रंगोंका निशा-संगीत, मूक स्पेसके भीतर भटकती हुई एक भुतैली-सी अनुगूँज। आकृतियोंपर गिरता हरा आलोक, यह लेज़े हैं, मशीनोंका मांसल स्वप्न, जिसे केवल मौलिक चित्र ही आलोकित कर पाते हैं, लेज़का वह स्वप्न अनुकृतियोंमें कहीं भी दिखाई नहीं देता। रोशनी शिफ़्ट होती है, स्मृति-मंचके दूसरे कोनेमें····यूनेस्कोकी विराट् इमारत····दीवारपर मीरोकी नशीली डगमगाहट – न, यह म्यूरल

नहीं है, यह तितलीका स्फुरण है, जो हवामें एक रहस्यमय गति छोड़कर गायब हो गया है····लूव्रका टेरेस····बहुत ही निखरा दिन। काफ़ी पीते हुए अनेक चित्र याद आते हैं, वात्यूके, वर्मीरके – एक अजीब-सा शान्ति-लोक, जिसमें न रेनाय सान्सका आलोड़न है, न हमारे युगकी नर्वस अकुलाहट····

अकुलाहट ? परदेके पीछेसे इटालियन निर्देशक विस्कोण्टी एक संग अतीतके पन्ने पलटते जाते हैं और सहसा दृष्टि थिर हो जाती है एलिज़ाबेथिन युगके एक नाटकपर। फ्रेंचका एक शब्द भी नहीं समझ सकता किन्तु तीन घण्टे तक आँखें मंचपर चिपकी रहती हैं। ब्रेख्तके बाद पहली बार किसी नाटकने मुझे इस तरह झकझोरा था। शेक्सपियरके किसी समकालीन लेखक – ग्रीन, डैकर, पील ? आज मुझे कुछ भी याद नहीं – का वह नाटक था, निर्देशन विस्कौण्टीने किया था। क्या नहीं था उसमें – इनसेस्ट, ईर्ष्या, एडल्टरी, हत्याएँ, ख़ून, अन्तहीन आक्रोश – इसके बावजूद एक अद्वितीय शार्क (बादमें हम बहस करते रहे थे कि उसका श्रेय विस्कौण्टीको जाता है, या अज्ञात नाटककारको ?) जो नंगी, निपट निरावृत आत्मासे उत्पन्न होती है।

'लॉर्ड, लॉर्ड, दैट आई वर डैड।' वर्जीनिया वुल्फने इन एलेज़ाबेथीन नाटकोंको 'आधुनिक संवेदना'से बहुत दूरकी चीज़ माना है। 'दर्जन-भर स्त्री-पुरुषोंकी मृत्युकी तुलनामें टॉलस्टॉयकी मक्खियोंकी पीड़ा हमें अधिक मर्म-स्पर्शी लगती है।" क्या यह इसलिए नहीं कि इन नाटकोंको इंग्लैण्डके मंचपर लानेका दुस्साहस बहुत कम किया गया है ? क्या यह महज़ संयोग था – एक इटालियन-द्वारा निर्देशित अँगरेज़ी नाटकको फ्रेंच स्टेजपर देख पाना ?

विस्कौण्टीसे अन्तोन्योनी – यह एक लम्बी यात्रा है – कुछ ऐसा ही जैसे हम डॉस्टॉवस्कीकी अभिशप्त भूलभुलैयासे बाहर निकलकर चेखॅवके सूने, गोधूलिसे सने आँगनमें चले आये हों।

पेरिस : एक स्टिल लाइफ़

पेरिस और ला बुई (रात) एकको याद करनेपर दूसरेकी छाया अनायास उभर आती है। सोचता हूँ, बरसों बाद जब मैं पेरिसके इन दिनों-को याद करूँगा, तो हाड़-मांसकी जीवन्त चीज़ोंसे कहीं अधिक सैलूलोयड-पर अंकित छिटपुटे बिम्ब····कैमराकी आँख-द्वारा पकड़े गये हवामें ठिठके चन्द घब्बे ही शेष रह जायेंगे····एक अथाह 'इण्टेलिटी' का क्षणिक सत्य··· अस्पतालमें मरता हुआ मरीज़, खिड़कीसे बाहर खुले आकाशमें हवाई जहाज़की फुसफुसाहट····बीसवीं सदीके एक बड़े शहरकी अन्तहीन ऊब···· अन्तोन्योतीन समूची सदीकी हलचलको एक व्यापक 'सायमलटेन्यटी' में पकड़नेकी कोशिश की है। चित्रकलामें शुरूके चिरीको, (किन्तु बहुत ही सीमित अर्थमें) आधुनिक युगकी ग्रन्थियोंकी चर्चा सब कोई करते हैं – किन्तु हर ग्रन्थिको (जिसमें नारी और पुरुषका सम्बन्ध सबसे महत्त्वपूर्ण है) अपनी सदीकी एक 'इमेज़' देना, एक 'कॉस्मिक' इमेज़ जिसमें हर व्यक्ति 'अकेलेपन' को ख़ुद चुनता है और ख़ुद बाहर आनेके लिए छट-पटाता है – 'एंगुइश' का एक सिनेमाटिक मोज़ायक जो रंगों या शब्दोंसे नहीं बना – सिर्फ़ हवामें एक संकेत, हवाई जहाज़की उड़ान, सूनी गलीमें भागती एक लड़की, एक प्रेमपत्र जिसका लेखक कुछ वर्षों बाद नहीं पहचानता कि ये शब्द उसने ही लिखे हैं – अन्तोन्योनीने इन अलग-अलग झूलते संकेतोंसे यह फ़िल्म बनायी है – ल नुई, जिसे एक शाम मैंने पेरिसमें देखा था।

परदा गिरता है, मैं बिस्तरपर करवट लेता हूँ। नीचे कोई घण्टी बजाता है, सीढ़ियोंपर भारी पदचाप, रेडियोकी खड़खड़ाहट, किसी बच्चेके रोनेका स्वर, पुराने शहरकी आवाज़ें····सोचता हूँ, शहर चाहे प्राग हो या पेरिस, आवाज़ें वही रहती हैं।

दूसरे कमरेमें प्लूमने रेकॅर्डकी साइड बदली है, अब बीथोवांका आत्म-मन्थन नहीं, अब है अँधेरी रातमें गुनगुनाती हुई मोत्सार्टकी अलमस्त विपुलता – और नींद !

पेरिस कितना कम बदला है। इलाइहरनबुर्गके संस्मरण पढ़ते हुए मुझे बार-बार यह विचार आता था कि जो चीजें उन्होंने पचास वर्ष पहले पेरिसमें देखी थीं, वही आज कमोवेश उसी रूपमें मौजूद हैं। तीखे कुहरेमें डूबा हुआ पारदर्शी नगर – एक दूसरेसे सिकुड़े-जुड़े मकान, रेस्तराओंके टैरेसपर धूप सेंकते छात्र-छात्राओंके झुण्ड – सब वही हैं, जो कभी पहले था। 'समूचा शहर एक जंगल है – नीली छायाओंसे घिरा हुआ।' दूर चर्चोंकी मीनारें हैं, चौराहोंके बीच खड़े हैं विजय-स्तम्भ, बुलेवारोंके कोनों-में खड़े आलिंगनबद्ध प्रेमी····। समय वहाँ टिक गया है।

अनायास अलक्सेय तॉलस्तॉयके शब्द याद हो आते हैं। अपनी मृत्युके चन्द महीने पहले उन्होंने इहरनबुर्गसे कहा था, "मेरी आखिरी इच्छा यही है कि मैं पेरिस चला जाऊँ। सेनके किनारेपर एक मकान किरायेपर ले लूँ – अपना अन्तिम उपन्यास मैं वहीं लिखना चाहता हूँ।"

वह जीवित नहीं रहे, किन्तु सेनका किनारा अब भी है, चेस्टनट-के वृक्ष हैं – अप्रैलकी धूपमें भूरे, अलसायेसे। मैं चलता हूँ, ठहर जाता हूँ; पहली बार आकांक्षा होती है – जी-भरकर जीनेकी। जीवित रहना – महज़ साँस लेना····

सियना, रोम, प्राग – हर शहर जैसे एक भूली स्मृति हो – धूपमें चमकती रेत, और अपूर्ण रहस्य····सेनके किनारे इस वासन्ती दोपहरमें लगता है – मरना इतना मुश्किल नहीं है यदि हमारे चारों ओरकी दुनिया इतनी जीवित हो, इतनी इण्टेन्स, जैसी इस क्षण····

पेरिसका लेफ़्ट बैंक, लेटिन क्वार्टर।

"एक बीयर····" वेटर भीतर जाता है। मैं द्यूमें गोतके बाहर बैठा हूँ। आज दुबुआ साथ नहीं है····प्लूमका अपनी पत्नीसे समझौता हो गया है और वह वापस अपने घर चला गया है। मुझे हलकी-सी खुशी होती है····इस शाम मेरे संग कोई भी नहीं है····सिवाय पेरिसके।

और एक बीयर !

सामने पेवमेण्टपर पेरिसकी भीड़ है – तेज़ीसे रास्ता नापते लोग एक बार भी एक दूसरेकी ओर नहीं देखते। जितना मैंने फ्रेंच लोगोंको अपनेमें निर्लिप्त देखा है – दूसरोंकी ओरसे बिलकुल उदासीन – इतना शायद किसी देशमें नहीं। और यदि वे जान जायें कि आपको फ्रेंच नहीं आती, तो उन्हें सचमुच झटका-सा लगता है। यदि हम बिलकुल कोरे हों···· एक शब्द भी समझ पानेमें असमर्थ – तो उन्हें ज़्यादा बुरा नहीं लगता। तब उन्हें महज़ सहानुभूति होती है – जैसे हम एक गँवई-गँवार हों – पुलिस-मैन हवामें हाथ हिलाता हुआ हमें रास्ता बताता है – वेटर मुसकरा कर हमें बीयर देता है। किन्तु मुश्किल उन लोगोंकी है जो फ्रेंच लोगोंपर अपनी टूटी-फूटी किताबी फ्रेंच 'टेस्ट' करना चाहते हैं। तब वे समझकर भी आपकी बात नहीं समझनेका उपक्रम करेंगे – वे आपको हर संकेतसे यह जतलानेकी कोशिश करेंगे कि जो 'भाषा' आप बोल रहे हैं, वह होनोलुलु या टिम्बक्टूकी भाषा हो सकती है, फ्रेंचसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं।

फ्रेंच लोग एक संग बहुत रसज्ञ और रूखे हो सकते हैं।

'बीयर, मोल्यो' में उसी समय बिल चुका देता हूँ, ताकि उसे दोबारा वापस न आना पड़े। बाहरका अँधेरा आस-पासकी कुरसियों, मेज़ों, गिलासोंको धीरे-धीरे सहलाता हुआ-सा जर्मा द प्रेके लम्बे बुलीवारमें फैल गया है। मूक आवाज़ें हैं – बीयर पीते हुए अचानक उनकी आहट पास चली आती है। युद्धके पहलेका युरॅप और द्यूमें गाते – जहाँ इस क्षण मैं बैठा हूँ। 'जुलाईके दिनोंमें हम रोशनियोंके नीचे बैठते थे, हमारी आँखें एक-दूसरेपर टिकी रहती थीं – "ऐण्ड नन ऑव आवर लुक्स वर लास्ट।"

मैथ्यूका कैफ़े द्यू मैगोत। नींदसे बोझिल आँखें, राखसे सफ़ेद चेहरे···· चेकोस्लोवेकिया, सिर्फ़ एक शब्दपर युरॅपकी नियत टिकी थी, शान्तिकी आखिरी रात – एक पागल-सी हँसी।

अतीतकी आवाजें पैरोंके नीचे हैं, मेजोंके बीच, नवागंतुककी थकी आँखोंमें – जैसे सब एक लाटरीके खुलनेकी प्रतीक्षा कर रहे हों····

फ्रेंच अस्तित्ववादियोंके इस कैफ़ेमें आज सिर्फ़ अमरीकी टूरिस्ट हैं। जिनके लिए द्यू मैगोत वैसा ही आकर्षण रखता है जितना आइफ़ल टावर या लूव्र। मैं भी महज़ टूरिस्ट हूँ – यह पेरिसकी गर्म शाम है और मैं बीयर पी रहा हूँ। कैफ़ेकी छतके परे सां जर्मां दे प्रेका चर्च दिखाई देता है – पेरिसका शायद सबसे पुराना चर्च। मैं भूल नहीं पाता कि मैं प्रागसे आया हूँ – मेरे लिए इस शाम दोनों ही शहर एक अदृश्य ढंगसे खुद मेरी नियतिसे जुड़े जान पड़ते हैं। यह शान्तिकी एक शाम है, कोई कल्पना भी नहीं कर सकेगा कि पन्द्रह वर्ष पहले इसी कैफ़ेमें किसी फ्रेंच युवतीने अपने प्रेमीसे आश्चर्यसे पूछा होगा – क्या सचमुच हम चेकोस्लोवेकियाके लिए युद्धमें जायेंगे? मैं तो यह भी नहीं जानती, नक़्शेमें प्राग कहाँ है?

आज – बीस वर्ष बाद कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता।

आख़िरी धूपके रेनीले कण सेण्ट जर्मांके चर्चपर उड़ते हैं – मैं चलने लगता हूँ द्यू बोनापार्टकी तरफ़। हवा वासन्ती गन्धसे बोझिल है और हर चीज़ एक तराशी हुई सिलहटकी तरह उभर आयी है। यह आख़िरी शामके कुछ लमहे हैं····कुछ देर बाद मैं दुबुआके संग बैठा हूँगा – रेड वाइन पीते हुए हम आयस्ट्राख़को सुनते रहेंगे – चुपचाप, अपनेमें सिमटे हुए। मैं उसे कभी इस शामके बारेमें नहीं बता सकूँगा जो मैंने सिर्फ़ एक अकेली बीयरके संग गुज़ार दी है। सोचता हूँ, हम हमेशा एक पुराने शहरमें आते हैं, लेकिन हर दिन गुज़रनेके संग वह रहस्यमय ढंगसे नया होता जाता है और आख़िरी दिन जब उसे छोड़ने लगते हैं, तब लगता है कि सचमुचमें पहला दिन यही है, जब हम यहाँ आये हैं।

मुझे हमेशा दुःख रहेगा कि पेरिसमें मैं इतने कम दिन रह सका।

आज याद करता हूँ, तो उससे जुड़ी हुई या उससे अलग – कुछ अपनी ही बिम्ब छवियाँ इकट्ठा कर पाता हूँ – लेकिन बहुत कोशिश करनेके बावजूद उसकी एक 'इमेज', एक पूरा चेहरा नहीं पकड़ सकता – जैसे कोई व्यक्ति सिर्फ़ एक रात किसीके संग गुज़ारकर आगे चला जाये और बादमें सोचनेपर केवल याद कर सके – सिर्फ़ आँखोंका रंग, बालोंकी एक ख़ास ख़ुशबू, देहकी खोजती काँपती मूक आवाज़ और चन्द फ़िज़ूलके शब्द। किन्तु इन सबको जोड़ता हुआ एक मुकम्मिल 'दर्द' कभी भी वापस लौट नहीं पाता – हूबहू वैसा ही जैसा हमने उस रात जाना था। क्या यह ग़लत होगा यदि आज इस शहरके पुराने मकानोंके बीच चलता हुआ मैं पेरिसके उस एक व्यक्तिकी फुसफुसाहट कानोंमें सुन सकूँ जिसने अतीत और समयके रहस्यको जितनी मार्मिक सच्चाईसे नापा था, उतना शायद किसीने नहीं। इसलिए भी मैं उन्हें इस आखिरी शाम याद करता हूँ क्योंकि पेरिस एक शहर है – जहाँ हम चुपचाप सेनके किनारे चलते हुए अनायास बीती हुई ज़िन्दगीके बारेमें सोचने लगते हैं, जैसे इस शहरका हर दिन बीते हुए सालका आखिरी दिन हो – मोम-सा सफ़ेद, चेस्टनटकी छाँहमें उजले पानी-सा ख़ामोश····और तब मुझ-जैसे यायावरको – जो बरसों घरसे दूर अजनबी स्थानोंमें रहता आया है, यह जानकर आश्चर्य नहीं होता कि जिन-जिन स्थानोंमें हम रहते आये हैं, वे 'स्पेस' की दुनियामें नहीं थे। दरअसल हर स्थान एक छोटा-सा 'स्लाइस' था – हमारे बीते हुए समयकी एक-एक इम्प्रेशनसे जुड़ी शृंखलाका भाग। एक ख़ास 'इमेज' की स्मृति सिर्फ़ एक बीते हुए लमहेका दुःख है····और पुराने घर, सड़कें, गलियाँ उतनी ही क्षणभंगुर हैं, जितने – ये वर्ष।[1]

■

१. मार्सल प्रूस्त।

वियना

वियनाकी एक दोपहर''''उनींदी अलमारी-सी धूपमें नहरका मटियाला जल झिलमिलाता है। आज ख़ाली हूँ, रात तक। और सारा दिन कल भी। हॉस्टलसे आज सुबह ही निकल आया था। बाहर फुटपाथपर पेड़ोंके झुरमुटके बीच एक आउट डोर कैफ़ेमें कॉफ़ी पी थी। फिर देर तक काल-सकिर्चेके चर्चमें बैठा रहा, जहाँ न जाने कितनी पुरानी सदियोंका मौन जमा था। स्टेन-ग्लासके पीछे वियनाका मेघाच्छन्न आकाश! भीगी करुणा-सा मलिन आलोक गोथिक मूर्तियोंपर चमक रहा था। करुणा भी वही, समयकी तलछटमें शाश्वतका बोध, जो सुख-दुःखसे ऊपर उठकर एक अजीब-सी उदासीमें टिक जाता है। लगता था, जैसे चर्चकी भग्न-पुरानी दीवारोंके बीच जो घनी शान्ति आ सिमटी है, हम ख़ुद उसका जुज़ बन गये हैं।

चर्च ख़ाली था – उतना ही ख़ाली जितने यूरॅपके अन्य पुराने चर्च, जहाँ सिवाय कुछ विदेशी टूरिस्टोंके कोई दिखाई नहीं देता। एक बूढ़ी स्त्री मोमबत्तियोंके आगे बैठी थी। मैं एक पिछली ख़ाली बेंचपर बैठ गया हूँ। छतपर, दीवारोंपर, ऑल्टरके आगे – चारों ओरसे पुराने टेस्टामेण्टके सन्तोंकी आँखें हमपर झुकी हैं। ऑल्टरपर रखी मोमबत्तियोंके मद्धिम आलोकमें अँधेरेकी तहें चुपचाप खुल गयी हैं – जैसे शान्त संगीतके कुछ स्वर बासी हवामें तिरते हुए मोमबत्तियोंकी लौके इर्द-गिर्द चुपचाप फड़-फड़ा रहे हों''''बाहर वियनाकी सड़कें हैं, ट्रामकी घण्टियों और नहरका ताम्रवर्णी जल। चर्चसे बाहर आकर सब कुछ बहुत चमकीला, बहुत उज्ज्वल-सा दिखने लगा है। मैं स्टाड्ट पार्कके भीतर चला आया हूँ।

आज छुट्टीका दिन है और सैकड़ों वियना-निवासी पार्कके बीच रेस्तराँकी कुरसियोंपर बैठे धूप सेंक रहे हैं। मैं धीरे-धीरे बीयर पी रहा हूँ – मेरी कुरसीके बिलकुल सामने जोहानस्ट्रासकी मूर्ति है – हाथमें वायलिन पकड़े हुए और वह अपनी स्वप्निल आँखोंसे मुझे – या शायद मुझसे परे वियनाके आकाशको देख रहे हैं। कितना अजीब-सा लगता है यह शहर। सड़कके कोनोंपर, बागोंके भीतर, गली-कूचोंके नुक्कड़पर – हर जगह हम बीचोवाँ, ब्राह्मस और मोत्सार्ट-जैसे महान् संगीतज्ञों और रुवेन्ज़ु राफ़ाल या माइक्लेंजलो-जैसे चित्रकारोंकी मूर्तियाँ देख लेते हैं। आज सुबह कितनी देर तक मैं बीचोवाँकी मूर्तिके आगे खड़ा रहा था – और अब जोहानस्ट्रॉस।

वियनाकी बीयर····कार्लसकिर्चेके चर्चपर कबूतरोंका झुण्ड उड़ा जाता है। बीयर पीते हुए मैसाकेलाण्डाकी पगली रातें याद आती हैं, जहाँ हम फेस्टीवलके दौरान ठहरे थे। दिन-भरके कार्य-क्रमके बाद जब हम थककर चूर हो जाते थे, तो सिर्फ़ इतनी शक्ति रह जाती थी कि डायनिंग-हॉलमें जाकर रातकी अन्तिम घड़ियोंमें कुछ बीयर पी सकें। हम जिस मैदानमें ठहरे थे, वहाँ अभी कुछ दिन पहले अन्तर्राष्ट्रीय-प्रदर्शनी हुई थी। रातके समय सारे मैदानपर बत्तियाँ जगमगाने लगतीं। प्रतिनिधियोंके तम्बुओंमें एकोर्डियनपर हर देशके गाने गाये जाते। लगता था जैसे हम अचानक किसी 'फेयरी लैण्ड'में आ गये हों।

वह समारोहकी दूसरी रात थी। मैसाकेलाण्डाके हॉलमें इतनी भीड़ थी कि एक मेज़से दूसरी मेज़ तक जानेमें दर्जनों नये दोस्त बन-बन जाते, बीसियों बार हाथ मिलाया जाता, हर मेज़से थोड़ी-सी बीयर या रेड वाइन पीनी पड़ती, नोटबुकपर नाम और पते लिखने पड़ते। बार-बार कुछ मेज़ोंको अलग कर दिया जाता, ताकि बीचकी खाली जगहमें अलग-अलग देशोंके प्रतिनिधि एक दूसरेके संग नाच सकें। यह एक समस्या थी कि नाचते हुए जोड़ोंके बीच कैसे रास्ता बनाया जाये। पियानोपर एक नीग्रो हर पन्द्रह मिनिट बाद एक नयी धुन बजाने लगता था और हर नयी धुनके

संग बीयर पीते हुए कुछ लोग कुरसियाँ धकेलकर नाचमें शामिल हो जाते।

यह एक गरम रात थी। मुझे उस हॉलमें बैठे घण्टों बीत चुके थे। मैं हँस रहा था, पी रहा था और बहुत-से लोगोंके बीच बैठकर ज़ोर-ज़ोरसे बोल रहा था। उस भीड़में बहुत-से लोग थे – इराक़ी, अमरीकन और पोलिश। जब भाषा हमारा साथ नहीं देती थी, तो हम इशारोंसे बात करने लगते, जब इशारोंसे भी अर्थ समझमें नहीं आता था, तो हम सिर्फ़ हँसने लगते थे।

और तब मैं अचानक उठ खड़ा हुआ। मैं ख़ाली गिलास लेकर काउण्टरसे बीयर लेने जा रहा था। लेकिन मैं काउण्टर तक नहीं जा सका। मेरे इर्द-गिर्द बहुत-सी आवाज़ोंका शोर था। पियानोका जॉज संगीत नाचते हुए पैरोंपर थिरकता हुआ उस बोझिल, नशीली हवामें बार-बार टूट जाता था, बार-बार उफनता हुआ गरम साँसोंमें बिंधा जाता था।

मैं कोनेमें खड़ा रहा। मुझे लगा जैसे बिजलीके तमाम बल्ब अपने-अपनेमें सिकुड़-से गये हैं, उनसे बाहर आती हुई रोशनी फूलकर छोटे-छोटे गुब्बारोंमें फैल गयी है और ये गुब्बारे किसी भी क्षण फूट सकते हैं। लगा जैसे कुरसियोंके कोनोंका तीखापन हवामें धीरे-धीरे घुलने लगा है, हर चीज़का सतही-ठोसपन अपनेमें ही रीता-सा हो गया है और आवाज़ोंको सुनकर यह नहीं लगता था कि कोई उन्हें बोल रहा है, बल्कि ऐसा भ्रम होता था कि मानो वे अशरीरी छायाओं-सी तिरती हुई हॉलमें अपने-आप घूम रही हैं।

रातकी उन चन्द आख़िरी घड़ियोंमें एक बहुत पुरानी, बहुत धुँधली-सी तसवीर गुज़र गयी। वह तसवीर उस वियनाकी स्मृतियोंसे जुड़ी थी जब प्रथम विश्व-युद्ध आरम्भ नहीं हुआ था – जिसे स्टीफ़न ज्विगने वर्ल्ड ऑव यस्टर डेकी संज्ञा दी थी। अपने एकान्त क्षणोंमें मैंने कितनी बार यह स्वप्न देखा था। पतझरके दिनोंमें वियनाकी एक शाम – मैं सड़कके एक

कोनेमें खड़ा हूँ। सामने कुछ फ़ासलेपर ऑपेरा-हाउस है, एक विचित्र रहस्यमय स्थान। मेरे हाथोंमें फूलका एक गुच्छा है और उसकी भीनी सुगन्ध मेरी नस-नसमें समा गयी है। गाड़ियाँ आती हैं, कुछ लोग उतरते हैं और ऑपेरा-हाउसमें चले जाते हैं। वह वियनाकी एक बहुत निस्तब्ध शाम है और मैं गाड़ियोंके पीछे भागते हुए पतझरके पत्तोंको देखता रहता हूँ। मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ – लगता है, मैं चिरन्तन कालसे उस क्षणकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ, जब ऑपेरा-हाउसकी सीढ़ियोंपर मैं वियनाकी सुप्रसिद्ध ऑपेरा-अभिनेत्रीके हाथोंमें फूलोंका गुच्छा पकड़ा दूँगा और वह एक क्षण अपनी विस्मित आँखोंसे मुझे देखेगी – देखती रहेगी और मुसकरा देगी।

बरसों पुराना यह स्वप्न (जो अब कितना बचकाना-सा लगता है। मैसाकेलाण्डाकी उस रातको एकदम कितना वास्तविक-सा हो उठा था। मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि हमारे भीतर कितनी अस्पष्ट लालसाएँ, कितने धुँधले स्वप्न, किसी अनुकूल क्षणकी प्रतीक्षामें दबे रहते हैं (स्वप्न – जो किसी रात अपने कमरेकी चारदीवारीके भीतर एक रेकॅर्ड सुनते हुए आ समाया था, लालसाएँ – जो किसी किताबको पढ़ते हुए अपनी एक तसवीर हमारे अतीतकी अल्बममें चिपका गयी थीं), और फिर बरसों बाद अपने देशसे हज़ारों मील दूर किसी अजनबी शहरमें वह क्षण अचानक आ जाता है और हम स्तब्ध-से अतीत और वर्तमानकी सीमारेखापर ठिठके-से रह जाते हैं····

यह सब कैसे हुआ था? क्या ज़्यादा बीयर पीनेके कारण? या कुछ घटनाओंका आकस्मिक संयोग? मुझे याद है। मैं काउण्टरके पास खड़ा था। मेरे हाथमें बीयरका गिलास था, जो बार-बार काँप उठता था। मुझे लग रहा था जैसे पियानोका संगीत, भीड़में नाचते हुए प्रतिनिधि, नीग्रोकी स्वप्निल आँखें और भीड़की उलझी आवाज़ें नीली धुन्धकी तरलतामें डूब गयी हैं। मैं जानता था बीयर लेनेके लिए मुझे सिर्फ़ दो क़दम चलना है,

किन्तु मैं यह भी जानता था कि ये दो क़दम मैं किसी हालतमें भी नहीं चल सकूँगा। और तब मैंने सुना, पीछे से कोई कह रहा है····

"हैलो, ऐन इण्डियन ?"

"या", मैंने कहा।

"वाण्ट सम बीयर"

"मे वि सम"

उसने अपने गिलाससे थोड़ी-सी बीयर मेरे गिलासमें उंड़ेल दी। उसका उच्चारण अमरीकी लड़कियों-सा था। मुझे यह जानकर ख़ुशी हुई कि उसके संग इशारोंसे बात नहीं करनी पड़ेगी।

'प्योर इण्डिया' उसने अपना गिलास हवामें उठाया और मेरे गिलास-से छू दिया···· प्योर····? मेरी प्रश्न-भरी निगाहें उसके चेहरेपर उठ गयीं – मैंने सोचा था, वह इंग्लैण्ड या अमरीका कहेगी। उसने फिर अपना गिलास उठाया और धीरेसे कहा – "कैनाडा"।

न जाने क्यों मैं हँसने लगा। फिर हम बातें करने लगे, जिसका अब एक शब्द भी मुझे याद नहीं है। शायद हम वियनाके बारेमें बातें कर रहे थे। या शायद हम नाचते हुए जोड़ोंके बारेमें अपनी राय प्रकट कर रहे थे – या शायद हम चुप थे और लग रहा था जैसे हम बातें कर रहे हैं (जैसा अकसर ज़्यादा पी लेनेके बाद महसूस होता है।)

फिर हम दोनों लोगोंके बीच अपनी बीयर बचाते हुए उसके टेबलके पास पहुँच गये। वहाँ एक और लड़की कुछ इराक़ी प्रतिनिधियोंके संग बैठी थी।

"यह एलिस है और यह····" मैंने अपना नाम बताया और एलिसने अपने इराक़ी मित्रोंसे (जो बहुत कम अँगरेज़ी समझते थे) मेरा परिचय कराया।

"एलिस इन वण्डरलैण्ड" मैंने धीरेसे कहा। एवलिन, जिसके संग मैं यहाँ आया था, मुसकराने लगी।

"एलिस इराक़ियोंके लिए क्रेजी है – कोई ऐसा इराक़ी डेलीगेट नहीं है, जो उसे नहीं जानता।"

"ओ यू शट अप" एलिसने हँसाते हुए कहा, फिर वह आगे झुक आयी और धीरेसे कहा, "एवलिन इज़ ए पेण्टर यू नो? जब तुम काउण्टरके पास खड़े थे, तो उसने काग़ज़पर तुम्हारा स्केच बनाया – एवलिन ज़रा दिखाओ।"

एवलिनके होंठ गिलाससे ढके हैं और वह मुसकराते हुए अपना सिर हिला रही है। हमारा परिचय अभी कुछ देर पहले ही हुआ था, किन्तु हम इस तरहसे घुल-मिलकर बातें कर रहे हैं मानो बरसोंसे एक-दूसरेको जानते हैं। वातावरण ही कुछ ऐसा है कि हर प्रकारकी दूरी या औपचारिकता निरर्थक-सी लगती है – हम कमसे कम लमहोंमें एक-दूसरेको ज़्यादासे ज़्यादा जान लेना चाहते हैं, मानो हमें डर लग रहा है कि न जाने कब कोई इस चीज़में खो जायेगा और फिर हमेशाके लिए दिखाई नहीं देगा।

"नॉट डॉन्सिंग?" एलिसने मेरी ओर देखा।

"और तुम?"

"मुझे बीयर ज़्यादा अच्छी लगती है।" एलिस कुछ उम्रमें ज़्यादा बड़ी है, लेकिन उसकी मुसकराहटमें बच्चों-सी निरीहता झलकती है। एवलिन एक इराक़ीके संग नाचनेके लिए कुरसीसे उठ खड़ी हुई – किन्तु उसके हाथमें बीयरका गिलास अब भी झूल रहा है।

"मुझे डर है, मेरे जानेके बाद तुम सारा गिलास खाली कर दोगे।" उसने मुझसे कहा।

"गुडलक एवलिन" एलिसने कहा।

पियानोपर नीग्रो युवकने एक नयी धुन छेड़ दी और एवलिन कुछ देरके लिए भीड़में खो-सी गयी।

मैं और एलिस बातें करने लगे हैं। वह कैनाडामें सोशल वर्कर है और पहली बार यूरॅप आयी है।

"लगता है यह मेरा अपना फेस्टोवल है।" उसने कहा।

"कुछ दिनोंके लिए एवलिनके संग साल्जवर्ग जाऊँगी, फिर स्पेन और फिर होम····स्वीट होम····'

"यहाँ मैंने तुम्हें आज पहली बार देखा – क्या तुम रोज़ आती हो?"

"हाँ····हर रात। जानते हो कैनाडामें मैं इतने लोगोंसे इस तरह खुल-कर मिल नहीं पाती थी – यहाँ मैंने अभीतक पचास इराक़ियोंको मित्र बनाया है। हम हर रोज़ सोचते हैं, आज किस देशके प्रतिनिधिको फ्रेट-नाइज़ किया जाये – वट यू आर द फ़र्स्ट इण्डियन।"

डान्स खत्म हो चला था और एवलिन हाँफती हुई हमारे पास आकर बैठ गयी।

"फ्रेटर्नाइजिंग अगेन?" उसने एलिससे कहा और हँसने लगी।

"जानते हो युरॅप आकर एलिसके सारे इनहिबिशन्स दूर होते जा रहे हैं। कैनाडामें यह घरसे बाहर नहीं निकलती थी।" एवलिनने कहा।

"ओ – लाँग लिव वियना।" हम तीनोंके गिलास ऊपर उठ गये। भीड़ छँटने लगी थी – हम हॉलसे बाहर निकलकर मैसाक्लाण्डके मैदानमें आ गये थे। गेटपर समारोहके रंग-बिरंगे झण्डे हवामें फरफरा रहे थे। सारे मैदानमें विभिन्न देशोंके प्रतिनिधि अपने-अपने तम्बुओंके बाहर खड़े थे। कुछ लोग गिटारपर स्पेनिश गीतोंको गाते हुए हमारे पाससे गुज़र गये।

"एलिस इन वण्डर लैण्ड।"

ऊपर वियनाका आकाश था – दूर-दूर तक फैला हुआ। हम चुपचाप अँधेरेमें चलते रहे।

"शायद किसी दिन हम इण्डिया आयें – क्यों एलिस?"

"इण्डिया"....एलिसने सोते हुए स्वरमें कहा, "हाऊ फॉर इट सीम्ज़।"

"जैसे हम सब लोग रूटलेस-जेनरेशनके लोग हों। रातको अजनबी लोगोंके संग नाचना, देर तक बीयर पीना और लगता है जैसे हम कुछ भी कर सकते हैं...."

"ओ एवलिन – यू ऐण्ड योर हैमिंग्वे!" एलिस हँसने लगी।

हम कैनाडाके तम्बूके सामने खड़े थे। मुझे अभी कुछ और आगे जाना था। भारतीय प्रतिनिधियोंका पड़ाव मैदानके दूसरी ओर था।

हम कुछ देर चुपचाप खड़े रहे। यह कहना असम्भव था कि हम फिर कभी मिल पायेंगे। अचानक मैं चौंक गया – एलिसने धीरेसे मेरा हाथ पकड़ लिया। "जानते हो, मैं तुम्हारा नाम भी भूल गयी।" और उसने अपनी नोट-बुक मेरे आगे कर दी।

"लिखनेसे अच्छा रहेगा – यू आर द ओन्ली इण्डियन वी हैव मेट।"

हम तम्बूके पास चले आये, जहाँसे मद्धिम आलोककी एक रेखा बाहर मैदानमें खिच आयी थी। मैंने अपना नाम लिखकर नोट-बुक उसके आगे बढ़ा दी – किन्तु उसने उसे पकड़ा नहीं। वह प्रतीक्षा-भरी आँखोंसे मुझे देखती रही। उस क्षण मुझे पहली बार आभास हुआ कि एलिसकी आँखें बहुत नीली और गहरी हैं, जैसे बढ़ती हुई उम्रकी छायाने अभीतक उन्हें पूरी तरह घेरा न हो, और उनमें बच्चों-सी अजीब निरीहता है।

"एलिस।" मैं अपने नामके नीचे उसकी नोट-बुकके खुले पन्नेपर लिखने लगा : Alice let us pray that here is Europe, both of us may succeed is over caning our inhibitions'

नोट-बुक मैंने उसके हाथोंमें पकड़ा दी। कुछ देर तक हम तीनों चुपचाप मैसाकेलाण्डाकी जगमगाती रोशनियोंको देखते रहे।

वियनाके फैले विस्तृत आकाशके नीचे मैं चलने लगा। एक-एक करके पुरानी स्मृतियाँ जगने लगीं, मास्कोका क्रेमलिन, बुदापेस्त, जहाँ बुदाकी

पहाड़ीसे झाँककर बहती हुई डेन्यूबको देखा था – ब्लू डेन्यूब, और अब वियनाकी रहस्यमय गलियाँ, जिनमें चलते हुए मोत्सार्टका संगीत और आर्थर श्लीज़रकी कहानियाँ साकार-सी हो उठती हैं। सचमुच ये अद्भुत गरमियोंके दिन थे – कई लोगोंसे सुना है कि पिछले दो सौ वर्षोंमें गरमियों-के इतने लम्बे और खूबसूरत दिन युरॅपमें नहीं आये। लगता है, जैसे सारे युरॅपमें एक रंग-विरंगा फ़ेस्टीवल मनाया जा रहा है और वियनाका उत्सव इसका ही एक छोटा-सा भाग है। मैं सोचने लगा – इन हज़ारों लड़के-लड़कियोंके बारेमें, जिन्हें मैंने हर शहरके यूथ-होस्टलों और स्टूडेण्ट्स क्लबोंमें गाते-नाचते देखा था। लड़के कॉर्डरायकी जैकेट और लड़कियाँ नीली जीन्स पहने, कन्धोंपर कैमरा लटकाये और हाथमें नये अजनबी शहरका नक़्शा लिये, हज़ारोंकी संख्यामें दिखाई दे जाते थे – म्यूज़ियमोंमें, आर्ट गैलरियोंमें, वियना, मास्को और लन्दनके चौराहोंपर। अलग-अलग भाषाओंके कुछ सुन्दर-से शब्द हमेशाके लिए एक उदास-सी स्मृति छोड़ जाते थे, लाखोंकी तादादमें एक देशसे दूसरे देशकी ओर पिक्चर पोस्टकार्ड सफ़ेद शान्ति-कपोतोंकी तरह उड़ा दिये जाते थे।

हाँ, सचमुच ये गरमीके अजीब दिन थे····हर जगह हवामें शान्तिकी अफ़वाह थी। लड़ाई खत्म होनेके बाद पहली बार लगा था जैसे शीत-युद्धकी बर्फ़ धीरे-धीरे पिघलने लगी हो। मैंने पहली बार वियनामें पॉल रॉब्सनको विशाल जनसमूहके बीच गाते हुए सुना था। बादमें लन्दनके ट्रिफ़ाल्गर-स्क्वायरके उड़ते हुए कबूतरोंके नीचे बर्टेण्ड रसेलकी गहरी आँखोंको देखा जिसमें शान्तिका वही आलोक था, जो पॉल रॉब्सनकी आवाज़में छिपा था।

वियना और लन्दनकी इन सभाओंमें युवक और युवतियोंके चेहरे बदल गये थे, लेकिन उनके नारोंमें, उनकी मुसकराहटमें और हँसीमें कुछ ऐसा था, जो आज भी बहुत कुछ एक जैसा था – एक ऐसी ही धड़कन, गरम और बहुत ही कोमल।

उस रात अपने तम्बूमें लेटा हुआ मैं, यही सब कुछ सोचता रहा···· एलिसके बारेमें बुदापेस्टकी डेन्यूबके बारेमें – और तब मुझे लगा – जैसे एलिसकी आँखें वैसी ही नीली थीं जैसे डेन्यूबका रंग। एक अजीब-सी भावना मनमें फिरने लगी। मैं सोचने लगा बीस या तीस वर्षों बाद जब कभी कोई इन सुनहरी गरमियोंकी चर्चा करेगा तो मैं अपनेसे कह सकूँगा – "हाँ, इन गरमियोंमें मैं युरॅपमें ही था।"

■

चीड़ोंपर चाँदनी

"इन पहाड़ोंके पीछे न जाने क्या होगा ?" जब हम छोटे थे, तो अपने घरके बरामदेमें खड़े होकर अकसर एक-दूसरेसे यह प्रश्न पूछा करते थे। उन दिनों छुट्टी लेकर पहाड़ोंपर जानेकी ज़रूरत महसूस नहीं होती थी — वे हमेशा हमारे संग थे, हमारे खेलोंमें, हमारे सपनोंमें। तब पहाड़ोंकी शक्ल, उनकी भाव-भंगिमा बिलकुल अलग, दूसरे क़िस्मकी थी, जैसे माँकी शक्ल जो बच्चोंकी आँखोंमें होती है, वह दूसरोंके लिए नहीं होती। उसकी पहचान ही अलग होती है।

शिमलेका वह घर बरसों पहले छूट चुका है, उसके बाद न जाने कितने छोटे-बड़े हिल-स्टेशनोंके होटलोंमें रहना पड़ा है, किन्तु आज भी जब किसी अकेली, निर्जन पगडण्डीपर चढ़ता हुआ थामके किसी अनजाने द्वीपपर साँस लेने ठिठक जाता हूँ, तो आँखें असीम विस्मयसे भर उठती हैं। पहाड़ोंकी अलंघ्य, अभेद्य ऊँचाइयोंकी तरह इस प्रश्नकी रहस्यमयता आज भी वैसी ही बनी है, जैसी कभी बरसों पहले बचपनमें थी।

टॉमस-मानका 'मैजिक-माउण्टेन' बहुत बादमें पढ़ा, किन्तु जब पढ़ा तो लगा जैसे इसे बहुत पहले कहीं पढ़ा था। स्विट्ज़रलैण्डकी पहाड़ी चोटियाँ शिमलेसे अलग हैं — वहाँ कभी नहीं गये, उन्हें कभी नहीं देखा, किन्तु जिस 'मैजिक-माउण्टेन' की बर्फ़ीली गुफाओंमें खोकर हैंस-कैस्ट्रपने विराट् सन्यकी उपलब्धि की थी, उसकी क्षणिक, उड़ती हुई अनुभूति कितनी बार बचपनमें हुई है, क्या उसका लेखा-जोखा करना आज सम्भव है ?

रातको सोते समय आकाश साफ़ होता था। दिसम्बरके निविड़, गहन अन्धकारमें दूरकी पहाड़ियाँ [illegible] धूमिल रेखा-चित्र-सी स्तब्ध,

कुछ देर बाद धूप निकल आती है – नीले चमचमाते आकाशके नीचे बर्फ़से ढकी पहाड़ियाँ धूप सेंकनेके लिए अपना चेहरा बादलोंके बाहर निकाल लेती हैं – चेहरा जो बर्फ़का 'मोज़ाइक' है – पहाड़ियोंके ऊँचे-नीचे 'पोर्टलेज़' पर टिका हुआ – हिमार रंग-बिरंगे पत्थरोंसे विशाल हिम-खण्ड चमक रहे हैं। दिन-भर इन चोटियोंपर पीले या मलेटी रंगके बादलों-का मेला लगा रहता है – 'लाइट-शो'-सा हर बादल हवामें तिरता हुआ अपने सुनहले पंखोंसे बर्फ़के इस 'मोज़ाइक' को पोंछ जाता है। बर्फ़ और बादलोंका यह चिरन्तन खेल नारकण्डा, डलहौज़ी, शिमला – हर जगह देखा है, किन्तु गुलमर्गकी उस चाँदनी रातमें जो मूर्ति-सा अचानक देखा था, वह आज भी नहीं भूल पाया हूँ।

शुरू अप्रैलके दिन थे। हवामें चाकूकी पैनी धार-सा तीखापन था। टूरिस्टोंका ताँता अभी आरम्भ नहीं हुआ था और जिस कमरेमें मैं ठहरा था, उसके अलावा होटलके सब कमरे ख़ाली पड़े थे। आधी रात अचानक हवाका वेग तेज़ हो गया। मैं दरवाज़ा बन्द करने उठा हूँगा – लेकिन आँख खुलते ही मेरे भीतर एकाएक सब कुछ शान्त, निस्पन्द-सा हो आया था। चारों ओर एक घना-सा सन्नाटा घिर आया था – कभी-कभी ख़ाली कमरोंके दरवाज़े, खिड़कियाँ, हवाके झोंकोंसे खड़खड़ा उठते थे और फिर सब कुछ, छोटी-बड़ी, जानी-अनजानी आवाज़ें एक अथाह शान्तिमें डूब जाती थीं।

कमरेमें हलकी, फीकी-सी चाँदनी बिखर आयी थी। आँखें खिड़कीके पार बीचके तरल अँधेरेको लाँघती हुई खिलनमर्गकी हिमाच्छादित चोटियों-पर जा टिकीं। चाँदनीके छुई-मुई-से झिलमिलाते कण ऊपरसे नीचे तक बर्फ़पर फिसल रहे थे। सब कुछ एक-दूसरेमें चुपचाप सिमट आया था। लगता था, जैसे संगमरमरके सफ़ेद चूरेकी हलकी-हलकी बारिश हो रही हो। एक पीला उजला-सा आलोक होटलके बाहर पीली-सूखी घासपर फैलता हुआ हवामें बार-बार काँप उठता था। बादल, बर्फ़, चाँदनी···

तीनोंके अलग-अलग रंग थे, अलग-अलग लय थी। उस क्षण मुझे लगा था मानो किसी मायावी संगीतके चमकीले सुरोंने समस्त वन्य-स्थलको अपने स्वप्निल, निस्पन्द पंखोंके भीतर समेट लिया हो – लगा था जैसे चाँदनोके रेशमी डोरोंसे खिचती हुई खिलनमर्गकी बर्फ़ीली पहाड़ियाँ होटलके कमरेके पास तक सरक आयी हों और खिड़कीके बाहर हाथ फैलाते ही मैं उन्हें छू लूँगा।

पहाड़ोंपर चाँदनीका यह अद्‌भुत माया-जाल मैंने पहली बार देखा था और एक अलौकिक विस्मयमें मेरी आँखें अनायास मुँद गयी थीं। उस रात मुझे लगा था कि पहाड़ोंमें भी साँपकी आँख जैसा एक अविस्मृत, जादुई सम्मोहन होता है····एक भुतैला-सा सौन्दर्य, जो एक साथ हमें आतंकित और आकर्षित करता है, जिसके मोह-पाशमें बँधना उतना ही यातनामय है, जितना उससे मुक्त होना।

जाखूकी पहाड़ीसे सटा साढ़े सात सौ फ़ीटकी ऊँचाईपर हमारा स्कूल था। हर शाम बस्ता झुलाते हुए हम पहाड़ी छायाओंके संग नीचे उतरा करते थे। आज हम बहुत नीचे उतर आये हैं, बचपनकी वह बुलन्दगी न जाने कहाँ पीछे छूट गयी है। उस शाम नौकुछियासे भीमताल आते हुए उस एकाकी निर्जन रास्तेपर अचानक उन पुरानी चिर-परिचित छायाओंसे भेंट हो गयी और मैं मन्त्रमुग्ध-सा खड़ा रहा। ढलती शामकी फीकी सुनहली आभा भूरी पहाड़ियोंकी ऊँची-नीची रेखाओंपर उतर आयी थी। उनके पीछे किन्तु उनसे सटी हुई एक अन्य पर्वत-शृंखला अधखुले पंखे-सी ऊपर जाकर टेढ़ी-सी हो गयी थी मानो कोई भीमकाय वनैला जन्तु अपनी गरदन उठाकर आकाश निहार रहा हो। दो पहाड़ियोंके बीच गाँवकी सलेटी छतें ताशके पत्ते-सी बिखरी थीं, जिनपर हलके बैंगनी रंगके गुब्बारे उड़ रहे थे। ये गुब्बारे पहली दृष्टिमें बादल लगते हैं, किन्तु एकटक देखनेसे लगता है मानो उनके भीतरसे मैली रेतके धुँधले किन्तु तीखी रेखाओंसे युक्त पिरामिड उभरने लगे हैं····नीले पिरामिड! आकाश,

बादल और हवाने मिलकर ये पिरामिड चित्रित किए हैं····शामकी धूमिल छायाओंने इन्हें जन्म दिया है।

ये पहाड़ी छायाएँ एक-सी हैं, किन्तु हर जगह इनके पल-छिन बदलते रंगोंको देखा है। जाखूकी पहाड़ियोंपर स्कूलके कमरेकी खिड़कीसे बाहर इन्हें धीरे-धीरे धूपके संग उतरते देखा है। बहुत बरसों बाद कोटगढ़के सेबके बगीचोंमें लेटे हुए पेड़ोंकी मरमराती टहनियोंपर, रानीखेतमें चीड़की सुईनुमा, नुकीली पत्तियोंकी जालीसे इन्हें चुपचाप छनते, झरते देखा है।

और तब रात झुक आती है····पहाड़ोंपर अँधेरा एकदम नहीं आता, एकदम आकर चौंकाता नहीं – न वह उजालेको धकेलकर उसकी जगह लेता है, बल्कि दिनका उजाला खुद-ब-खुद धीरे-धीरे अँधेरेमें सिमट जाता है। इसलिए पहाड़ी धूप कभी मरती नहीं, सिर्फ़ अपना रंग बदल लेती है।

कालका और शिमलाके बीच एक वीरान उपेक्षित दृश्य-देश है – सोलन। अँगरेज़ोंके ज़मानेकी कुछ कोठियाँ और बँगले यत्र-तत्र मिल जाते हैं – खाली और उजाड़, जिनके आगे टु-लेटकी टूटी-फूटी तख्तियाँ झूलती रहती हैं।

वहाँ पहाड़ियाँ ख़ामोश रहती हैं····शामकी उनींदी उदासीमें केवल पहाड़ी चरवाहोंका गीतस्वर हवामें उड़ता-भटकता सुनाई दे जाता है। मोटर-रोडसे ज़रा नीचे बित्ते-भरका चौकोर खोखल है – चारों ओर चीड़के घने जंगलोंसे घिरा हुआ।

यह खोखल बहुत ख़ामोश है। सफ़ेद पत्थरोंपर काई जम गयी है, अक्षर मिट गये हैं। चिरन्तन मौनके दायरेमें पत्थर सोये हैं, बरसोंसे सो रहे हैं····हवामें पत्ते काँपते हैं, और चुपचाप झर जाते हैं। पत्तोंके पीले ढेरमें पत्थर दब-से गये हैं।

इन पत्थरोंपर जो नाम लिखे हैं, उन्हें अनेक बार पढ़ा है – हर बार नाम नये लगते हैं, हर बार उन्हें पढ़कर भूल जाता हूँ। मेरे लिए उनका

कोई अर्थ नहीं है, उनके लिए भी मेरा कोई अर्थ नहीं है, किन्तु फिर भी मैं हर शाम यहाँ आता हूँ। इनके ज़रा ऊपर घासका छोटा-सा ढलुआ टुकड़ा है – उठी हुई हथेली-सा। मैं हर शाम घासकी इस हरी हथेलीपर बैठा हुआ इन खामोश पत्थरोंको देखता हूँ, जो पत्थर नहीं हैं, किन्तु पत्थरोंसे अलहदा नहीं हैं। मेरे पैरोंके नीचे गीली मिट्टी है, काई-कीचड़में लिथड़े फूल हैं, रंग-बिरंगी तितलियाँ हैं, जो एक क्रॉससे उड़कर दूसरे क्रॉसपर बैठ जाती हैं। हवामें एक तेज़-तीखी खुशबू-सी फैलने लगती है– यह फूलोंकी नहीं, पत्थरोंकी खुशबू है, यह गन्ध सड़ते हुए पत्तोंकी खुशबूसे मिलती है, उस गन्धसे मिलती है, जो किसी पुरानी पेण्टिंगके उखड़े, बासी रंगोंसे आती है। लगता है जैसे पेड़ोंकी छायाओंके संग पत्थरोंका यह मंच धीरे-धीरे हिल रहा हो, पीछे पहाड़ियोंके एम्फीथिएटरमें किसीके पैरोंकी थाप झाड़ियोंके बीच सरसाती-सी सुनाई दे जाती है और उसकी गूँज चारों दिशाओंको खटखटाकर पहाड़ी हवामें गुम हो जाती है····

इज़ देअर एनीबॉडी देअर ? सेड द ट्रैवेलर
नॉकिंग ऑन द मूनलिट डोर

यह अजीब-सा यात्री कौन है, जिसकी पदचाप हमेशा पहाड़ोंमें सुनाई दे जाती है – चाँदनी, पहाड़ी हवा या मृत्यु ?

और तब अचानक ध्यान भटक जाता है। बरसों पहलेकी एक शाम स्मृति-पटपर झलक जाती है····

नौ हज़ार फ़ीटकी ऊँचाईपर नारकण्डेका डाक-बँगला एक नन्हें बोंसले-सा पहाड़की चोटीपर टिका है। अभी बससे उतरा हूँ और बरामदेमें बैठ-कर कॉफ़ी पी है। डाक-बँगलेके ज़रा नीचे बसोंके अड्डेके पास किसी पहाड़ी देवताका मन्दिर है। मन्दिरके चारों ओर लाल, नीले, हरे रंगके चीथड़े टँगे हैं, जो दिन-रात हवामें फरफराते रहते हैं। डाक-बँगलेके चौकीदारने मुझे बताया है कि हर यात्री किसी पुरानी प्रथाके अनुसार अपना कोई कपड़ा मन्दिरको भेंट कर जाता है। इन्हीं कपड़ोंको मन्दिरकी

दीवारोंके चारों ओर लटका दिया जाता है।

किन्तु कुछ ही देरमें हवामें फड़फड़ाते इन चौथड़ोंको अँधेरेने निगल लिया। मोटर-रोडके दायीं ओर 'प्रेस्ट-हाउस' की ढलुआँ छतके ऊपर हँसिया चाँद उग आया है, किन्तु दूर पहाड़ियोंपर धूप अभीतक रेंग रही है। एक क्षणके लिए पता नहीं चलता कि नौ हज़ार फ़ीटकी ऊँचाईपर जो पीला आलोक सिमट आया है, वह मिटते सूरजकी रश्मि-रेखा है या उगते चाँदकी हलद आभा? पश्चिम आकाशमें कुहरेके ऊपर अँधेरा अलग था, बादल अलग थे और दोनोंके बीच सिन्दूरी रंगकी लम्बी विशालकाय झील मछली-सी रेखा खिंच आयी थी। किन्तु कुछ ही क्षणोंमें यह मछली हवामें घुल गयी, एक नीली धुन्धकी झीनी-सी चादर पहाड़ियोंपर बिछल आयी है। लगता है, जैसे रात ऊपरसे नीचे नहीं, बल्कि नीचे घाटियोंकी अतल गहराइयोंसे निकलती हुई ऊपर आकाशकी ओर आ रही है। धुन्धके छोटे-छोटे रेले धूप और चाँदनी दोनोंको ही अपनेमें समो लेते हैं, डाक-बँगलेके लम्बे कौरीडोरका दूसरा सिरा दिखाई नहीं देता। नीली-सलेटी परतोंमें लिपटी यह धुन्ध इतनी सघन और ठोस है कि उसे चाकूसे तराशा जा सकता है। मेरी सारी देह किसी अदृश्य बुएँकी अनन्त तहोंमें दबी रह गयी है। मुझे लगता है, मानो बरामदेकी कुरसीपर मैं नहीं बैठा हूँ, केवल मेरा ओवरकोट धुन्धकी नीली दीवारपर टँगा रह गया है।

नारकण्डेकी वह रात आज डलहौज़ीकी सुनसान सड़कोंपर भटकते हुए सहसा आँखोंके सामने घूम जाती है। लगता है जैसे बरसों पहलेकी धुन्ध नारकण्डेके डाक-बँगलेसे निकलकर बीते समयकी अतल, अँधेरी घाटियोंको पार करती हुई मेरे होटलके आगे ठिठक गयी हो। होटलसे बहुत दूर नीचे कैण्टकी धुँधुआती बत्तियोंके आर-पार सितम्बरके बादल उड़ते रहते हैं – हर लैम्प-पोस्टके इर्द-गिर्द चमकीली धुन्धका दायरा जमा हो जाता है, मानो आलोक-मण्डलसे आवृत कोई देवदूत पृथ्वीपर आ खड़ा हो।

किन्तु रातकी यह धुन्ध हमेशा हो नहीं रहती – पहाड़ोंपर भी सुबह होती है।

भीमताल····हमारे मकानके पिछवाड़े पहाड़ीपर धूप धीरे-धीरे नीचे उतरती है। दूध-सी धवल, कोमल किरणोंके शुभ्र आँचलमें ओसमें भीगी घास, पत्थर, जंगली फूल झिलमिलाते हैं। कुछ ही देरमें ये किरणें हमारे मकानकी लाल टिनकी छतको छू लेंगी और नीचे झीलके पानीमें उतर जायेंगी।

मन्दिरके घेरेसे ज़रा दूर झीलके पश्चिमी कोनेमें छोटा-सा टापू है। उसके बीचोबीच पेड़ोंका हरा-पीला झुरमुट है, जिनकी मटियाली छायाएँ दिन-भर झीलके पानीमें तिरती रहती हैं। किनारेपर तीन-चार नौकाएँ खड़ी रहती हैं, पर्यटकोंको द्वीप तक ले जाती हैं और फिर उन्हें वापस किनारेपर पहुँचा देती हैं।

टापूपर पके गूलर गिरते हैं····टप, टप····पानी भागता है, किसी अदृश्य निधिकी खोजमें। ऊर्मियाँ सतहपर उठती हैं, दौड़ती हैं, छोटे-छोटे बूँदों-सी झीलके साँवले गालोंपर झूलती हैं और फिर गुम हो जाती हैं।

हमारे मकानके नीचे दलदल है। कुछ दिन पहले यहाँ झीलका जल था, जिसे अब हलद्वानी और अन्य निकटवर्ती स्थानोंके लिए, जहाँ जलकी कमी है, खींच लिया गया है। जब हम यहाँ आये थे, तब दलदल गीली थी, पाँव रखते ही नीचे धँस जाती थी। हम घुटनों तक नीचे कीचड़में फिसलते जाते थे। किन्तु अब पिछले दो-तीन दिनोंसे कीचड़का पानी सूख गया है। अब यहाँ बड़े-बड़े चौकोर केक-से काली मिट्टीके टुकड़े उभर आये हैं····जहाँ-तहाँ गाय, भैंसों, बकरियोंके खुरोंके निशान दिखाई दे जाते हैं।

सामने छोटे-से बाज़ारके आगे बसोंका अड्डा है – भुवाली, नैनीताल, नौकुछिया, काठगोदामको जाती हुई बसोंका सोया-सा हॉर्न झील पार करता

हुआ हम तक पहुंच जाता है। हम जान गये हैं कि किस समय अमुक बस कहां जा रही है।

सुबह, दोपहर, शामके पल-छिन बदलते रंगोंके संग झील अपना आवरण उतारती है, निरावृत होकर स्तब्ध भावसे चारों ओर झांकती है और फिर सबकी आंख बचाकर धीरेसे चुपचाप नया रंग ओढ़ लेती है। दोपहरकी उनींदी घड़ीमें आस-पासका ताम्रवर्णी जल ठहर-सा जाता है – केवल बीचमें एक लम्बी शहतीर-सी चमचमाते पारेकी लहर तालको दो उजली फांकोंमें काटती हुई दूर तक फिसलती जाती है।

झीलके कितने चेहरे हैं – या चेहरा एक ही है, केवल भंगिमाएं बदलती हैं। धूपने जाल डाला है, चमकीली मुलायम मछलियों-सी लहरें जालके तन्तुओंसे खेलती हैं, फंसती हैं और फिसल जाती हैं।

पूरी रात होनेसे कुछ क्षण पूर्व····झीलके दो चेहरे हो जाते हैं – एक हंसता हुआ, दूसरा सोया-सा। पानी बंट जाता है, आधा जल गहरा हरा, कहीं-कहीं श्यामल – आधा सफ़ेद, जैसे किसीने चूनेका चिट्टा चूरा पानीमें घोल दिया हो। अंधेरा बढ़ते-बढ़ते यह सफ़ेदी धीरे-धीरे झीलके श्यामल हिस्सेको अपनेमें ढांप लेती है। झीलका रंग आकाशके रंगसे मिल जाता है – मानो आस-पासकी पहाड़ियोंके बीच आकाशका ही एक टुकड़ा तारों-समेत नीचे आकर औंधा पड़ गया है।

शामकी फैलती छायाओंमें भीमतालका द्वीप डूब जाता है, केवल पेड़ोंके झुरमुटका एक धब्बा झील और आकाशकी सफ़ेदीपर स्तब्ध-सा खिंचा रहता है।

रातकी घनी नीरवतामें सब कुछ धीमे-धीमे सिमट जाता है। लहरें शान्त हो जाती हैं। आखिरी बस बाज़ारके आगे कोनेमें ठहर जाती है।

दूर टापूमें गूलरोंके गिरनेका स्वर सोते-सोते भी सुनाई दे जाता है – टप, टप, टप····

■

देहरीके बाहर

लैक्सनेस : एक इण्टरव्यू

"मुझे आपसे मिलनेका सौभाग्य एक बार पहले प्राप्त हो चुका है।"

"कहाँ ?" उन्होंने कुछ आश्चर्यसे पूछा।

"दिल्लीमें। यह स्वाभाविक है कि आपको याद नहीं। वहाँ बहुत-से लोग जमा थे और मैंने आपकी किताबपर सिर्फ़ हस्ताक्षर लिये थे।"

"ओह, दिल्ली – मुझे वहाँ अवकाश एक क्षण भी नहीं मिल सका," उन्होंने हँसते हुए अपने दोनों हाथ हवामें फैला दिये। "मैं ज़्यादातर सरकारी अफ़सरोंके बीच घिरा रहता था। बहुत कम लोगोंसे मिल पाया – ऐसे लोगोंसे, जिनसे मिलना चाहता था।" फिर उन्होंने प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी ? रिक्याविक कब आया, कैसे आया, कहाँ ठहरा हूँ, कहाँ-कहाँ घूम चुका हूँ। फिर अचानक चुप हो गये और मेरी ओर देखते रहे।

"कैसा लगा आपको यह देश – आइसलैण्ड ?" उनकी आँखोंमें बच्चोंकी-सी उत्सुकता झलक उठी।

"सौभाग्यसे मैं अभीतक सरकारी अफ़सरोंसे मुक्त हूँ।"

वह हँसने लगे।

वही लैक्सनेस थे, हालदौर विलियन लैक्सनेस। किन्तु आइसलैण्डमें शायद ही कोई उन्हें इस नामसे पुकारता है। सब लोग – स्कूलके बच्चोंसे लेकर टैक्सी-ड्राइवर तक – उन्हें 'विलियन' के नामसे ही जानते हैं। 'श्री' और 'जी' के बोझसे मुक्त उनका यह छोटा हलका-सा नाम कुछ इस खुले, आत्मीय ढंगसे पुकारा जाता है कि लगता है जैसे वह साहित्यके नोबेल-पुरस्कारसम्पन्न लेखक न होकर कोई गलीके पास-पड़ोसी हैं, जिनसे किसी भी क्षण गप-शप की जा सकती है।

लम्बा चेहरा, चौड़ी दृढ़ ठुड्डी, कुछ-कुछ सफ़ेद पड़ती मूँछें, संयत, शान्त आँखें – जिनमें कभी हलका-सा परिहास, कभी अलसाया-सा व्यंग्य उभर उठता था – यही उनका व्यक्तित्व है, बहुत ही ग़ैर-रोमैण्टिक और नॉर्मल। शायद वह हमारे युगके सबसे नॉर्मल साहित्यकार हैं।

आइसलैण्डकी राजधानी रिक्याविकमें उनके मकानके एक खुले हवादार कमरेमें हम बैठे थे। पास ही खिड़की थी, जिसके परे मकानोंकी ऊँची-नीची छतें और उनके भी परे गरमियोंका नीला आकाश दिखाई दे रहा था। मेरे संग मेरे पुराने मित्र बरेन रॉय भी थे, जो लन्दनमें आज-कल शोध-कार्य कर रहे हैं। हम दोनों एक संग आइसलैण्ड आये थे, एक ही जहाज़में – वह लन्दनसे, मैं प्रागसे।

"आप कितने दिन यहाँ ठहरेंगे ?" बैठते ही उन्होंने पूछा।

"पन्द्रह-बीस दिन – ज़्यादासे ज़्यादा।"

"बहुत कम अरसा है।" उन्होंने तनिक धीमे स्वरमें कहा। "लेकिन देश यह छोटा है और आप इतने कम समयमें भी काफ़ी कुछ देख सकेंगे।"

"दो दिन पहले थिंग विलियर (आइसलैण्डका एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थान) से लौटते समय हमने आपका गाँवका मकान देखा था – हमें नहीं मालूम था कि इन दिनों आप वहीं रहते हैं।"

"हाँ, गरमियोंमें मैं वहीं रहता हूँ, काम भी वहीं करता हूँ। मुझे खेद है कि मैं आपको अपने उस घरमें आमन्त्रित नहीं कर सका। यहाँ मैं सिर्फ़ कभी-कभी एक-दो दिनके लिए चला आता हूँ····और इस मकानमें आपको देनेके लिए न कॉफ़ी है, न शराब····" उन्होंने कुछ क्षमा-याचनाके स्वरमें कहा, "वैसे दो घर कभी-कभी काफ़ी उलझन उत्पन्न कर देते हैं। आदमी न इस घरका रहता है, न उस घरका।" एक हलकी-सी मुसकराहट उनके होंठोंपर सिमट आयी। "आप सिगरेट पियेंगे ? मैं तो नहीं पीता लेकिन····"

मैंने अपना पैकेट बाहर निकाल लिया। इण्टरव्यू कैसे लिया जाता है, मैं इसी उलझनमें फँसा था। किन्तु इससे पेश्तर कि मैं कुछ पूछ पाता, उन्होंने कहा, "आपने आइसलैण्ड आनेका इरादा कैसे कर लिया? यहाँ तो बहुत कम विदेशी टूरिस्ट आते हैं····कमसे कम अभीतक यह देश 'टूरिस्ट-हाण्ट' नहीं बन पाया है।"

"टूरिस्ट कम आते हैं····यह खुदमें एक आकर्षण था यहाँ आनेके लिए।" मैंने कहा, "इसके अलावा स्कैण्डेनेवियाई देशोंके प्रति पुरानी जिज्ञासा रही है। युरॅपके अन्य देशोंसे वे काफ़ी भिन्न रहे हैं····और आइसलैण्ड तो शायद उनसे भी बहुत अलग रहा है।"

"आपको क्या कभी आइसलैण्डके पुराने सागा-ग्रन्थोंको पढ़नेका अवसर मिला है।" उन्होंने पूछा।

"दुर्भाग्यवश ज्यादा नहीं····अँगरेज़ीमें वे आसानीसे उपलब्ध नहीं हो पाते। यहाँ आनेसे पूर्व मैंने 'न्याल-सागा' पढ़ा था, जो हालमें ही 'पेलिकन-सीरीज़' में प्रकाशित हुआ है।"

"हाँ, मैंने उसे देखा है। मेरे विचारमें अँगरेज़ीमें उसका अनुवाद बहुत सफल रहा है····हालाँ कि यह काफ़ी कठिन काम है। सागा-ग्रन्थोंकी अपनी एक विशिष्ट शैली है, जिसकी गरिमा अनुवादमें सही-सही उतार पाना एक दुर्लभ चीज़ है।"

"आपकी कुछ पुस्तकोंके पढ़नेके बाद मुझे ऐसा प्रतीत हुआ है कि आपने सागा-ग्रन्थोंसे गहरी प्रेरणा प्राप्त की है—उनका ऐपिक-विस्तार और कठोर यथार्थवादिता। क्या यह सत्य है?"

"हाँ, बहुत हद तक। आइसलैण्डका शायद ही कोई लेखक अपनेको इन महान् साहित्यिक-निधियोंके प्रभावसे मुक्त रख सका है। अपने उपन्यास 'हैपीवारियर्स'को लिखते समय मुझे लगभग पाँच वर्षों तक सागा-ग्रन्थोंका अनुसन्धान-अध्ययन करना पड़ा था। दुर्भाग्यवश अँगरेज़ीमें उसका अनुवाद

बहुत ही ख़राब हुआ है। वैसे इसमें बेचारे अनुवादकको दोष देना बेकार है। मैं जानता हूँ दूसरी भाषामें अनुवाद कितना सिर-दर्दका काम हो सकता है....''

''मि० लैक्सनेस, आपका देश युरॅपके मुख्य-राष्ट्रों, मेट्रोपॉलिटन देशोंसे बहुत दूर और पृथक् रहा है, भौगोलिक और ऐतिहासिक दृष्टिसे। क्या आपने अपने सृजन-कार्यमें यह अलगाव महसूस किया है ?''

''यह कहना शायद सही नहीं कि आइसलैण्ड युरॅपीय प्रभावोंसे अछूता या असंयुक्त रहा है। सत्रहवीं शताब्दीसे पहले इंग्लैण्ड, फ्रान्स और मध्य-युगमें जर्मनीके सांस्कृतिक और धार्मिक आन्दोलनोंने आइसलैण्डकी जीवन-धाराको बहुत हद तक प्रभावित किया था।''

''और डेन्मार्कका प्रभाव ?'' मैंने पूछा।

उनके होंठोंपर हलकी-सी व्यंग्य-भरी मुसकराहट उभर आयी। ''आपका मतलब है, डेन्मार्कपर आइसलैण्डका प्रभाव ? शायद आपको यह बात अजीब लगे, लेकिन यह सच है कि आइसलैण्डपर सैकड़ों वर्षोंके डेनिश राजनीतिक प्रभुत्वके बावजूद डेनिश-साहित्य या संस्कृतिका हमारे देशपर कोई गहरा या स्थायी प्रभाव नहीं पड़ा। बल्कि यह कहना सत्यके काफ़ी निकट होगा कि साहित्य और कलाके क्षेत्रमें डेन्मार्कको आइसलैण्डसे निरन्तर प्रेरणा मिलती रही है। यह तनिक आश्चर्यकी बात है कि राजनीतिक प्रभुत्व और सांस्कृतिक प्रभाव हमेशा एक संग नहीं जाते !''

''आपने सृजन-प्रक्रियामें लेखकके अलगावका प्रश्न उठाया है। अन्ततः यह 'मनुष्यके अकेलेपन' की समस्या है। मैं समझता हूँ, यह समस्या पश्चिमके आधुनिक लेखकोंको काफ़ी पीड़ित करती रही है....लेकिन मैंने आज तक ज़िन्दगीमें यह अलगाव या अकेलापन महसूस नहीं किया। मैंने कभी यह महसूस नहीं किया कि मेरे और दूसरे लोगोंके बीच ऐसी कोई खाई है, जिसे पार नहीं किया जा सकता।''

''अकेलापन....'' एक लम्बे क्षण तक वे चुप रहे। मैंने देखा, उनके

माथेपर तीखी रेखाएँ खिंच आयी हैं। फिर सहसा निर्णयात्मक लहजेमें उन्होंने कहा, "नहीं, मैं नहीं समझता कि इस समस्याने मुझे कभी पीड़ित किया है।"

"कुछ अरसा पहले अँगरेजी नाट्य-आलोचक टॉयनन्से बात-चीत करते समय सार्त्रने कहा था कि आजके युगमें कोई भी प्रतिगामी लेखक महान् साहित्यकी रचना नहीं कर सकता। इस सम्बन्धमें आप क्या सोचते हैं?"

"इस कथनसे सहमत होना काफ़ी मुश्किल है। वैसे मैं स्वयं एक ऐसा लेखक हूँ, जिसे लोग 'वामपन्थी' या 'समाजवादी' कहते आये हैं। इसके बावजूद मैं सोचता हूँ कि अपने प्रतिगामी विचारोंके रहते भी डॉस्टोएव्स्की और काम्यूने महान् रचनाओंकी सृष्टि की है। और टैगोरकी धार्मिक कविताएँ—क्या वे आपको आकर्षित नहीं करतीं? गीतांजलि पढ़ते हुए मुझे आज भी आनन्द आता है....हालाँकि युवावस्थामें मुझे टैगोरकी कविताएँ ज़्यादा आकर्षित करती थीं।"

"क्या आज उनका महत्त्व आपके लिए उतना अधिक नहीं है, जितना पहले था?"

"यह कहना कठिन है....लेकिन मेरे विचारमें टैगोर पश्चिमके लिए अजनबी (उन्होंने 'एलियन' शब्दका प्रयोग किया था) ही बने रहेंगे।"

शाम हो चली थी, लेकिन खिड़कीके बाहर रिक्याविककी छतोंपर अब भी उजालेकी परतें जमा थीं। अँधेरेके नामपर महज़ एक धूमिल पीली रोशनी-सी फैल गयी थी, हवामें पीली-सी बर्फ़ीली रोशनी, जो आधीरात तक समूचे शहरपर चमकीले, ठण्डे ज़र्रों-सी बरसती रहेगी.....। इण्टरव्यू जारी था।

"अभी आपने पश्चिमी लेखकोंके अकेलेपनकी चर्चा की थी, मि० लैक्सनेस। क्या यह नहीं है कि आजके अणु-युगमें कलाकार अपने अकेलेपनसे बाहर आनेकी चेष्टा कर रहा है....या दूसरे शब्दोंमें यूँ कहें कि अणु-युद्धकी सम्भावनाने लेखकोंपर क्या एक ऐसी ज़िम्मेदारी डाल दी है, जो

शायद पहले किसी युगमें उपस्थित नहीं थी ?"

लैक्सनेस कुछ देर तक चुप रहे – शायद उन्हें लगा कि मैं उन्हें किसी विवादमें 'कॅमिट' करनेकी चेष्टा कर रहा हूँ (जो मेरी मन्शा नहीं थी) और वह कदाचित् कुछ सतर्क हो गये ।

प्रचार-युग : विरोध और राजनीतिज्ञ

"आजके प्रचार-युगमें लेखकोंकी आवाज़ कोई विशेष महत्त्व या प्रभाव रखती है, मुझे इसमें सन्देह है । गम्भीर साहित्यकी ओर भला कितने लोग ध्यान देते हैं ? 'लाइफ़' और 'टाइम्स' की पत्रिकाएँ मेरी पुस्तकोंसे कहीं ज़्यादा लोक-प्रिय हैं ! सस्ती फ़िल्में, रेडियो, टेलेविज़नका गोरखधन्धा लोगोंके दिमाग़ोंपर इस क़दर हॉवी है कि कुछ भी सोचने-समझनेका अवकाश उन्हें शायद ही कभी मिल पाता है । मेरे विचारमें आज भी प्रत्येक छोटे-बड़े देशमें राजनीतिज्ञोंका ही बोलबाला है – आम लोगोंकी नियति उनके दाँव-पेंच-द्वारा ही नियोजित होती है । वैसे मेरे विचारमें युद्ध निश्चित रूपसे नहीं होगा इसलिए नहीं कि लेखक अपनी शक्तिसे उसे टालनेमें सफल होंगे, बल्कि इसलिए कि आज राजनीतिज्ञ भी अणुशस्त्रोंकी संहार-शक्तिसे डरते हैं । पहले या दूसरे विश्व-युद्धसे पूर्व कई देशोंमें युद्धके प्रति काफ़ी उत्साह पाया जाता था । आज मुझे कहीं, किसी देशमें वह दिखाई नहीं देता....."

"आपका अभिप्राय है कि इस युगमें लेखक एक असहाय गवाह होनेके अतिरिक्त कुछ भी कर पानेमें असमर्थ है ?"

"मुझे सन्देह है कि वह वस्तुस्थितिमें कोई बुनियादी परिवर्तन कर सकता है । दूसरे युद्धके आरम्भ होनेसे पूर्व जर्मनीमें अनेक ऐसे साहित्यकार थे, जिन्होंने फ़ासिज़्मका तीव्र विरोध किया था, किन्तु क्या उन्हें राजनीतिज्ञोंकी चालोंके आगे कुछ भी सफलता मिल सकी ?"

मुझे सन्तोष नहीं हुआ । मैं आगे कुछ पूछनेवाला ही था कि अचानक

मुझे एक 'लोकप्रिय' पत्रकारके शब्द याद हो आये : सफल इण्टरव्यूका लक्षण यही है कि उसे बहसकी दलदलमें न फँसने दिया जाये। मैंने सतर्कतासे अपनेको दलदलसे बचाते हुए वार्तालापका रुख़ बदलनेकी चेष्टा की। "क्या भारतसे लौटनेके बाद आपने इस सम्बन्धमें कोई संस्मरण लिखे हैं ?"

"मैंने चीन और भारतकी यात्रा लगभग एक ही समयमें की थी। अकसर मैं इन दोनों देशोंकी वर्तमान परिस्थितियोंकी तुलना करता रहा हूँ। इस सम्बन्धमें मेरे एक-दो लेख भी प्रकाशित हुए थे। दरअसल भारतके सम्बन्धमें मैं अभीतक कोई निश्चित या अन्तिम निष्कर्ष नहीं निकाल सका हूँ, किन्तु आपके देशमें कुछ चीज़ोंको देखकर मुझे गहरा आश्चर्य हुआ....."

वह अचानक कुछ झिझककर चुप-से हो गये, मानो कुछ हिचकिचाहट-सी महसूस हो रही हो। मैंने प्रार्थना की कि वह बिना किसी छिपाव-दुराव के अपने विचार प्रकट करें।

"देखिए, आप मुझे ग़लत न समझें। भारतके नेताओंके प्रति मेरे मनमें हमेशा आदर-भाव रहा है। वे अत्यन्त सुसंस्कृत और सजग हैं, किन्तु उनके और भारतके सर्वसाधारण लोगोंके बीच मुझे गहरा अन्तर दिखाई पड़ता है। गाँवोंमें लोगोंके घरोंको देखकर मैं बिलकुल आश्चर्यमें पड़ गया। न जाने वे वहाँ कैसे रहते हैं ? मध्य-युगमें भी युरॅपके लोग शायद ऐसे घरोंमें रहना पसन्द न करते। शायद भारतकी गरम जलवायुमें लोग इन तकलीफ़ोंको बरदाश्त कर सकते हैं। ऊपर छत न हो तो बाहर सो लेनेमें कोई ख़ास दिक़्क़त नहीं। किन्तु युरॅपकी जलवायुमें लोगोंके लिए चाहे वे कितने ही ग़रीब क्यों न हों, ऐसी परिस्थितियोंमें जीवित रहना असम्भव है....मुझे एक और घटना याद आती है। वाराणसीमें गंगाका पानी ऐसा नहीं, जिसे बहुत साफ़ कहा जा सके। वाराणसी म्युनिसिपैलिटीके एक गाइड मेरे संग थे, सुशिक्षित युवक, साहित्यमें एम० ए०। उन्होंने मुझे बताया कि लोग गंगामें नहाने नहीं, अपने पाप धोने आते हैं। उन्होंने यह

भी कहा कि गंगाके पानीमें कीटाणु नहीं हैं। मुझे यह जानकर गहरा आश्चर्य हुआ कि वह स्वयं इन बातोंमें विश्वास रखते थे, मेरा मतलब है, लोगोंके पापोंमें, कीटाणुओंमें नहीं····मुझे नहीं मालूम, किन्तु जान पड़ता है भारतवासी कीटाणुओंमें ज़्यादा विश्वास नहीं रखते ?"

"क्या आपको ऐसे अन्धविश्वास कहीं और देखनेको मिले ?"

उनकी मुसकराहट गहरी हो गयी, आँखोंमें शरारतका-सा भाव चमक उठा।

"हाँ, एक बार बम्बईमें एक उच्च-हिन्दू परिवार-द्वारा मुझे एक भोजमें आमन्त्रित किया गया था। दिलचस्प बात यह थी कि भोजके दौरानमें कई लोग मुझे ऑल्डस हक्सले समझते रहे, हालाँ कि मेरी शक्ल उनसे ज़्यादा नहीं मिलती और विचार तो बिलकुल नहीं! किन्तु शायद इसी ग़लतफ़हमीके कारण एक भारतीय सज्जन मेरे पीछे पड़ गये। ज्योतिषशास्त्रमें उनका गहरा विश्वास था और वह अपने तर्कों-द्वारा मुझे भी अपना अनुगामी बनानेकी भरसक चेष्टा कर रहे थे। आख़िर उनसे छुटकारा पानेके लिए मैंने कहा कि मेरे गुरु मार्टिन लूथर अनेक प्रकारके हास्यास्पद अन्धविश्वासोंका शिकार थे – सिवाय ज्योतिष विद्याको छोड़कर। फिर भला मैं ऐसी विद्यामें कैसे विश्वास कर लूँ, जिसे युरॅपके सबसे कट्टर अन्धविश्वासी 'महात्मा' ने अस्वीकृत कर दिया ?" इसपर हम सब हँस पड़े थे। श्री लॅक्सनेसने अपनी घड़ी देखी और मैं अपने अन्तिम प्रश्नको अधिक देर तक नहीं टाल सका। "आधुनिक भारतीय लेखकोंकी कुछ पुस्तकें आपकी नज़रोंसे अवश्य गुज़री होंगी। उनके सम्बन्धमें आपकी कैसी प्रतिक्रिया रही है ?"

पिछड़ेपनसे चिपके ये भारतीय लेखक

"आधुनिक भारतीय लेखक मुझे अधिक 'आधुनिक' नहीं जान पड़े। जो कुछ भी पुस्तकें मैंने पढ़ी हैं – और वे अधिक नहीं हैं – उनकी शैली

बहुत कुछ मुझे यूरोपके पुराने लेखकोंका स्मरण किया जाती है''''भारतमें मेरी मुलाकात एक ऐसे युवा लेखकसे हुई जो कुलनाके भक्त थे। कुलनाके बाद भी यूरोपमें साहित्य-सृजन होता रहा है, इसमें शायद उन्हें कोई विशेष दिलचस्पी नहीं थी। चीनमें भी मेरा बहुत कुछ ऐसा ही अनुभव रहा है। चीनी विद्यार्थी – जिनसे मैं मिला – यूरोपके आधुनिक साहित्यसे प्रायः अपरिचित जान पड़ते हैं। ह्यूगो, लफीत और गोर्की – इनसे आगे शायद उनकी जानकारी नहीं जाती। जब मैं भारतमें था, बुद्धिजीवियोंकी एक गोष्ठीमें मेरी भेंट एक जर्मन यहूदी महिलासे हुई, जो किसी भारतीयसे विवाह करनेके बाद भारतमें ही बस गयी थीं। उन्होंने मुझे बताया कि उनके दो उपन्यास (अंगरेजीमें) इंग्लैण्डमें प्रकाशित हुए हैं। मैंने उन्हें बधाई दी। बादमें मुझे उनका एक उपन्यास पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मुझे खेद है कि उसके बाद मैं उनके दूसरे उपन्यासको पढ़नेका साहस नहीं बटोर सका, किन्तु मेरी ये प्रतिक्रियाएं सीमित अनुभवपर आधारित हैं। मुझे इस बातका हमेशा दुःख रहेगा कि भारतमें मैं अनेक सार्वजनिक-कार्यों-में उलझा रहा, जिसके कारण मुझे अधिक संख्यामें भारतीय लेखकोंसे मिलनेका समय नहीं मिल सका।''

"आशा है आप वहाँ एक बार फिर आयेंगे''''आज-कल आप क्या लिख रहे हैं ?''

"एक नाटक, नाम है 'चिम्नी प्ले''''शायद कुछ महीनों बाद उसका उद्घाटन रिक्याविकमें ही होगा।''

"काश, उस समय तक हम यहाँ ठहर सकते।''

"नाटकके लालचसे नहीं''''किन्तु वैसे भी बेहतर होता कि आप कुछ ज्यादा अरसेके लिए यहाँ ठहर पाते। रिक्याविक आपको कैसा लगा ?''

"कुछ-कुछ गुड़ियोंके नगर-सा," मैंने मुसकराते हुए कहा। हम उठ खड़े हुए थे।''

"दुर्भाग्यवश बीयर नहीं थी, वरना बातचीत ज़्यादा दिलचस्प हो जाती।" उन्होंने हँसते हुए कहा।

हम उन्हें धन्यवाद देकर सीढ़ियाँ उतरने लगे।

इण्टरव्यू सफल रहा या नहीं, मैं नहीं जानता। वैसे भी औपचारिक बातचीतके माध्यमसे (जहाँ प्रश्नोत्तरकी लक्षण-रेखापर बहसकी दलदलसे बचकर चलना हो !) कुछ ज़्यादा हाथ नहीं आता। प्रश्नके तात्कालिक दबाव तले जो उत्तर दिया जाता है, वह कितना ढक लेता है, कितना उजागर करता है, यह जानना बहुत ही मुश्किल है। मुश्किल और भी बढ़ जाती है जब बात-चीत लैक्सनेस-जैसे लेखकसे हो, जो किसी भी विषयपर अपना निश्चित मत प्रकट करते हुए एक गहरी झिझक महसूस करते हैं। मुझे याद आता है उनका हर वाक्य 'शायद' अथवा 'मुझे मालूम नहीं' से आरम्भ होता था और एक अजीब-सी असहाय मुसकराहटपर आकर दम तोड़ देता था। इस दृष्टिसे लैक्सनेस और अन्य स्कैण्डेनेवियाई लेखक फ्रेंच लेखकोंसे बिलकुल विपरीत हैं। किन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना कि उनकी अपनी कोई आस्था नहीं है या कि वे बहुत 'सिनिकल' हैं (एक आरोप, जो अकसर स्कैण्डेनेवियाई लोगोंपर लगाया जाता है) बहुत ग़लत और भ्रान्तिपूर्ण होगा। मेरा अपना कुछ ऐसा अनुभव रहा है कि लैक्सनेस उन बहुत कम लेखकोंमें-से हैं – और ऐसे लेखकोंकी संख्या आजके युगमें दिनपर दिन कम होती जा रही है – जो अपनी आस्था क़मीज़की आस्तीन-पर लटकाकर नहीं चलते। अपने उपन्यास – ऐटम स्टेशन – के एक पात्रके बारेमें उन्होंने लिखा था कि वह हर आइसलैण्डकी तरह – जिस चीज़को जितनी गहराई और संवेदनासे महसूस करता था, उसके सम्बन्धमें उतने ही रूखे और अनमने भावसे बात-चीत करता था।

सोचता हूँ, क्या यह चीज़ स्वयं लैक्सनेसपर लागू नहीं होती ?

■

काफ़्का और चापेक : समकालीन चेक साहित्य

बीसवीं शताब्दीमें छोटे आदमीका प्रतिरूप ? चार्ली चैपलिन।

और छोटे देशका प्रतीक ? – चेकोस्लोवेकिया !

दुनिया दोनोंके प्रति ही काफ़ी क्रूर रही है। किन्तु विचित्र बात यह है कि 'बड़ों'के बीच घिरे रहनेके बावजूद – या शायद उसीके कारण – दोनोंने अपने भीतर एक ऐसे चरित्रका निर्माण किया है जो कॉमिक भी है और ट्रैजिक भी; जो आक्रमणका उतना ही सशक्त साधन है जितना आत्म-रक्षाका। दोनोंके ही 'केस' में बाहरी अस्त्र (चैपलिनका मौन, चेकोस्लो-वेकियाका साहित्य) बाहरकी वस्तु न होकर आत्माका ही एक प्रक्षेपण मात्र (प्रोजेक्शन) बन गया है। हम उनके आर्मरको उनकी देहसे अलग नहीं कर सकते, चाहे वह व्यंग्यमें निहित हो या निहायत पर्सनल प्रतीकके भीतर।

आश्चर्य नहीं, आधुनिक चेक-साहित्यके एक सीमान्तपर है यारोस्लाव हाशेक (खायकके निर्माता) और दूसरे सीमान्तपर कॉफ़्का – यदि हम मान लें कि जर्मनसे अधिक वे चेक थे। एक हमारे युगके सबसे प्रखर व्यंग्यकार, दूसरे सबसे महान् ट्रैजिक लेखक। दोनोंका साहित्य एक ऐसी मानवीय (?) स्थितिसे उत्पन्न हुआ है जो आत्यन्तिक रूपसे एबसर्ड है – तर्कसंगत किन्तु अर्थहीन। आस-पासकी दुनिया उनके लिए न केवल बहुत बड़ी थी, बल्कि बहुत संकीर्ण भी। या कभी-कभी दोनों ही एक संग, एक ही समयमें।

क्या यह महज़ संयोग था कि दोनोंने अपनेको एक ही स्थितिमें पाया था और एक ही देशमें ?

इन दो लेखकोंका उल्लेख मैंने सिर्फ़ इसलिए किया है कि हम उस 'चरम-स्थिति'से अवगत हो सकें जिसके बीच चेकोस्लोवेकियाको गुज़रना पड़ा है। दिलचस्प बात यह है – और शायद महत्त्वपूर्ण भी – कि दोनोंको चेकोस्लोवेकियाकी संस्कृति उसके विशेष वातावरणसे बाहर करके देखना उतना ही अर्थहीन है जितना जॉयसको डब्लिनसे या मानको जर्मनीसे अलग करके परखनेकी चेष्टा करना।

या शायद उससे भी अधिक। क्योंकि उनका साहित्य, (या साहित्यके प्रति उनकी अपनी एक खास एबसर्ड एप्रोच) और ज़रा ज़्यादा व्यापक रूपमें देखें, तो अन्य आधुनिक चेक लेखकोंकी रचनाएँ, आंगिक रूपसे एक ऐसे 'छोटे' देशकी विकट स्थितिसे जुड़ी हैं जो पूर्व और पश्चिमके बीच दबा रहकर भी सदियोंसे अपने विशिष्ट व्यक्तित्वकी खोजमें संघर्षरत रहा है; एक ऐसा देश जो 'स्लाव' होनेके नाते स्वभावतः पूर्वकी ओर झुका रहा, किन्तु जिसने संस्कृतिके प्रेरणा-स्रोत पश्चिमसे ग्रहण किये; एक सेतु, जो दोनों दिशाओंको मिलानेकी कोशिशमें स्वयं नगण्य और उपेक्षित-सा पड़ा रहा।

"सेतु....?" एक युवा चेक लेखकने उदास भावसे मुसकराते हुए एक बार मुझसे कहा था : "कॉरेल चापेक अकसर इस देशकी तुलना सेतुसे किया करते थे, किन्तु ज़िन्दगीके अन्तिम दिनोंमें उनका यह भ्रम काफ़ी हद तक टूट गया था। सेतु अपनेमें एक अच्छी चीज़ हो सकती है, मुश्किल यह है कि उसपर किसी अच्छी चीज़का निर्माण नहीं हो सकता।"

पूर्व या पश्चिम ? एक लम्बे अरसेसे यह प्रश्न चेक बुद्धिजीवियोंके सम्मुख – किसी-न-किसी रूपमें – उपस्थित होता रहा है। शीत-युद्धकी राजनीतिने – दुर्भाग्यवश – अन्य प्रश्नोंकी तरह इस प्रश्नका भी एक अति-साधारण विवेचन प्रस्तुत करके असली स्थितिको काफ़ी विकृत करनेकी चेष्टा की है। पश्चिमी पत्रकार (उन्हें आलोचक कहना मुश्किल है) अकसर यह भूल जाते हैं

कि चेक संस्कृतिपर रूसी प्रभाव कोई नयी या आजकी बात नहीं है। पिछले सौ वर्षोंसे, जो चेक संस्कृति और साहित्यका पुनरुत्थान-युग रहा है, चेक लेखक और दार्शनिक बौद्धिक चेतना और आध्यात्मिक सम्बलके लिए रूसको एक तीर्थस्थान मानते आये हैं। वह तीर्थस्थान आज भी जारी है। इसमें किसी प्रकारके राजनीतिक स्वार्थ खोजना व्यर्थ है। यह एक ऐसा संस्कार है जो आधुनिक चेक जीवनकी आधारभूत परम्परासे जुड़ा है: न इसे ज़बरदस्ती थोपा गया है, न इसे ज़बरदस्ती अलग किया जा सकता है।

संस्कार – लेकिन आधार नहीं – और इन दोनोंमें भेद करना ज़रूरी है अपनेको अर्ध सत्यसे बचानेके लिए। क्योंकि सत्य यह है कि आधुनिक चेक संस्कृतिकी नींव खोजनेके लिए हमें इतालवी पुनरुत्थान, सिर्कम्प्रदायके धार्मिक-आन्दोलन, फ्रान्सीसी क्रान्ति और उससे सम्बन्धित नये भावबोधकी ओर जाना पड़ेगा। वरना आप कैसे समझ सकेंगे चौदहवीं शताब्दीके चेक 'गोथिक समन्वय'को? और चेकोस्लोवेकिया बारीक कला, स्मेतना और द्वोराकका संगीत, क्या इन्हें पश्चिमी प्रभावसे अलग किया जा सकता है? उन्नीसवीं शताब्दीका समूचा चेक साहित्य और उसके सृजनकर्ता – मारवा, नेरुदा, बर्खलिस्की, साल्दा, इन सबके बीच पश्चिमी संस्कृति एक अखण्डित धाराकी तरह प्रवाहित होती रही है।

पूर्व या पश्चिम? तब इस प्रश्नके क्या मानी रह जाते हैं? बेहतर है, यदि इसका उत्तर एक आधुनिक चेक साहित्यकार – वात्सलाव चर्नी – के शब्दोंमें ही दिया जाये:

"पश्चिम – लेकिन पूर्वके स्थानपर नहीं। पूर्व – किन्तु पश्चिमके स्थानपर नहीं। पूर्व और पश्चिम, दोनों ही, इसलिए नहीं कि हम अपनेको किसी एकके साथ नत्थी करना चाहते हैं, बल्कि इसलिए कि हम मानवीयतामें विश्वास रखते हैं। कोई भी चीज़ जो मानवीय है, हम अपनेसे बाहर नहीं रखना चाहते।"

आधुनिक चेक साहित्यके मर्मको समझनेका मेरे विचारमें शायद इससे

बेहतर आरम्भ-बिन्दु कोई दूसरा नहीं। मानवीयता – यदि सचमुच उसका कोई अर्थ है – हमेशा काल और स्थान-द्वारा सीमित है। उसे 'शाश्वत' रूपमें देखना उसके जीवन्त, प्रयोगात्मक चरित्रको झुठलाना है। अपने जीवन्त रूपमें वह तात्कालिक सीमित एक ख़ास ऐतिहासिक चुनौतीका उत्तर है। 'मानवीय परम्परा' का प्रश्न अप्रासंगिक है, एक दृष्टिसे निरर्थक भी। किस देशकी परम्परा मानवीय नहीं होती अपनी समूची 'अमानवीयता' के संग ? प्रश्न यह है कि किस विशेष ऐतिहासिक बिन्दुपर – एक विशिष्ट सन्दर्भमें – कोई जाति या उसका साहित्य अपनेको एक ख़ास 'मानवीय स्थितिसे' सम्पृक्त करनेमें सफल होता है ? केवल इस दृष्टिसे चेक साहित्य मुझे आकर्षित करता रहा है। चौदहवीं शताब्दीसे लेकर – जब वोहमियामें पहली बार यान हुसने चर्चके अन्धविश्वासों और अमानवीय कार्यकलापोंके विरुद्ध आवाज़ उठायी थी – हमारी अपनी शताब्दी तक – जब जूलियस फूचिकने फाँसीके तख्तेसे फ़ासिज़्मके पाशविक, बर्बर दर्शनको अस्वीकृत करनेका टेस्टामेण्ट प्रस्तुत किया – इन छह सौ वर्षोंमें चेक साहित्यने एक लम्बी मंज़िल तय की है। इस मंज़िलके विभिन्न स्तर हैं; अनेक उतार-चढ़ाव हैं। हर मानवीय स्थितिने चेक साहित्यकारोंके भीतर एक विशेष प्रतिक्रिया उजागर की है और हर प्रतिक्रियाने चेक साहित्यको एक मूल्य, एक चरित्र प्रदान किया है। बोजेना न्यमसोवाका अमर ग्रन्थ 'दादी माँ', मारवाकी लम्बी रोमैण्टिक कविता 'मई', इरासेकके ऐतिहासिक उपन्यास और हमारे अपने समयमें चापेककी कहानियाँ और नाटक इस विशिष्ट चेक प्रतिक्रियाके अलग-अलग पहलू हैं जिनमें चेक साहित्यका वैविध्य और बहुमुखी – एक अर्थमें निहायत कॉम्प्लेक्स – चरित्र सन्निहित है।

एक दृष्टिसे आधुनिक चेक साहित्यकी पीठिका अन्य मेट्रोपोलिटन युरॅपीय देशोंसे काफ़ी भिन्न रही है। सन् १६२० का वर्ष चेक इतिहासमें एक निर्णयात्मक काल-बिन्दु माना जा सकता है। इस वर्ष 'सफ़ेद पर्वत' (जो प्राग शहरसे केवल कुछ किलोमीटर दूर है) के युद्धमें चेक सेनाएँ

पराजित हुई और चेकोस्लोवेकिया अपनी स्वाधीन सत्ता खोकर अगले तीन सौ वर्षोंके लिए हैप्सबुर्ग साम्राज्यका महज एक प्रान्त बनकर रह गया। ये वर्ष चेक जाति और संस्कृतिके लिए 'अँधेरा युग' से कम भयानक नहीं थे। इस दौरानमें चेक संस्कृतिका जर्मनीकरण करने तथा चेक भाषाका जर्मन भाषा-द्वारा उन्मूलन करनेका सतत प्रयत्न किया गया। अठारहवीं शताब्दीमें शायद ही कोई चेक लेखक अपनी भाषामें मुक्त रूपसे लिख-पढ़ सकता था। अनेक बुद्धिजीवी देशके बाहर चले गये या उन्हें जानेके लिए बाध्य किया गया। एक समय था जब चेक भाषा नगरों, विश्वविद्यालयों और सांस्कृतिक संस्थाओंसे खदेड़ दी जानेपर केवल गाँवोंके किसानों तक सीमित रह गयी थी। बड़ी संख्यामें चेक पुस्तकोंको नष्ट कर दिया गया। स्मरण रहे, हिटलर पहला जर्मन नहीं था जिसने चेक साहित्य और संस्कृतिकी स्वतन्त्र सत्ताको नष्ट करनेका बीड़ा उठाया था; वह तो केवल 'जर्मनीकरण' की उस प्रक्रियाको अन्तिम स्टेज तक ले जाना चाहता था जो तीन सौ वर्ष पहलेसे ही आरम्भ हो चुकी थी।

कोई भी विदेशी, जिसे चेक भाषाका थोड़ा-सा भी ज्ञान हो, उसकी सूक्ष्मता, लचकीलेपन और अनेक स्तरोंपर अर्थ देनेकी अद्भुत क्षमतासे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। ये सब गुण, कहना न होगा, वह भाषा ग्रहण करती है जिसने जीवित रहनेके लिए अनेक व्यवधानोंके समक्ष महज अपना अस्तित्व बनाये रखनेके लिए सदियों अनवरत रूपसे संघर्ष किया हो। इस सन्दर्भमें अनायास चेक भाषाके प्रति चापेकके स्तुति-शब्द याद हो आते हैं :

"सब भाषाओंमें कठिनतम और सबसे अधिक अर्थवान्, समृद्धिशाली, सूक्ष्मतम। उन सब भाषाओंमें, जिन्हें मैंने जाना है अथवा बोलते सुना है, तू मुझे सबसे अधिक सम्पूर्ण, संगीतमय और संवेदनशील लगी है। तुझमें जो कुछ भी देनेकी क्षमता है, चाहता हूँ, उस सबको लिख पानेकी क्षमता प्राप्त कर सकूँ। चाहता हूँ कि कमसे कम एक बार उन सब सुन्दर,

सुस्पष्ट और जीवन्त शब्दोंका रसास्वादन कर सकूँ, जो तुझमें छिपे हैं।"

चेक भाषाकी यह अदम्य और जीवन्त शक्ति ही थी कि विदेशी उत्पीड़न और दबावकी कठिनतम घड़ियोंमें भी चेक साहित्य जीवित रह सका। उन्नीसवीं शताब्दीके आरम्भमें ही चेक समाज 'अँधेरे युगसे' बाहर निकलकर 'नवजागरण'की ओर अग्रसर हो चला था। योसेफ युंगमान, दोब्रोवॅस्की और कोल्लारने अपने शोध-कार्य और अनुवादों-द्वारा न केवल चेक भाषाका वैज्ञानिक रूप स्थिर किया, बल्कि उसका कलात्मक परिष्कार भी किया। पुनरुत्थान और राष्ट्रीय जागरणके आरम्भिक लक्षण सर्वप्रथम तत्कालीन साहित्यमें दृष्टिगोचर होते हैं और वह भी कवितामें। यह वह समय था जब कारेल हिनेक मारवा (१८१०–३६) ने चेक साहित्यको सर्वथा नया मोड़ दिया था। उन्हें 'चेकोस्लोवेकियाका कीट्स' कहा जाता है – सिर्फ़ इसलिए नहीं कि वहुत कम उम्रमें उनकी मृत्यु हो गयी, बल्कि इसलिए भी कि कीट्सकी तरह उन्होंने अपनी असाधारण प्रतिभा-द्वारा चेक भाषाकी उन कोमलतम संगीतमय परतोंको खोला था जिससे उस समय तक वहुत कम लेखक परिचित थे।

कवितामें जो रोमैण्टिक परिवर्तन था, कथा-साहित्यमें वही एक व्यापक यथार्थवादी धाराके रूपमें प्रस्फुटित हुआ। आश्चर्य है कि इस क्रान्तिकारी परिवर्तनको लानेका श्रेय एक ऐसी निर्धन, गँवई-गाँवकी लेखिकाको जाता है जो स्वयं अपने जीवनकालमें कल्पना भी नहीं कर सकती थीं कि आने-वाली पीढ़ियोंपर उनकी लेखनीका कितना गहरा और स्थायी प्रभाव पड़ेगा। मुझे सन्देह है कि किसी भी देशके साहित्य, जन-रुचि और विचार-धाराको किसी एक पुस्तकने इतना अधिक प्रभावित किया है जितना बोजेना न्यमसोवाके उपन्यास 'दादी माँ'ने। कलात्मक दृष्टिसे मुझे यह पुस्तक अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं जान पड़ी, किन्तु कुछ पुस्तकोंका महत्त्व – चाहे वे उपन्यास ही क्यों न हों – महज़ सोशोलॉज़िकल अर्थमें वहुत अधिक होता है (क्या विश्व-साहित्यमें एच० वी० स्टोवकी पुस्तक 'अंकल

टाम्स केबिन' कुछ ऐसा ही स्थान नहीं रखती ? एक दूसरे स्तरपर 'डॉ० ज़िवागो' मेरे लिए बहुत कुछ ऐसा ही महत्त्व रखता है)। बोजेना न्यमसोवाकी मृत्यु १८६२ में हुई – पूरे सौ वर्ष पहले। इन सौ वर्षोंमें 'दादी माँ' के दो सौसे अधिक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। भविष्यमें इसकी लोकप्रियता कम होगी, कमसे कम अभीतक इसके कोई आसार नज़र नहीं आते।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि न्यमसोवाका उपन्यास मीलका वह पत्थर है जिससे आधुनिक चेक कथा-साहित्यकी लम्बी यात्रा आरम्भ होती है। यान नेरुदा (१८३४–९१) के आते तक वह अपनी परिपक्व, प्रौढ़ावस्थामें पहुँच चुका था। यदि न्यमसोवा चेक साहित्यकी जेन आस्टिन थीं – हालाँ कि महज़ कलात्मक अन्तर्दृष्टिके लिहाज़से जेन आस्टिनका दर्जा बहुत ऊँचा है – तो नेरुदा असन्दिग्ध रूपसे उसके डिकेन्स माने जायेंगे। कमसे कम लन्दनका जो महत्त्व डिकेन्सके लिए था, प्रागका उतना ही महत्त्व नेरुदाके लिए है।

वह भी पूरा प्राग नहीं, प्रागका एक छोटा पुराना भाग जो 'लिट्ल कुआर्टर' (मालास्त्रादा) के नामसे प्रसिद्ध है। नेरुदा सब कुछ थे – एक समर्थ कवि, आलोचक और पत्रकार। किन्तु आज उनकी लोकप्रियता उन चन्द कहानियोंपर आधारित है जो उन्होंने 'लिट्ल कुआर्टर' के निवासियों-पर लिखी थीं। और कैसी अजीब कहानियाँ हैं ये – 'लिट्ल कुआर्टर' के अँधेरे कोने और बीयर-पब, विद्रोही छात्र और सनकी क्लर्क, भिखारी, वेश्याएँ और पादरी, हर पात्र अपनेमें पूरी एक दुनिया है – दुःख, अवसाद और छोटे-छोटे झगड़ोंमें डूबी हुई – और इस दुनियाके बीच स्वयं नेरुदा हैं जिन्होंने अपने जीवनके अनेक वर्ष पुराने शहरको इन ज़र्द, टूटती दीवारोंके बीच गुज़ारे थे। कभी चाँदनी रात हो, तो नदीके 'पार लिट्ल कुआर्टर'की तंग, टेढ़ी-मेढ़ी गलियोंमें निकल जाइए, इतने लम्बे अरसे बाद आज भी महसूस होगा मानो हम नेरुदाकी कहानियोंमें वापस चले आये हैं – बीयरके

गिलासके सामने सोते सिपाही, सेण्ट निकलस चर्चके नीचे प्रेमियोंकी छायाएँ, पुराने लैम्प-पोस्टसे सटी कोई स्त्री; लगता है, सब्र कुछ वही है – कुछ भी नहीं बदला।

किन्तु कुछ था जो बदल रहा था – धीरे-धीरे – किन्तु निश्चित रूपसे। बीसवीं सदीकी बढ़ती छायासे प्राग अधिक देर तक अपनेको मुक्त नहीं रख सका।

नेरुदाकी मृत्यु १८९१ में हुई। उनके साथ चेक साहित्यका एक दौर ख़त्म होता है। कुछ ऐसा लगता है जैसे गुज़री हुई शताब्दी एक पुल हो जिसके परे 'लिट्ल कुआर्टर'की सीमाएँ समाप्त हो जाती हैं। बीसवीं शताब्दीके शुरू होते ही हम एक बार फिर अपनेको 'पुराने शहरके स्क्वॉयरमें' पाते हैं। यह प्रागका हृदय है। स्क्वॉयरका हर पुराना पत्थर चेक इतिहासकी चिरस्मरणीय घटनाओंका साक्षी है, किन्तु महज़ साक्षी नहीं, हर छोटेसे छोटे भावी परिवर्तन, उसमें लिपटी नयी पीढ़ीकी आशाओं, भ्रान्तियों और विश्वासोंकी हलकीसे हलकी प्रतिध्वनिको यहाँ सुना जा सकता है।

इसी स्क्वॉयरके सामने निकलस स्ट्रीटके सिरेपर एक पुरानी इमारत थी। फ्रेंज काफ़्का यहीं रहते थे।

आधुनिक चेक साहित्यके विकासमें काफ़्काकी अवहेलना की जा सकती है (यह कहाँतक उचित है, यह दूसरा प्रश्न है), किन्तु स्वयं काफ़्काके ग्रन्थिपूर्ण व्यक्तित्व और उनके कलात्मक विकासको समझनेके लिए तात्कालीन चेक सामाजिक स्थितिकी अवहेलना करना असम्भव है। काफ़्काने अपने जीवनका बड़ा अंश प्रागकी चहारदीवारीमें बिताया था और वे उससे गहरा लगाव महसूस करते थे।

"यह (प्राग) शहरोंमें एक शहर है। इसका अतीत वर्त्तमानसे अधिक महान् था, किन्तु इसका वर्त्तमान भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं।" (डायरीका एक अंश)

आज काफ़्काकी गणना विश्व-साहित्यके मूर्धन्य लेखकोंमें होती है। वे जर्मन भाषामें लिखते थे, किन्तु उनके संस्कार, जीवनको तौलने-परखनेका मनोवैज्ञानिक ढाँचा प्रागके वातावरणमें विकसित-निर्धारित हुआ था। वे चेक भाषा न केवल समझ लेते थे, बल्कि उसे बोलने-लिखनेमें भी उन्हें अपूर्व दक्षता प्राप्त थी। अपनी प्रेमिका मिलेनाको, जो चेक थीं, उन्होंने एक पत्रमें लिखा था कि यदि वह जर्मनके स्थानपर चेक भाषामें उनसे पत्र-व्यवहार करे, तो उन्हें बहुत प्रसन्नता होगी, "क्योंकि यह भाषा तुम्हारा अभिन्नतम अंग है; क्योंकि इसमें ही मैं अपनी वास्तविक मिलेनासे साक्षात्कार कर सकता हूँ।"

वास्तवमें आज काफ़्काको किसी देश या भाषाकी सीमाओंमें बाँधना उतना ही अवांछनीय होगा जितना उनके विकास और व्यक्तित्वको विशेष चेक परिस्थितिसे अलग करके परखनेकी चेष्टा करना। काफ़्काकी डायरी, पत्रों और उपन्यासोंमें हमें अनेक प्रतीक मिलेंगे जिनका प्रागकी गलियों, चौराहों और गिरजोंसे अन्तरंग सम्बन्ध है। किन्तु काफ़्काके लेखनमें हमें प्राग उस रूपमें नहीं मिलता जिस रूपमें ल्यूबेक टॉमस मानकी रचनाओंमें। उन्होंने उसे एक ढाँचेके रूपमें नहीं, सिर्फ़ एक प्रतीकके रूपमें स्वीकार किया था।

काफ़्काका प्राग बीसवीं शताब्दीके आरम्भमें एक संक्रान्ति-कालसे गुज़र रहा था। नयी राष्ट्रीय चेतना और रूढ़िगत परम्पराओंके बीच होनेवाले संघर्षका तनाव अनेक स्तरोंपर महसूस किया जा सकता था। अतीत और भविष्यकी सीमारेखापर प्रागकी नियति अनिश्चयकी डोरपर लटकी थी — एक ऐसा समय जब वर्त्तमान नहीं था; कहीं कोई लगाव नहीं था; कोई सम्बल नहीं था····।

अनिश्चयकी यह छाया जीवन-भर एक प्रेतकी तरह काफ़्काका पीछा करती रही। एक दूसरे स्तरपर अनिश्चयकी यह डावाँडोल स्थिति काफ़्काके यहूदी समाजमें और भी अधिक भयंकर रूपमें मौजूद थी। काफ़्का न

केवल अपनेको अजनबी पाते थे, बल्कि एक्साइल भी। और उनका यह एक्साइल दोहरा था। चेक लोगोंमें वे जर्मन थे और जर्मनोंके बीच यहूदी – दोनोंकी दृष्टिमें एक 'बाहरके आदमी'। 'काफ़्काई' अकेलापन अपने स्वरूप और प्रतीकमें चाहे कितना मेटाफिज़िकल क्यों न हो, अन्ततः उसकी जड़ें उस एवसर्ड स्थितिमें निहित हैं, जिससे काफ़्का आख़िर तक अपनेको सम्पृक्त न कर सके थे।

किन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना कि काफ़्का आस-पास होनेवाली हलचलों अथवा चेक साहित्य और जीवनकी गतिविधिके प्रति उदासीन अथवा तटस्थ थे, काफ़ी ग़लत और भ्रान्तिपूर्ण होगा। न केवल चेक साहित्यमें उनकी गहरी दिलचस्पी थी, बल्कि (जैसा उनकी डायरीसे पता चलता है) वे व्यक्तिगत रूपसे अनेक समकालीन चेक लेखकोंसे परिचित थे – एस० के० न्यूमान, कारेल तोमान और ज़रा कल्पना कीजिए, यारोस्लॉव हाशेकसे भी ! आज यह कुछ अजीब और हास्यास्पद-सा जान पड़ता है कि अराजकतावादमें विश्वास रखनेवाले हाशेक एक ही मेज़पर काफ़्का-जैसे लेखकके साथ बीयर पीते हुए गपशप करते थे। क्या कभी काफ़्काने कल्पना की होगी कि वे बीसवीं शताब्दीके सबसे महत्त्वपूर्ण चेक लेखकके सम्मुख बैठे हैं – ऐसे लेखक जिन्होंने डान कुइक्जोटके बाद विश्व-कथा-साहित्यमें सबसे अद्भुत पात्र 'श्वायक' की रचना की है।

यह एक छोटे देशका दुर्भाग्य ही माना जायेगा कि आज भी हाशेककी अभूतपूर्व प्रतिभाका सही-सही मूल्यांकन नहीं किया गया। प्रथम महायुद्धके बाद युद्धके विषयको लेकर अनेक महत्त्वपूर्ण उपन्यास सामने आये हैं, किन्तु शायद ही किसीकी तुलना "अच्छा सिपाही श्वायक"से की जा सकती है। इस पुस्तकका अनुवाद विश्वकी लगभग समस्त महत्त्वपूर्ण भाषाओंमें हो चुका है – हिन्दीको छोड़कर। चेक लोग अकसर मज़ाक़में, जिसमें व्यंग्यका पुट ज़्यादा होता है, कहते हैं कि विदेशी चेकोस्लोवेकियाके बारेमें सिर्फ़ तीन चीज़ें जानते हैं – चेक डम्पलिंग, पिल्सन बीयर और

स्वायक !

यह चाहे सही न भी हो, किन्तु इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं कि हाशेकके उपन्यास और कहानियाँ आधुनिक चेक साहित्यकी सबसे महत्त्व-पूर्ण देन रही हैं। कभी-कभी किसी देशके साहित्यमें एक ऐसे पात्रकी सृष्टि हो जाती है, जो उस देशके 'टिपिकल' चरित्रकी आत्माको उसकी समूची सीमाओं, कमजोरियों और विशेषताओंसमेत उजागर करनेमें सफल हो जाता है। स्वायक ऐसा ही पात्र है। ऊपरसे अत्यन्त बोदा, कुन्द दिमाग़ और हास्यास्पद, किन्तु अपने भोलेपनमें अद्भुत रूपसे चतुर और चालाक। हाशेकने इस असाधारण पात्रकी आड़में हर सामाजिक ढकोसलों, पाखण्ड-पूर्ण प्रथाओं, सस्ते-छिछले स्वार्थों और कुत्सित, खोखली [illegible] किन्तु अत्यन्त विनोदपूर्ण व्यंग्य किया है। शायद ही कोई चीज़ उनके लिए 'पवित्र' रही हो – युद्ध, राजभक्ति, नौकरशाही, पारिवारिक सुख। लगता है, सर्वेण्टीज़की तीखी अन्तर्दृष्टि और चेखवका सहज-सजग हास, दोनों ही हाशेकमें घुल-मिल गये हैं। आश्चर्य नहीं कि 'अभिजात' और 'प्रोलिटारियन' आलोचकोंके व्यंग्यपूर्ण अराजकतावादी मान्यताओंके सम्मुख दोनोंको अजीब-सी दुविधा महसूस होती है। किन्तु हाशेकका हास्य अपनेमें ही लक्ष्य या साध्य नहीं है। उनके उपन्यास और कहानियों-की महत्ता इसमें निहित नहीं है कि वे हमें हँसाती हैं। यह कोई भी 'समर्थ' हास्य-लेखक कर सकता है। हाशेकने हास्यकी सबसे कठिन फ़ॉर्म-पर अधिकार प्राप्त किया था – अपने युगकी झूठी नक़ाब उतारकर उसके नंगे चेहरेको सूरजकी रोशनीमें लाना – यह कोई 'एपिक' लेखक ही कर सकता है।

हाशेककी कलाकी सबसे सुन्दर व्याख्या शायद चापेकने की है: "स्कूलमें हमें सिखाया जाता था कि कलामें हास्य सिर्फ़ मसालेका काम देता है। आज मुझे लगता है कि हास्य सिर्फ़ 'मसाला' ही नहीं है। वह एक आधारभूत फ़ॉर्मूला है जिसे हर व्यक्तिको दुनियाका सर्वेक्षण करते

समय लागू करना होगा। हाशेकका हास्य ऐसा ही था। वे सिर्फ़ ऐसे लेखक थे जिन्होंने दुनिया देखी थी। अधिकांश लेखक सिर्फ़ उसके बारेमें लिखते हैं।"

प्रथम महायुद्धकी समाप्ति और द्वितीय महायुद्धका आरम्भ, दो युद्धोंके बीचका यह अल्प समय कई दृष्टियोंसे आधुनिक चेक साहित्यका स्वर्णकाल माना जायेगा। इन बीस वर्षोंने लेखकों और कवियोंकी एक ऐसी नयी पीढ़ीको जन्म दिया, जिसने चेक साहित्यको अलगाव और अकेलेपनकी उपेक्षित स्थितिसे मुक्त करके अन्तर्राष्ट्रीय मंचपर प्रतिष्ठित किया। मध्य युरॅपके इतिहासमें जहाँ अभीतक जर्मनी और आस्ट्रियाका ही बोलबाला था, एक स्वाधीन प्रजातन्त्रवादी राष्ट्रके रूपमें चेकोस्लोवेकियाका अभ्युदय एक अभूतपूर्व घटना थी। पहली बार – तीन सौ वर्षोंकी घुटन और विवशताके बाद – चेक कलाकारोंको एक मुक्त, अबाध और कुण्ठाहीन खुलेपनका अहसास हुआ।

चेकोस्लोवेकिया पूर्वी युरॅपमें सबसे अधिक विकसित औद्योगिक देश रहा है और मध्य युरॅपमें सबसे अधिक प्रजातान्त्रिक। चारों ओर सैनिक गठबन्धनों और सामन्तवादी सत्ताधारियोंके बीच घिरा हुआ चेकोस्लोवेकिया ही अकेला देश था जहाँ प्रजातान्त्रिक आदर्शोंको जनवादी परम्पराके रूपमें स्वीकार किया गया। अतः इन वर्षोंमें चेक बुद्धिजीवियोंका फ़्रान्स और इंग्लैण्डके प्रति आकर्षित होना किसी रूपमें भी आकस्मिक नहीं था – विशेषकर साहित्य और चित्रकलाके क्षेत्रोंमें। किन्तु इस प्रवृत्तिकी अपनी एक अनोखी विशेषता थी – इसके कण्टेण्ट और भावबोधपर मूलतः समाजवादी क्रान्तिके आदर्शोंकी गहरी छाप थी। कुछ लोगोंको आज यह भले विरोधाभास जान पड़े, क्योंकि आज शीत-युद्धके वातावरणमें हम रूसी क्रान्तिको इस तरह 'पूर्वके' साथ जोड़नेके आदी हो गये हैं कि कल्पना भी नहीं कर सकते कि एक समयमें (खासकर १९२० – ३५ के दौरान) युरॅपीय बुद्धिजीवियोंने उसे पश्चिमी परम्पराकी ही एक तर्कसंगत और

अनिवार्य कड़ीके रूपमें स्वीकार किया था। कदाचित् यह तथ्य कुछ लोगोंको आश्चर्यजनक लगे कि तत्कालीन अधिकांश चेक लेखक – इर्शी वोल्कर, न्यूमान, जोसेफ़ होरा, नज़वल ईवान ऑल ब्राख्त – अपनी कला और प्रेरणामें पश्चिमी साहित्यसे प्रभावित होनेके बावजूद कॅम्युनिस्ट थे अथवा मार्क्सवादी विचारधाराके बहुत निकट थे। हमें आज जो विरोधाभास लगता है, उनके लिए वही भावी विकासकी स्वाभाविक प्रक्रिया थी। पूर्व और पश्चिमके बीच कभी एक 'लौह-दीवार' खड़ी हो जायेगी, उस समय इसकी आशंका किसीको भी न थी।

किन्तु ऊपरसे जो स्थिति स्वाभाविक और तर्कसंगत दीखती थी, वह गहरे अन्तर्विरोधोंसे भरी थी। समयके संग एक निश्चित दिशाको – उसकी समूची ऐतिहासिक सीमाओंके बावजूद – चुनना आवश्यक था। 'जीनेका अर्थ है, जवाबदेह होना अपनेको एक खास मानवीय स्थितिके प्रति कॅमिट करना;' सार्त्रका यह कथन उस 'मानववादी परम्परा' पर गहरा आरोप है जो अपने 'शाश्वत मूल्योंकी' बेड़ियोंमें बँधी होनेके कारण किसी ऐतिहासिक स्थितिके प्रति जवाबदेह होनेसे कतराती है। उदारपन्थी मानववादका यह संकट युरॅपमें फ़ासिज़्मकी स्थापनाके बाद उत्तरोत्तर गहरा होता गया। जर्मनीमें अर्नेस्ट टॉलर और टॉमस मान, आस्ट्रियामें स्टीफ़ेन ज़्विग और चेकोस्लोवेकियामें कॉरेल चापेकके साहित्यने विभिन्न स्तरोंपर मानववादी मूल्योंके विघटन और संकटको बहुत ही इण्टेन्स रूपमें प्रतिबिम्बित किया है।

चापेक सर्वतोमुखी प्रतिभाके लेखक थे – उपन्यासकार, कहानी-लेखक और नाटचकार होनेके अलावा उन्होंने 'पर्सनल' निबन्ध और यात्रा-संस्मरण-जैसी साहित्यिक विधाओंमें भी अनेक नये और दिलचस्प प्रयोग किये थे। साहित्यकी शायद ही कोई विधा थी जिसके अजाने पहलुओंको उन्होंने अपने जादुई स्पर्शसे उजागर न किया हो। आधुनिक चेक साहित्यको युरॅपीय साहित्यके समकक्ष लाने और उसे बीसवीं शताब्दीके विशिष्ट

सन्दर्भमें जोड़नेका श्रेय जितना चापेकको जाता है, उतना शायद किसी अन्य लेखकको नहीं। इस दिशामें चेक भाषाका आधुनिकीकरण और गद्यको एक ठोस और व्यापक धरातलपर प्रतिष्ठित करनेमें भी उनका महत्त्वपूर्ण योग रहा है। यह सही है कि इसमें वे अकेले नहीं थे। चेपक खोदकी सुप्रसिद्ध कहानियाँ, इवान ऑल ब्राख्तके समस्यामूलक उपन्यास, यारोस्लॉव दुरीरव और व्लादिस्लॉव वॉचुराकी गहरी अन्तर्दृष्टि और कलात्मक सूझ-बूझ और साल्दाकी नीर-क्षीर विवेकात्मक आलोचना – चेक कथा-साहित्यको आधुनिक और समृद्ध बनानेमें इन लेखकोंने अपने-अपने क्षेत्रमें महत्त्वपूर्ण प्रयोग किये थे। फिर वह क्या चीज़ है जो चापेक-को इन सबसे अलग करती है; उन्हें एक विशिष्ट असाधारणता प्रदान करती है? अपने युगके समस्त अन्तर्विरोधोंको आत्मसात करनेकी क्षमता? नहीं, वे इससे भी आगे थे। बुर्जुआ संस्कृतिके मूल्योंमें आस्था रखते हुए भी वे उनकी विकृतिको (फ़ासिज़्म क्या इस 'विकृति'का ही रूप नहीं था?) अस्वीकृत करनेका साहस रखते थे जो केवल घोर ईमानदारीसे ही उत्पन्न हो सकता है। चापेकका साहित्य आस्थाका नहीं, उसे खोजनेका प्रयास है और इस दृष्टिसे वे (बुर्जुआ होनेके बावजूद) उन तथाकथित 'प्रगति-शील' लेखकोंकी तुलनामें कहीं अधिक ईमानदार थे जो बैठे-बिठाये एक ऐतिहासिक नुसख़ेके रूपमें 'आस्था'का सेवन करते हैं। टॉमस मानने जो अपने बारेमें कहा है, वह अक्षरशः चापेकपर भी लागू होता है। उन्हें "आस्थामें अधिक विश्वास नहीं था। उससे कहीं अधिक उन्हें उस मानवीय अच्छाईमें विश्वास था, जो आस्थाके बिना भी जीवित रहता है; जो सम्भवतः संयमसे ही उत्पन्न होता है।"

चापेकके आरम्भिक उपन्यास ('हॉर्दुबाल', 'एक साधारण ज़िन्दगी' इत्यादि) और उनकी कहानियोंके दो प्रसिद्ध संग्रह ('पहली जेबकी कहानियाँ' और 'दूसरी जेबकी कहानियाँ') संशयकी एक ऐसी अनिश्चित स्थितिको प्रतिध्वनित करते हैं जिसका सम्बन्ध वैयक्तिक जीवनसे

उतना ही है जितना मानवीय नियतिसे: उन सब शक्तियोंके प्रति संघर्ष जो मनुष्यको एक संकीर्ण, यान्त्रिक दाँचेमें बन्द करनेको आतुर है। मुझे नहीं मालूम, इसके पीछे कोई सैप्टिक दर्शन था। वह सिर्फ एक ऐसे सुसंस्कृत और 'सेन्सिटिव' व्यक्तिकी प्रतिक्रिया थी जो सही अर्थोंमें 'डेमोक्रेट' थे। (कॉरेल चापेकके लिए मुझे इससे बेहतर शब्द कोई और नहीं सूझता।) डेमोक्रेट ऐसे समयमें जब वह शब्द निजी आचारकी मर्यादा न होकर केवल काग़ज़ी लेन-देनका सिक्का मात्र बनके रह गया था।

अपने नाटकोंमें चापेक उपन्यासोंकी अपेक्षा अधिक सफल रहे हैं। प्रथम बार अपने विश्वविख्यात नाटक 'आर यू आर' में उन्होंने रोबट शब्द ईजाद किया जो आज विश्वकी समस्त भाषाओंमें प्रचलित हो चुका है — मशीनका ऐसा चलता-फिरता पुतला जिसमें मनुष्यकी समस्त रचनात्मक शक्तियोंको नष्ट करनेके तत्त्व मौजूद हों; जिसकी ओर बादमें ऑल्डस हक्सलेने अपनी पुस्तक 'ब्रेव न्यूज़ वर्ल्ड' में संकेत किया था। अपने बड़े भाई जोसेफ़ चापेक (जो एक महान् चित्रकार भी थे) के संग मिलकर उन्होंने अपने सुप्रसिद्ध प्रतीकवादी नाटक 'इन्सेक्ट प्ले' की रचना की थी। साहित्यमें शायद यह पहली रचना थी जिसमें फ़ासिज़्मके दुःस्वप्नकी इतनी भयंकर तफ़सीलके साथ परिकल्पना की गयी थी। नाटकका प्रकाशन १९२१ में हुआ। १९३१ में — पूरे दस वर्ष बाद — युरॅपमें पहली बार हिटलरका नाम सुनाई दिया।

क्रिसमसके दिन १९३८ में चापेककी मृत्यु हुई। एक तरहसे उनका अन्त मुझे स्टीफ़न ज़्विगकी मृत्युका स्मरण करा देता है। दोनोंके साथ युरॅपकी उदारवादी परम्परा अन्त होती है। अन्तर इतना ही था कि ज़्विग-ने स्वयं अपने हाथोंसे अपनी हत्या की; चापेककी 'हत्या' (हाँ, स्वाभाविक मृत्यु भी हत्या हो सकती है) उन हाथों-द्वारा हुई जिन्हें वे एक लम्बे अरसे तक अपनी आत्माका ही भाग समझते रहे थे। म्यूनिखका समझौता केवल चेकोस्लोवेकियाकी ही ट्रेजेडी नहीं था, उसने चापेकके समक्ष बुर्जुआ

'मानववाद'के भ्रमको भी तोड़ा था। वे उन चन्द लेखकोंमें-से एक थे जो बुर्जुआ मानववादी परम्पराके अन्तिम छोर तक गये थे – एक-एक मंज़िल पार करते हुए। उनके आगे सिर्फ़ दो ही रास्ते थे – फ़ासिज़्म और समाजवादी क्रान्ति। एकको वे बहुत पहले अस्वीकृत कर चुके थे, दूसरा उस समय उन्हें स्वीकार करनेके लिए प्रस्तुत नहीं था। अपनी मृत्युमें वे बिलकुल अकेले थे।

एक तरहसे चापेककी मृत्यु चेकोस्लोवेकियाकी ट्रेजिक नियतिका ही प्रतीक थी। कुछ महीनों बाद जर्मन सेनाएँ समूचे चेकोस्लोवेकियाको अपने बूटों तले रौंद रही थीं····वह पहला देश था जिसे फ़ासिस्ट दरिन्दोंने अपना शिकार बनाया था – पहला, लेकिन आखिरी नहीं; यह महज़ एक शुरूआत थी।

लगभग सात वर्षों तक चेकोस्लोवेकिया फ़ासिस्ट जर्मनीके अधीन रहा। इस दौरानमें चेक जनताको जिन यातनाओंका सामना करना पड़ा, उनका लम्बा ब्योरा देना यहाँ प्रासंगिक नहीं। वैसे भी वह एक लम्बी कहानी है। अनेक चेक लेखक और कवि फ़ासिस्टोंके यातनागृहोंसे वापस नहीं लौट सके। उनमें कुछ चोटीके कलाकार थे। जोसेफ़ चापेककी मृत्यु किस अज्ञात कॉन्सनट्रेशन कैम्पमें हुई, आज भी किसीको नहीं मालूम। ब्लादिस्लॉव वांचुराको, जो शायद चापेकके बाद सबसे महान् चेक कथाकार थे, गोलीसे उड़ा दिया गया। समूचा देश एक विराट् यातनागृह बन गया था जिसकी तंग चहारदीवारीमें मुक्त रूपसे साँस लेना भी असम्भव था। आश्चर्य है, ऐसी कठिन परिस्थितियोंमें भी चेक साहित्य न केवल जीवित रहा, बल्कि कुछ अत्यन्त सुन्दर कविताओं और उपन्यासोंकी रचना इसी कालमें हुई। होरा, साइफ़र्त, इलास और नजवलकी रचनाएँ अपनी ताज़गी और गरिमामें अनायास फ़्रेंच 'रजिस्ताँ' साहित्यका स्मरण कराती हैं। 'अण्डर ग्राउण्ड' प्रेससे इन्हें छोटी-छोटी परचियोंमें प्रकाशित किया जाता था और रातों-रात देशके हर कोनेमें वितरित कर दिया जाता था। यान दर्दाकी

कुछ बहुत ही सशक्त और मार्मिक कहानियाँ ('साइलेण्ट बेरीकेड', 'ग्रेटर प्रिन्सिपल') का प्रेरणा-स्रोत और पृष्ठभूमि इसी कालकी घटनाओंसे सम्बन्धित है। नॉरबर्ट फ्रीद (जो स्वयं यहूदी हैं) का उपन्यास ज़िन्दा प्राणियोंका बक्स और मिलान यारीशकी कहानियाँ यातनागृहोंकी क्रूर, कातर स्मृतियोंपर आधारित हैं। एक-दूसरे युवा लेखक यान ओत्चेनाशेकका सुप्रसिद्ध उपन्यास 'रोम्यो, जूलियट और अँधेरा' यद्यपि युद्धके कुछ वर्षों बाद लिखा गया, किन्तु समूचे उपन्यासके वातावरणपर युद्ध और फ़ासिज़्मकी छाया एक प्रेतकी तरह मँडराती दिखाई देती है।

आज भी सोलह वर्ष बाद युद्धोत्तर चेक साहित्य अपनेको इस छायासे मुक्त नहीं कर पाया है। कुछ घटनाएँ होती हैं जो बीत जानेपर भी अतीतकी धूलमें नहीं दब पातीं। समयके संग उसकी एक नयी, अप्रत्याशित रूपसे अजानी परत खुल जाती है – एक ताज़े घावकी तरह – और उसे हर पीढ़ी उसी आतंक और नंगेपनमें महसूस करती है जैसे गुज़री हुई पीढ़ीने उसे पहलेपहल देखा था; अपनेमें जिया था। चेक लोगोंके लिए युद्ध ऐसी ही 'स्मृति' है, यदि जीवित दुःस्वप्नको स्मृति कहा जा सके। युद्ध एक एक्सट्रीम स्थिति है और हमारे युगमें सत्य केवल एक्स्ट्रीम स्थितिमें ही (चाहे वह कलामें हो या जीवनमें) उपलब्ध हो सकता है। क्योंकि ऐसी 'स्थिति' औसत, क्षुद्र और कृत्रिम घटनाओंकी धूल और गर्दको एक 'फ्लैश लाइट'की तरह चीरती हुई भीतर छिपे कोढ़के उन रिसते घावोंको निरावृत कर देती है जिन्हें हम दैनिक जीवनमें 'आदर्शों'के पैबन्द लगाकर अपनेमें छिपाये रखते हैं।

फ़ासिज़्म, युद्ध, यातनागृह····जबतक हमारे लिए (हम भारतीयोंके लिए) ये शब्द महज़ 'शब्द' ही रहेंगे, हम शायद तबतक कभी युद्धोत्तर युरॅपकी मानसिक स्थितिको समझनेमें समर्थ नहीं हो सकते और उस सीमा तक इन देशोंका युद्धोत्तर साहित्य भी हमारे लिए अजनबी बना रहेगा।

मुझे याद है, प्रागमें एक भारतीय सज्जनने, जो अपनेको 'बुद्धिजीवी'

मानते हैं, इसपर काफ़ी विस्मय प्रकट किया था कि यद्यपि युद्धको समाप्त हुए 'इतना लम्बा अरसा गुज़र गया', किन्तु चेक लेखक अभीतक इसके पीछे पड़े हैं। कोई उपन्यास हो या फ़िल्म, युद्धकी चर्चा अवश्य आती है; 'क्या इसके बाहर कोई और विषय नहीं रह गया है ?'

उनका प्रश्न अत्यन्त स्वाभाविक और हमारे आत्म-तुष्ट स्वभावके अनुकूल ही था। इस 'आत्म-तुष्टि' की ही अभिव्यक्ति एक दूसरे रूपमें भी होती है (और वह भारत तक सीमित नहीं) जब हम समूचे युद्धोत्तर चेक साहित्यको 'कॅम्युनिस्ट प्रचारवाद' कहकर बहुत आसानीसे उसे नज़र-अन्दाज़ कर देते हैं। यह बहुत सुगम तरीक़ा है किसी भी प्रकारके मौलिक चिन्तनसे बचनेका।

वास्तवमें किसी देशकी सामाजिक व्यवस्थामें होनेवाला परिवर्त्तन तत्काल ही उसकी संस्कृति और साहित्यकी गतिको नहीं बदल सकता और जब परिवर्त्तन होता है, तो बहुत ही परोक्ष और पेचीदा ढंगसे किसी गढ़े-गढ़ाये फॉर्मूलाके आधारपर नहीं (जहाँ यह परिवर्त्तन ज़बरदस्ती थोपा जाता है, वहाँ 'कला'-जैसी कोई चीज़ रह जाती है, मुझे सन्देह है)। मेरा अपना कुछ ऐसा अनुभव रहा है कि चेक साहित्यकारोंके लिए (और ज़ाहिर है, इनमें पार्टी आलोचक और लेखक-संघके 'ज़िम्मेदार' अधिकारी शामिल नहीं हैं) अभीतक समाजवादी व्यवस्था केवल एक सन्दर्भ अथवा 'फ्रेमवर्क'के रूपमें ही सामने आयी है (कुछ-कुछ वैसे ही जैसे युवा अँगरेज़ी लेखकोंके लिए 'वेलफेयर स्टेट', आदर्शों निराशाओंका एक पुंज, एक अस्पष्ट सम्भाव्य स्थिति जो उनके लिए अपनी सृजन-प्रक्रियामें उतनी ही अर्थपूर्ण या अर्थहीन हो सकती है जितनी एक ख़ास सन्दर्भमें फ्रेंच अथवा अँगरेज़ी लेखकके लिए। उन्हें अथवा उनके साहित्यको (और मुझे युवा चेक साहित्यकारोंका आधुनिक साहित्य अपने वैविध्यके कारण काफ़ी आकर्षित करता रहा है) किसी राजनीतिक-परिधिमें बाँधना न केवल उनकी अत्यन्त कॉम्प्लेक्स स्थितिको अति साधारण रूपमें

देखना होगा, बल्कि उन कथाकारोंके प्रति भी काफ़ी अन्याय होगा जो इस ख़ास सन्दर्भमें अपना अलग रास्ता खोजनेमें संघर्षरत हैं।

उपर्युक्त आधुनिक चेक-कथाकारोंमें मुझे यानविस, लुद्विक अश्केनाज़ी और इर्शी मारेककी रचनाएँ अपने नवीन प्रयोगों, वैविध्य और ताज़गीके कारण काफ़ी महत्त्वपूर्ण जान पड़ी हैं। कॉरेल चापेकके प्रभावसे मुक्त होकर (और यह कोई आसान काम नहीं!) उन्होंने अपने विशिष्ट व्यक्तित्वका ही निर्माण नहीं किया, बल्कि कथा-साहित्यकी नयी सम्भावनाओंको अपनी रचनाओं-द्वारा खोजनेकी चेष्टा की है।

अश्केनाज़ीका आधुनिक चेक कथाकारोंमें बिलकुल अलग स्थान है। युरॅपमें भी बहुत कम ऐसे कथाकार हैं जिनकी तुलना उनसे की जा सके। अधिकतर उन्होंने अपनी कहानियाँ एक पैरेबलके रूपमें लिखी हैं – अपनी तटस्थता और 'उदासीनता'में निहायत मार्मिक, अपने रूखे व्यंग्यमें गहरी अन्तर्दृष्टि लिये। अश्केनाज़ी आस-पासकी दुनियाको एक 'अबोध' शिशुकी विस्मयकारी आँखोंसे देखते हैं और अचानक हमारे सामने वह एकदम अपरिचित-सी हो जाती है जैसे किसीने उसके रंग और कोण बदल दिये हों····और हमें लगता है जैसे कितनी ही 'महत्त्वपूर्ण' चीज़ें काफ़ी बेतुकी और अर्थहीन-सी हो गयी हैं। कितनी ही चीज़ें, जिन्हें हम आदतन नज़र-अन्दाज़ कर देते हैं, एक विशेष स्तरपर निहायत 'सिगनिफिकेण्ट'-सी जान पड़ने लगती हैं। उनकी कहानियोंकी दुनिया एक साथ ही एक ही समयमें बहुत सहज और बहुत पेचीदा रूपमें हमारे सामने उघड़ जाती है।

फ़ॉर्ममें कुछ-कुछ अश्केनाज़ीके समान किन्तु भावबोधमें बिलकुल भिन्न इर्शी मारेक हैं। उनकी अधिकांश कहानियाँ दो-तीन पन्नोंसे ज़्यादा लम्बी नहीं होतीं। लेकिन जितनी ही संक्षिप्त उतनी ही निशाना बेधनेमें अचूक। कथानकके नामपर महज़ एक 'झलक' होती है। समस्त अनावश्यक तफ़सीलोंको अलग करके मानवीय रिश्तोंके किसी ख़ास नुक़्तेको एक हलके 'फ़्लैश' में आलोकित कर देना, इसमें उन्हें अद्भुत क्षमता प्राप्त है।

देहरीके भीतर : चेखॅवके पत्र

किसी व्यक्तिके कमरेमें दबे-पाँव चले आना, आँख बचाकर उसके रंग-ढंग, भाव-भंगिमाको देखना, वह सब कुछ देखना जो बाहरकी दुनियासे हमेशा छिपा रहता है, शिष्टाचारके विरुद्ध भले ही हो, कौतूहलजनक और दिलचस्प अवश्य होता है। हम स्तब्ध-से मन्त्रमुग्ध होकर देहरीपर खड़े रहते हैं। सहमी, चौकी-सी निगाहें भीतरकी हर चीज़-लिखनेकी मेज़, क़ालीन, दीवारोंके कोनोंसे झूलते हुए जालेको धीरे-धीरे छूती हैं। एक अलग-सा विश्व है, बाहरसे अछूता, अपनेमें सिमटा हुआ। अँधेरा (बाहरकी दुनिया-की तरह) रोशनीको ढकता नहीं, सिर्फ़ उसे 'रिलीफ़' देकर मुक्त हो जाता है, और रोशनी अँधेरेकी जगह नहीं घेरती, केवल इंगित करती है अपनी सीमाको, जहाँ वह ख़त्म होती है, और अँधेरा आरम्भ होता है।

जब हम किसी व्यक्तिके पत्र पढ़ते हैं (प्रायः ऐसे व्यक्तिके, जो अब नहीं रहा) तो कुछ-कुछ ऐसा ही लगता है। लगता है, जैसे क्षण-भरके लिए दरवाज़ेका परदा उठ गया है; दबे-पाँव देहरी पार करके हम कमरेके भीतर चले आये हैं – देखो····(हम अपनेसे कहते हैं) देखो – यह वह खिड़की है, जिसके बाहर याल्टाके समुद्रको देखते हुए चेखॅव मास्कोके बारेमें सोचा करते थे, जहाँ ओल्गा थी, मास्को आर्ट थिएटर था, सुबह-शाम जहाँ गिरजेके घण्टे गूँजा करते थे····और देखो (हमारी आँखें समय और स्थानके अन्तरालको पार करती हुई फ़्रान्सके एक उपेक्षित क़स्बेपर ठिठक जाती हैं) यह वह जीर्ण-जर्जरित कुरसी है, जहाँ फ्लाबेर मछुएकी समाधिस्थ, एकाग्र मुद्रामें काँटा डाले बैठे रहा करते थे ताकि भाषाकी अतल गहराइयोंके भीतरसे एक ऐसे उपयुक्त शब्दको बाहर निकाल सकें

जिसके बिना कोई वाक्य पिछले अनेक दिनोंसे अधूरा पड़ा है। हम एक कमरेसे दूसरे कमरेमें जाते हैं – मेज़पर रखे क़ाग़ज़ोंको छूते हैं, कुरसीको सहलाते हैं, और फिर खिड़कीके बाहर फैले उदास उनींदे समुद्रको देखने लगते हैं। हम उन घड़ियोंको पुनः जी लेना चाहते हैं, जो इन कमरोंमें रहनेवाले व्यक्तियोंकी साक्षाती (विटनेस) थीं। वे अब नहीं रहे, किन्तु पत्रोंमें उनकी उपस्थिति आज बरसों बाद भी उतनी ही ठोस, उतनी ही सजीव लगती है, जितना कभी उनका व्यक्तित्व रहा होगा।

यहाँ हमें यह मानना होगा कि पत्रोंकी अपनी एक विशिष्ट परिधि है, जिसकी सीमा-रेखा एक छोरपर डायरीको छूती है····मात्र छूती-भर है, किन्तु दोनोंसे अलग है। कहानी निरपेक्ष है, आत्मानुभूतिके स्तरपर (सब्जेक्टिव है ऑब्जेक्टिवके प्रति) : डायरी आत्मानुभूत लेखा है, निरपेक्षताके स्तरपर (ऑब्जेक्टिव है, सब्जेक्टिवके प्रति) पत्रोंमें – विशेष लेखकोंके पत्रोंमें – डायरीकी आत्मानुभूति और कहानीकी निरपेक्षता आधी-आधी बँट जाती है; इसलिए वे इतने दिलचस्प और आकर्षक लगते हैं। डायरीकी निरावृत स्थिति पत्रोंमें ढक जाती है, उसी तरह, जैसे कहानीके ढके अंग उनमें खुल जाते हैं। कला-कृतिका निर्वैयक्तिक मौन, और डायरीका स्वकथ (मोनोलॉग) इन दो सीमान्तोंको पाटने खातिर ही शायद पत्रोंका आविष्कार हुआ होगा !

पत्रोंमें भी अन्तर है। एक साधारण व्यक्ति केवल पत्र लिखते समय चिन्तन करता है, अपने बारेमें, अपनी आस-पासकी दुनियाके बारेमें। तभी उनके पत्र कभी-कभी इतने गम्भीर, इतने भारी लगते हैं। लेखक अकसर 'चिन्तन' से मुक्ति पानेके लिए ही पत्र लिखते हैं – अपने पत्रोंमें वे प्रायः एक हलका-फुलका-सा अन्दाज़ बनाये रखना चाहते हैं। चेखॅव और विरजीनिया वुल्फके पत्रोंको पढ़कर अकसर मनमें सन्देह-सा उत्पन्न होने लगता है – ऐसा उल्लास, विनोद-व्यंग्यके पीछे एक हलकी-सी किरकिरी छिपी रह गयी है। एक अदृश्य-सी छाया, जिसे हम देख नहीं पाते।

लगता है उनके पत्र खोलते बहुत कम हैं, छिपाते अधिक हैं या दूसरे शब्दों-में, वे उतना ही कुछ खोलते हैं, जिसकी आड़में असली चीज़ तिरोहित हो सके। चेखॅवका अन्तिम पत्र, जो उन्होंने मृत्युसे चार दिन पहले अपनी बहनको लिखा था, पढ़ते हुए एक अजीब-सी प्रतिक्रिया हमारे मनपर होती है। चेखॅवने उस पत्रमें अपनी बीमारीके बारेमें बहुत कम लिखा है (जब कि वह जानते थे कि उनका अन्त बहुत दूर नहीं है) साहित्यके बारेमें एक शब्द भी नहीं। अपने शारीरिक दुःख-दर्दको तीन-चार उड़ते वाक्योंमें रफ़ा-दफ़ा कर दिया है। परेशानीका कारण कुछ और ही है – "जबसे यहाँ (जर्मनी)में आया हूँ, मैंने एक भी स्त्रीको सुन्दर, आकर्षक वेश-भूषामें नहीं देखा। सच, यहाँकी स्त्रियोंमें सुरुचिके अभावको देखकर अकसर मन खिन्न हो जाता है।"

चेखॅवके पत्र पढ़कर कभी-कभी आश्चर्य होता है कि इतना अलमस्त मौजी व्यक्ति किस प्रकार अपनी कहानियोंमें अवसाद और तिक्तताके गहरे रंग भर देता है। दूसरोंके सामने अपने दुःख-दर्दको व्यक्त करनेसे वह बेहद घबराते थे। कभी किसीने उन्हें दुनियाके प्रति गिला या शिकायत करते हुए नहीं देखा। ज़िन्दगीकी हर ख़ूबसूरत चीज़ – अच्छे भोजनसे लेकर स्त्रियोंकी रंगा-रंग पोशाक तक – उन्हें आकर्षित करती थी। जीवनका शायद ही कोई ऐसा पहलू रहा हो, जिसके प्रति वह उदासीन रहे हों। उनके पत्रोंको पढ़कर लगता है कि वह अपनी ज़िन्दगीके हर क्षणको पूरी तरह निचोड़कर भरपूर जी लेना चाहते थे। मानो उन्हें पहलेसे ही मालूम हो कि उनकी ज़िन्दगी ज़्यादा लम्बी नहीं चलेगी। गरमीकी छुट्टियोंमें वह प्रायः मास्कोसे दूर एकान्तमें काम करनेके लिए छोटी-सी 'कॉटेज' किराये-पर ले लिया करते थे किन्तु वहाँ जानेकी देर नहीं होती थी कि सब मित्रोंको अपने पास बुलानेके लिए धड़ाधड़ पत्र भेजना शुरू कर देते थे। उनसे बात करते हुए कभी स्वप्नमें भी यह आभास नहीं होता था कि वह तपेदिक़के रोगी हैं, कई रातें बिना आँख झपकाये अकेले कमरेमें बिस्तरपर करवटें

लेते हुए गुज़ार देते हैं। दूसरे लोगोंकी बात अलग है, अपनी पत्नी ओल्गा-के सम्मुख भी वह अपने बारेमें पूर्ण रूपसे नहीं खुल पाते थे। ओल्गाको जो उन्होंने याल्टासे पत्र लिखे हैं, उनमें सतही बातोंपर अधिक ज़ोर दिया जाता था; किन्तु अपनी मानसिक समस्याओं अथवा शारीरिक परेशानियोंके सम्बन्धमें वह अकसर मौन साध लिया करते थे। आखिरी बीमारीके दिनोंमें वह बहुत अकेलापन-सा अनुभव किया करते थे और चाहते थे कि ओल्गा उनके पास कुछ दिन बिता सके। किन्तु उन्होंने पत्रोंमें अपनी यह इच्छा कभी प्रकट नहीं की। अपनी बीमारीमें किसी अन्य व्यक्तिको अपने संग घसीटना उन्हें अनुचित और अरुचिकर लगता था।

अपनी कहानियों और अपने व्यक्तित्वके बीच अन्तर बताते हुए एक बार उन्होंने अपने एक पत्रमें लिखा था :

"तुम्हें मेरी कहानियोंके पात्र बहुत उदास और दुःखी जान पड़ते हैं। यह मैं जान-बूझकर नहीं करता, लिखते समय स्वतः ऐसा हो जाता है। मैं अपनेको दुःखी व्यक्ति नहीं मानता, कमसे कम लिखते समय मैं अपनेको हमेशा एक सुखद मनःस्थितिमें पाता हूँ। यह बात हमेशा नोट की गयी है कि लोग स्वभावतः दुःखी और निराश होते हैं, वे बहुत हलकी-फुलकी, हँसी-खुशीकी चीज़ें लिखते हैं, जब कि शान्त और सुखी लेखकोंकी कृतियाँ अकसर अवसादपूर्ण होती हैं। मैं एक ऐसा ही प्रसन्न व्यक्ति हूँ, कमसे कम मैंने अपनी ज़िन्दगीके आरम्भिक तीस वर्ष आरामसे बिताये हैं।"

यह सतह है। वास्तवमें जिन चीज़ोंके प्रति चेखॅवकी जितनी अधिक तीव्र समवेदना और सहानुभूति होती थी, जो चीज़ें उन्हें बहुत निकटसे छूती थीं, उनके सम्बन्धमें वह कुछ भी कहनेसे कतराते थे। इस दृष्टिसे वह दॉस्तॉवस्कीकी 'मेलोड्रेमेटिक-आत्मपीड़ा'से उतना ही दूर थे जितना तॉल्स्तॉयके अराजक आदर्शवादसे। यह आश्चर्यकी बात है कि जो व्यक्ति अपनी जान हथेलीपर रखकर प्लेगसे पीड़ित मरीज़ोंकी सेवा-शुश्रूषा करने एक गाँवसे दूसरे गाँव भटकता फिरता है, वह अपने पत्रोंमें एक जगह भी

उसकी चर्चा नहीं करता। चेखॅव साहित्यिक होनेके अलावा एक डॉक्टर भी थे – मनुष्यके दुःख-दैन्यको जितनी निकटता और नंगेपनमें उन्होंने देखा था, शायद ही किसी लेखकने देखा हो। इसलिए जन-कल्याण या सामाजिक-न्यायके सम्बन्धमें किसी प्रकारकी धार्मिक रूढ़िवादिता (दॉस्तॉवस्की) या भावुक आदर्शवाद (तॉल्स्तॉय) को वह बिलकुल थोथा निरर्थक समझते थे। सम्भवतः यही कारण है कि आज हमें दॉस्तॉवस्कीकी डायरी ('राइटर्स' डायरी) के हजारों शब्द कृत्रिम और आडम्बरपूर्ण लगते हैं, जब कि चेखॅवके पत्रोंमें छिपा मौन अधिक महत्त्वपूर्ण और मर्मस्पर्शी जान पड़ता है।

अपनी कृतियोंके सम्बन्धमें चेखॅवने अपने पत्रोंमें बहुत कम लिखा है। अकसर वे मज़ाक़ उड़ाते रहते थे। उन्होंने कभी उन्हें अधिक महत्त्व नहीं दिया, जो बादमें हानिप्रद सिद्ध हुआ। क्योंकि जैसा टॉमस मानने एक जगह कहा है, चेखॅवकी देखा-देखी उनके आलोचक भी काफ़ी वर्षों तक उनके कृतित्वकी उपेक्षा करते रहे। अपने लेखनके सम्बन्धमें उनके मनमें एक अजीब-सी वितृष्णा और असन्तोषका भाव भरा रहता था कभी-कभी तो वह सोचने लगते थे कि उनकी सब कहानियाँ व्यर्थ और निरर्थक हैं। साहित्यके इतिहासमें शायद ऐसे लेखक बहुत कम मिलेंगे, जिन्होंने कला-को एक नये क्रान्तिकारी मोड़पर लाकर खड़ा कर दिया हो (जैसा चेखॅवने कहानी-कला और नाट्य-कलामें परिवर्तन किया था) और जो स्वयं अपनी इस अभूतपूर्व देनके प्रति असन्तुष्ट हों। क्या कला जीवनके लिए आवश्यक है? तॉल्स्तॉयके इस प्रश्नको वह निरर्थक समझते थे क्योंकि उनके विचारमें कला जीवनकी उत्कृष्टतम अभिव्यक्ति है। किन्तु अपनी कलाकी 'उपादेयता' (यदि सचमुच उनकी कहानियोंके सम्बन्धमें हम यह शब्द प्रयुक्त करें!) के सम्बन्धमें वह हमेशा ही शंकालु थे। इसका कारण था, चेखॅवकी कहानियाँ ऊपरसे अत्यन्त विशृंखलित, निष्कर्षहीन और निरुद्देशीय-सी जान पड़ती थीं। विद्वान् आलोचक हमेशा उनपर

'लक्ष्यहीन लेखक' का आरोप लगाते थे। रूसकी जिस संकटपूर्ण परिस्थिति में – जहाँ हर वर्ष हज़ारों लोग भूख और महामारीमें मक्खियों-की तरह मर जाते थे, जहाँ जारकी मध्ययुगीन बर्बरताके वातावरणमें स्वतन्त्रताकी बात करना भी राजद्रोह माना जाता था – स्वयं चेखॅवको अपनी हलकी-फुलकी कहानियाँ अजीब-सी असंगत और अर्थहीन मालूम पड़ती थीं। तत्कालीन रूसके हर महान् लेखककी तरह वह अपनेको कहीं-न-कहीं दोषमना 'गिल्टी कान्शस'-सा पाते थे।

अपने मनके इस ऊहापोह और अनिश्चयको प्रकट करते हुए उन्होंने अपने मित्र सुरुकोवको एक पत्रमें लिखा था :

"जो लेखक अमर हो गये हैं, उनके साहित्यमें हमेशा एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व विद्यमान रहता था – वे किसी निश्चित लक्ष्यकी ओर बढ़ते थे और दूसरोंको भी अपने संग आनेका आह्वान देते थे····

किन्तु क्या हम अपने बारेमें यह कह सकते हैं ? हमारा कोई भी लक्ष्य नहीं है – न दूरका, न पासका। हमारी आत्माएँ बिलियर्ड-टेब्लकी तरह नंगी और चपटी सपाट हैं। ऐसा व्यक्ति जो कुछ नहीं चाहता, किसी चीज़की आशा नहीं करता, किसीसे नहीं डरता, कभी कलाकार नहीं बन सकता।"

साहित्य-सम्बन्धी सैद्धान्तिक बहसोंमें उन्होंने शायद ही कभी अपनी रुचि दिखाई हो – कमसे कम अपने पत्रोंमें उन्होंने हमेशा उन्हें निरर्थक और सारहीन ही समझा है :

"साहित्यकी 'कलात्मकता' एक ऐसा शब्द है, जिससे मैं उतना ही डरता हूँ जितना बनियेकी बीवी भूत-प्रेतसे। जब लोग मुझसे साहित्यकी कलात्मक, अकलात्मक, अथवा यथार्थवादी प्रवृत्तियोंकी चर्चा करते हैं, तो मेरे होश-हवास गुम हो जाते हैं। मैं ढुलमुल-सा जवाब देने लगता हूँ, जो प्रायः सारहीन अर्ध-सत्योंसे भरे होते हैं और जिनका मेरी दृष्टिमें एक कौड़ीका मूल्य नहीं होता। यदि तुम मुझसे पूछो मैं शेक्सपियरको दॉस्तॉवस्की

(तत्कालीन रूसका एक बहुत ही लोकप्रिय और घटिया लेखक) की अपेक्षा क्यों अधिक पसन्द करता हूँ, तो सचमुचमें कोई उत्तर नहीं दे सकूँगा।"

ऐसे ही मैं चेखॅवके पत्र – संकल्प-विकल्प, व्यंग्य और विरोधाभाससे भरे हुए। कलामें 'सिद्धान्तहीन', किन्तु व्यक्तिगत जीवनमें इतने कठोर सैद्धान्तिक, ड्राइफस-केसके समय ज़ोलाका पक्ष लेते हुए उन्होंने अपने पुराने मित्र सुवरिनसे हमेशाके लिए सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। साहित्यके प्रति अगाध प्रेम किन्तु अपनी रचनाओंके बारेमें अजीब-सा हीन-भाव: व्यवहारमें बहुत कोमल, ढुलमुल और संकोची, किन्तु मनके गुह्यतम कोनोंमें छिपी एक लौहवत् दृढ़ता – जिसे देखकर उनके मित्र अचम्भेमें पड़ जाते थे। कौन जानता था कि तपेदिकसे पीड़ित यह रुग्ण लेखक – जो केवल हल्के-फुल्के मज़ाक़ कर सकता है – अपना घर-बार, सुख-सुविधासे मुँह मोड़कर सायबेरियाके अभिशप्त बन्दियोंकी दुर्दशा अपनी आँखोंसे देखनेके लिए हज़ारों मीलकी दुर्गम, बीहड़ यात्रा करने निकल पड़ेगा। जीवनके प्रति हलका-सा 'एपीक्यूरियन' दृष्टिकोण, किन्तु हर प्रकारकी अन्धविश्वास और उच्छृंखलताका तीव्र विरोध करनेवाले; सुसंस्कृत व्यक्ति कौन होता है – इस सम्बन्धमें उन्होंने अपने शराबी भाईको एक लम्बा-सा पत्र लिखा था, जिसके हम यहाँ कुछ अंश देनेका लोभ संवरण नहीं कर पा रहे हैं :

"तुम योग्य व्यक्ति हो किन्तु तुममें एक चीज़का अभाव है – संस्कृति! एक सुसंस्कृत व्यक्तिके क्या लक्षण होते हैं?

१. वे समझदार, सहिष्णु और विनम्र होते हैं। यदि गोदन ज़रूरतसे ज़्यादा पक गया हो, तो वे थाली पटककर मुँह नहीं फुला लेंगे। घरमें यदि कोई अजनबी आ जाये तो आँखें नहीं तरेरेंगे और न ही दूसरे कमरेसे आती हुई आवाज़ोंको सुनकर झुँझलायेंगे।

२. वे दूसरोंके सामने 'पोज़' नहीं करते, और न ही अपने गुप्त भेदों-को ज़ोर-ज़बरदस्ती दूसरोंपर थोपते हैं। दूसरे व्यक्तिके कानोंका सम्मान

करते हुए वे बोलनेकी अपेक्षा चुप रहना ही ज़्यादा पसन्द करते हैं।

३. वे लोगोंकी सहानुभूति अपनी ओर खींचनेके लिए यह नहीं कहते, "अरे मैंने तो अपनी ज़िन्दगीको बरबाद कर दिया" या "मुझे तो हमेशा लोग ग़लत समझते हैं।" क्योंकि ऐसी बातोंसे मात्र सस्ता छिछलापन ही प्रकट होता है।

४. वे डींग नहीं मारते। सही मानेमें जो व्यक्ति गुणसम्पन्न होते हैं, वे भीड़में अपनेको छिपाये रखते हैं और अपनी योग्यताका प्रदर्शन करनेसे हमेशा कतराते हैं।

"सुसंस्कृत व्यक्ति बननेके लिए 'पिकविक-पेपर' पढ़ लेना या फ़ास्टके मोनोलॉग कण्ठस्थ कर लेना ही काफ़ी नहीं हैं।"

हम किताब बन्द करके खिड़कीके पास आ खड़े होते हैं। जो पत्र साठ-सत्तर वर्ष पहले किसी भूले-भटके क्षणमें लिख दिये गये थे (शायद ऐसी ही कोई दोपहर होगी, शायद आधा पत्र लिखनेके बाद चेखॅव खोयी-सी मुद्रामें पाइप लिये खिड़कीके पास आ खड़े होंगे), आज वह क्षण पाइप-के धुँएके संग किताबके पन्नोंमें दबकर रह गया है, कुछ उसी तरह, जैसे हम बचपनमें फूलकी लाल पँखुरी अपनी किताबके पन्नोंके बीच रख देते थे और कुछ दिनों बाद अचानक उसे देखकर विस्मित-से हो जाते थे।

उस क्षणकी तात्कालिकता, पँखुरीकी ताज़गीकी तरह आज नहीं रही, किन्तु वह संकेत करता है उस जीती-जागती स्थितिकी ओर, जब हमने पहले-पहल फूलको देखा था, उस क्षणको उसके कच्चेपनमें जिया था। चेखॅव अपने पत्रोंमें हमेशा एक 'केज्युअल'-सा भाव रखते थे—जैसे कोई बच्चा बर्फ़की पतली-सी परतपर स्केट करता हुआ एकको छूकर दूसरे खम्भेकी ओर बढ़ जाता है। आहत अभिमान, किसी ग़लतफ़हमीका दुःख, घरेलू परेशानियाँ, आलोचकोंकी निन्दा-भर्त्सना—ये सब कुछ ऐसे ऊँचे-नीचे तट हैं, जिन्हें छूकर उनके पत्रोंका क्षणिक ज्वार अनेक पत्थरोंको गीला करके अपने पुराने स्तरपर लौट आता है। आज बरसों बाद जब हम इन

पत्थरोंको उठाते हैं, तो उनके नीचे दबी सामयिकताकी काईपर कुछ उजली-चमकीली सीपियाँ ही दिखाई दे जाती हैं, जिन्हें अनजानेमें चेखॅवने हमारे लिए छोड़ दिया है। चेखॅवकी कहानियोंकी तरह उनके पत्रोंमें किसी 'शाश्वत सत्य' के दर्शन नहीं होते, वे केवल तात्कालिक क्षणको ही उजागर करते हैं। उन्हें पढ़कर हलकी-सी खीझ होती है, क्योंकि वे किसी निष्कर्ष-पर नहीं पहुँचते – लगता है जैसे कोई धुन अधूरी ही बीच हवामें झूलती रह गयी है, उसे 'फिनिशिंग-टच' देनेके लिए जिन अन्तिम सुरोंकी हम प्रतीक्षा करते हैं, वे कभी नहीं आते।

किन्तु शायद पत्रोंकी इस 'केज्युअल-टोन', इस अधूरेपनमें ही उनकी सहज आत्मीयता, उसकी सार्थकता निहित है। जो पत्र 'शाश्वत-सत्यों', गुरु-गम्भीर सिद्धान्तोंका निरूपण करते हैं, जिन्हें लेखक भविष्यकी ओर देखते हुए लिखता है – वे महत्त्वपूर्ण होते हैं या नहीं, कहना कठिन है – रूखे, नीरस और उबा देनेवाले अवश्य ही होते हैं। पत्रोंका यदि कोई शाश्वत सत्य है – तो उनकी तात्कालिकतामें। प्रस्तुत क्षणकी धड़कन और तरलता, झटके और झनझनाहट धूल और पसीनेके मैले, बुसे लिफ़ाफ़ेमें बन्द होकर ही वे पत्र भविष्य तक पहुँच पाते हैं – बाक़ी सब सजे-सँवरे 'सत्य' उन बैरंग पत्रों-से होते हैं, जिन्हें भावी पीढ़ी बिना पढ़े लौटा देती है।

किन्तु चेखॅवके पत्रोंकी तात्कालिकता जहाँ उन्हें दिलचस्प बनाती है, वहाँ एक सीमा-रेखा भी खींच देती है, जिसके पीछे सब बत्तियाँ धीरे-धीरे बुझ गयी हैं। उनके पत्रोंकी हर पंक्तिके बीच कुछ धुँधले अस्पष्ट-से 'अण्डर-ठोन' हैं, दबे रह गये हैं, जिन्हें हम महसूस करते हैं, छू कभी नहीं पाते। अपनी वैवाहिक-ट्रेजेडीके सम्बन्धमें अन्त तक उन्होंने अपने पत्रोंमें एक शब्द भी नहीं लिखा।

साखालिन (सायबेरियामें स्थित) जानेके उनके निश्चयपर अनेक लोगोंने अपने विभिन्न मत प्रकट किये हैं – शायद वह अपने असफल प्रेमकी

पीड़ाको भूलनेके लिए वहाँ गये थे – शायद वह अपने लेखनसे असन्तुष्ट थे और नये अनुभव प्राप्त करना चाहते थे या शायद, जैसा उन्होंने सुरू-कोवको अपने एक पत्रमें लिखा था :

"हो सकता है, मुझे इस यात्रासे कुछ भी हाथ न लगे, किन्तु दो या तीन दिन तो अवश्य ही ऐसे होंगे, जिन्हें मैं आजीवन याद रखूँगा, जिनकी स्मृति अपने दुःख या आनन्दके संग मुझे हमेशा कचोटती रहेगी।"

कारण चाहे कुछ भी रहे हों, यह स्पष्ट है कि साखालिन जानेसे पहले उनके पत्रोंमें अपने जीवनके प्रति गहरा असन्तोष प्रकट होता है – यह असन्तोष पूर्ण रूपसे व्यक्तिगत जीवनको लेकर नहीं था, हालाँ कि उसकी कटुताका एक बड़ा अंश उसमें शामिल रहा होगा। न ही इस निश्चयके पीछे कोई स्पष्ट सामाजिक या कलात्मक उद्देश्य नज़र आता है, परोक्ष रूपसे उसका प्रभाव चाहे जो भी रहा हो। अपने पत्रोंमें जो कारण उन्होंने बताये हैं, वे एक दूसरेसे इतने भिन्न हैं कि शायद सही कोई भी नहीं है, या आंशिक रूपसे सब सही हैं, किन्तु एक दूसरेसे वे इतने उलझ गये हैं कि स्वयं चेखॅव उन्हें एक दूसरेसे अलग नहीं कर पाते।

साखालिनकी यात्राने – उसके निवासियोंकी यातनाओं-यन्त्रणाओंने उन्हें एकबारगी झँझोड़-सा डाला था – और यही वह चाहते भी थे। वहाँ-से लौटनेपर उनके बाह्य जीवनमें कोई विशेष अन्तर नहीं आया किन्तु यह निर्विवाद है कि जीवनके प्रति उनका दृष्टिकोण अधिक सजग, अधिक तीखा हो गया था।

"साखालिन जानेसे पूर्व 'क्रूट्ज़र सो नाटा' पढ़कर मैं अभिभूत-सा हो गया था। वापस आनेके बाद मैं उसे एक बार फिर पढ़ गया हूँ और अब मुझे वह कहानी निपट थोथी और हास्यास्पद भी जान पड़ती है।

आज चेखॅवकी मृत्युको पचास वर्षसे अधिक बीत चुके हैं। उनकी कहानियाँ प्रत्येक देशमें पढ़ी जाती हैं, हर छोटे-बड़े नगरमें उनके नाटक खेले जाते हैं। उनकी महत्ता संन्दिग्ध है। किन्तु उनके पत्रोंको पढ़ते

हुए क्षण-भरके लिए भी आभास नहीं होता कि हम किसी ख्यातिसम्पन्न, महत्त्वपूर्ण व्यक्तिके प्रवचन सुन रहे हैं। उनके पत्र अपनेमें आत्मीय, दिलचस्प और स्वतन्त्र हैं····वे चेखॉवके हैं, यह बात गौण लगती है। इसी-में शायद इन पत्रोंका महत्त्व और चेखॉवकी महत्ता निहित है।

पत्र समाप्त हो जाते हैं, किन्तु हम न जाने क्यों, कुरसीसे उठकर देहरीके बाहर नहीं जा पाते। लगता है, कोई अब भी पुस्तकके मुँदे पन्नोंसे बाहर झांक रहा है – पिंसनेजके पीछे छिपी हुई हँसती उदास आँखें, कटी-छँटी फ्रेंच-कट दाढ़ी और किसी अव्याख्यित बेक़रारीसे भरे होंठ, जो मज़ाक़ करनेसे पहले हल्केसे ऊपर उठ आये हैं – मानो झिझक रहे हों कि कहीं उनके मज़ाक़से हम बुरा तो नहीं मान जायेंगे – यही चेखॉव हैं।